# वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

[मूल मराठी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद]

मूल लेखक—
बालाजी विठ्ठल गांवस्कर

अनुवादक—
जगदेवसिंह आर्य

# वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

[मूल मराठी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद]



मूल लेखक—
बालाजी विट्ठल गांवस्कर
अनुवादक—
जगदेवसिंह आर्य

प्रकाशक—
युधिष्ठिर मीमांसक
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

वितरक—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)



प्रथम संस्करण—५००
वि० सं० २०४२
सन् १९८५
मूल्य २०-००

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

# विषय-सूची

# प्रकाशकीय

वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति के प्रेमी ऋषि दयानन्द के भक्तों के हाथों में पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर द्वारा मराठी भाषा में विरचित **'वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश'** नामक ग्रन्थ का आर्यभाषानुवाद समर्पित कर रहे हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है । उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री गांवस्कर महोदय ने इस ग्रन्थ की रचना में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से कितनी सहायता ली थी।

श्री गांवस्कर जी ने अपना यह ग्रन्थ श्री आत्माराम बापू दळवी को समर्पित किया है (द्रष्टव्य - आगे मूल ग्रन्थ में पृष्ठ ५) । श्री आत्माराम बापू आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के कई वर्ष प्रधान और उपप्रधान रहे। यह उक्त आर्यसमाज के इतिहास वा समय-समय पर प्रकाशित रिपोर्टों से स्पष्ट है।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश का ऋ० द० द्वारा सं० १९४० में संशोधित संस्कारविधि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसे आश्रयाश्रयीभाव सम्बन्ध कहना अधिक उचित होगा। संस्कारविधि के संशोधित संस्करण को तैयार करते समय ऋ० द० के पास वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद विद्यमान था[1]।

हमने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश की संस्कारविधि के सन् १९४० में संशोधितसंस्करण (यही सम्प्रति प्रामाणिक माना जाता है) से विशेष तुलना की तो इस से निम्न तथ्य हमारे सामने उजगार हुए

---

१. द्र० —'ऋ० द० और आ० स० से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख, पृष्ठ ९८, तथा वेदवाणी मार्च १९६३ का अंक, पृष्ठ ९८।

१—संस्कारविधि का कर्णवेध पर्यन्त भाग वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के साथ ५० प्रतिशत साम्य रखता है (ऋ० द० संस्कारविधि के इस संस्करण की यहीं तक प्रेस कापी बना पाये थे)। आगे संन्यासाश्रम तक का भाग (कुछ विशिष्ट प्रकरणों को छोड़कर) ८० प्रतिशत समान है (कर्णवेध के आगे का भाग पाण्डुलिपि से छपा है)।[1]

२—संस्कारविधि में जो अशुद्धियां पाई जाती हैं उन का कारण वेदोक्तसंस्कारप्रकाश ही है। यथा आघार आज्यभाग आहुतियों के मन्त्रों का व्यत्यास।

३—संस्कारविधि में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका संशोधन इस ग्रन्थ की सहायता से किया जा सकता है। यथा –

"वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के **ओं यदैषि** ·········· **असौ** ॥२॥ इस मन्त्र को बोल के·········· वधू तथा वर— **ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षु**··········**शं चतुष्पदे** ॥३॥ **ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा** ······**बहवो निविष्टयै** ॥४॥ इन चार मन्त्रों को वर बोले।"

इन चार मन्त्रों में से प्रथम **ओम् समञ्जन्तु** वर और कन्या बोले यह स्पष्ट लिखा है। द्वितीय **यदैषि मनसा** मन्त्र वर बोले, यह भी स्पष्ट है। तृतीय और चतुर्थ के अन्त में लिखा है—**इन चार मन्त्रों को वर बोले**। संस्कारविधि में यहां मन्त्र दो ही हैं।

वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का पाठ है—

'दोनों एक दूसरे को देखें तथा वर **ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षु** ······ **शं चतुष्पदे** ॥१॥ **ओं भूर्भुवः स्वः। सोमः प्रथमो**··········**मनुष्यजाः** ॥२॥ **ओं भूर्भुवः स्वः। सोमो ददत** ······ **इमाम्** ॥३॥ **ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा** ······ **निविष्टयै** ॥४॥ **ये चार मन्त्र** बोले (वेदोक्तसंस्कारप्रकाश, पृष्ठ ७४-७५)।

---

१. द्र०—'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ ११० (द्वि० सं०)।

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संस्कार-विधि की पाण्डुलिपि लिखते समय मध्य का दूसरा और तीसरा मन्त्र छूट गया। अन्यथा **'इन चार मन्त्रों को वर बोले'** यह वाक्य संगत नहीं होता है। संस्कार-विधि की पाण्डुलिपि देखने से कुछ विशेष प्रकाश पड़ सकता है। वहां देखना यह है कि **ओं भूर्भुवः स्वः अघोरचक्षुः** मन्त्र के अन्त में संख्या १ है या ३॥ यदि संख्या १ होवे तो दो मन्त्रों की छूट स्पष्ट है और पाण्डुलिपि में ही १ को काट कर ३ बनाया होगा। यदि पाण्डुलिपि में संख्या ३ भी होवे तब भी **'इन चार मन्त्रों को वर बोले'** की संगति नहीं लगती है। संस्कार-विधि में यहां दो मन्त्रों के छूटने की ओर हमारा ध्यान पं० ओंकार जी ने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के प्रूफ देखते समय आकृष्ट किया।

**संस्कारविधि—वेदोक्तसंस्कारप्रकाश—संस्कारविधि**

संस्कारविधि का प्रथम संस्करण वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का उपजीव्य था और वेदोक्तसंस्कारप्रकाश संस्कार-विधि के संशोधित संस्करण का उपजीव्य बना। अतः कई दोष तीनों में समान हैं—

संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण में सीमन्तोन्नयन संस्कार में पृष्ठ २६ पर तीन मन्त्र इस प्रकार छपे हैं—

**ओं राकामहꣳ सुहवा सुष्टुतौ हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु। उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा॥**

**ओं किं पत्मना सोव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातुवीरꣳ शतभाननुक्थ्यम्॥**

**ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमनाऽउपसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं महयं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः॥**

इन तीन मन्त्रों के कुछ भागों का पाठ लेखक प्रमाद से आगे पीछे जुड़ गया है। वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में (पृष्ठ १२९-१३०) भी यहीं पाठ छपा है। संशोधित संस्कार-विधि के सं० १९४० के संस्करण में भी इन मन्त्रों का ऐसा ही पाठ छपा है। (अगले संस्करणों में पाठ ठीक कर दिया गया)। इससे इन तीनों ग्रन्थों का परस्पर उपजीव्य-उपजीवकत्व स्पष्ट है।

## आर्य भाषानुवाद

मुझे मराठी और गुजराती भाषा का काम चलाऊ ज्ञान है। यद्यपि इतने स्वल्पज्ञान से इन भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करना कठिन है, तथापि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना एक स्वतन्त्र कला है। इस में दक्ष अपने साधारण ज्ञान से भी अनुवाद कला से अनभिज्ञ तत्तद्भाषा के पण्डित की अपेक्षा अच्छा अनुवाद कर सकता है। मैंने अपने मराठी भाषा के स्वल्पज्ञान के आधार पर ही पूना-प्रवचनों का मराठी भाषा से हिन्दी में अनुवाद किया है। जिसे अनेक मराठी भाषाविज्ञों ने सराहा है। अतः मैं स्वयं इस का अनुवाद कर सकता था, परन्तु कई वर्षों से चली आ रही शारीरिक अस्वस्थता तथा अन्य कई महत्त्वपूर्ण कार्यों में उलझे रहने के कारण नहीं कर पाया।

मैंने श्री जगदेवसिंह जी आर्य (बम्बई), जो मराठी और गुजराती दोनों भाषाएं जानते हैं, से वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के अनुवाद करने की प्रार्थना की। उन्होंने उसे स्वीकार करके इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का बड़े परिश्रम से हिन्दी अनुवाद करके लगभग २ वर्ष पूर्व भेज दिया था, परन्तु प्रेस में कार्याधिक्य के कारण शीघ्र न छपवा सका। इस संस्करण को छपने में भी ५-६ मास लग गये।

श्री जगदेवसिंह जी की विदुषी धर्मपत्नी मराठी भाषा के माध्यम से पढ़ी हुई हैं, अतः उन्हें इस कार्य में उन की धर्मपत्नी से भी बराबर

सहयोग मिला। श्री आर्य जी ने मराठी से अनुवाद करते हुए इसके गुजराती अनुवाद से भी मिलान कर लिया है। अतः मैं समझता हूं, यह हिन्दी भाषानुवाद एक प्रामाणिक अनुवाद है। इस अनुवाद में मराठी ग्रन्थ में यत्र तत्र प्रयुक्त हुए ओषधि वनस्पतियों के मराठी नाम प्रयुक्त हुए हैं। उन में से कतिपय नामों का जहां उन्हें हिन्दी नाम ज्ञात न हो सका, वहां मराठी नाम ही रख दिया है।

यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द कृत संस्कार-विधि के सम्बन्ध में अनुसन्धान वा तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के लिये महोपकारी है। यह जानकर ही हमने इसे छपवाया है। आशा है शोधकर्त्ता, पर्यालोचक एवं विद्वज्जन इस से लाभ उठावेंगे। इसी दृष्टि से इस ग्रन्थ की थोड़ी सी प्रतियां ही छपवाई हैं। इससे इस पर प्रति पुस्तक लागत अधिक आने के कारण मूल्य अधिक रखना पड़ा।

अन्त में मैं श्री जगदेवसिंह जी आर्य का इस परोपकार-युक्त कार्य के लिये धन्यवाद एवं उन की सुख-समृद्धि की कामना करता हुआ विराम लेता हूं।

विदुषां वशंवदः—
**युधिष्ठिर मीमांसक**

---

विशेष भूल— वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के प्रस्तुत संस्करण के पृष्ठ ७४ पं० १८ पर **'देवकामा'** के स्थान पर **'देवृकामा'** अशुद्ध छप गया है। इस भूल का कारण संशोधक द्वारा मन्त्र का पाठ मिलान करते समय संस्कारविधि का उपयोग करना है। पाठकों से निवेदन है कि इस भूल का संशोधन करलें। **यु० मी०**।

# प्राक्कथन

(अनुवादक का)

२२ साल की अवस्था में महर्षि दयानन्द, सच्चे योगियों की खोज में, सम्पन्न परिवार और समस्त सुख-सुविधाओं से मुंह मोड़ कर घर से निकल पड़े। अथाह भवसागर में एक अनुभवहीन नाविक ने अपनी नाव छोड़ दी। घर के संस्कार, पारम्परिक कुछ संस्कृत का अध्ययन और योग-साधना का लक्ष्य, यही पूंजी थी गांठ में, जब उन्होंने गृह-त्याग किया। और फिर तो अच्छे-बुरे अनेक पंडितों, साधु-सन्यासियों-योगियों की संगत में खट्टे-मीठे अनुभव लेते हुए पूरे १४ वर्षों तक देश की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का घूम-घूम कर प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया। पर वे अब यह अच्छी तरह समझ गये थे कि उन्हें जिस ज्ञान की आवश्यकता है, वह उनके पास नहीं है। किसी विषय का भी विधिवत् अध्ययन वे कहां कर पाये थे। वे किसी योग्य गुरु के सान्निध्य में विद्याध्ययन करना चाहते थे। ३६ वर्ष की अवस्था में वे श्री विरजानन्द जी की पाठशाला में पहुंचे और अपना अभीप्सित प्राप्त करने में सफल हुए।

ढाई साल दण्डी श्री विरजानन्द जी की पाठशाला में अध्ययन कर, वे अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए निकल पड़े। अब उनका लक्ष्य योग-साधना मात्र न रहकर बहुत व्यापक हो गया था। क्षत-विक्षत-विकृत हिन्दू-धर्म, विदेशी-शासन और भयंकर दारिद्रय उनके दृष्टि पथ में आ चुके थे। ज्यों-ज्यों वे कर्म-क्षेत्र में गहरे उतरते गये, त्यों-त्यों ईसाई और मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म के मूलोन्मूलन की बात उनकी समझ में गहराई से आती गयी। वैदिक धर्म और वैदिक वाङ्मय पर

ईसाई मिशनरियों और विद्वानों के सुनियोजित आक्रमण को समझते उन्हें देर न लगी। पहले तो हिन्दू धर्म को रसातल की ओर ले जाने वाले स्वधर्मी धर्म-ध्वजी मार्तण्डों की धज्जियां उड़ानी उन्होंने प्रारम्भ की थीं, पर शीघ्र ही अंग्रेजी शासन की छत्र-छाया में भारत के ईसाई मिशनरी-पंडितों को उन्होंने ललकारना शुरू कर दिया। युग-द्रष्टा युग-पुरुष, वेदज्ञ दयानन्द की दहाड़ से साहब लोग बेचैन हुए, क्योंकि मृतवत् हिन्दू-जाति की ओर से प्रत्याक्रमण की मुद्रा में भारत का एक संन्यासी खड़ा हो गया।

एक अननुभवी २२ वर्ष के नाविक ने मझधार में अपनी नौका छोड़ दी थी, पर अब वह एक कुशल नाविक के रूप में अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हुआ।

महर्षि के उस जीवन-चित्र की कल्पनामात्र से मन-प्राण अभिभूत हो जाते हैं।

एक ओर सायण आदि ने वेदों को पहले ही कलंकित कर दिया था। ईसाई पण्डितों ने इसका उपयोग वैदिकसंस्कृति का विनाश करने के लिये करते हुए, वेदों के विकृत अर्थों का हिमालय खड़ा कर दिया था। पाश्चात्यों के मानसिक क्रीतदास भारतीय विद्वान् उसके आगे नत-मस्तक हो गये। पर धन्य है महर्षि को, वे अकेले ही उनके विरुद्ध खड़े हो गये। इस हिमालय को तोड़ने के लिये। स्वयं न अंग्रेजी जानते थे, न आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में शिक्षा पायी थी, न उनके पास आधुनिकतम पुस्तकालय था और न उद्भट विद्वानों की फौज उन्हें उपलब्ध थी और पाश्चात्य तुलनात्मक भाषा-विज्ञान भी वे नहीं जानते थे।

पांच हजार वर्षों के निविड अन्धकार को चीरकर वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति के पुञ्जभूत महर्षि दयानन्द सरस्वती इस भारत भूमि में अवतरित हुए। महर्षि के मन में बस एक ही धुन थी, —**जड़मूल से क्रान्ति।**

वेदों के कल्याणकारी रहस्यों को उद्‌घाटित करते हुए उनमें निहित ज्ञान-कर्म-उपासना का सन्देश वे मानवमात्र को दे रहे थे।

अन्ध-विश्वास, पाखंड और धार्मिक धूर्तता की वे धज्जियां उड़ा रहे थे।

ईसाई पादरियों और मौलवियों से शास्त्रार्थ कर वे हिन्दू जाति की न केवल ढाल बन रहे थे,प्रत्युत उनके ऊपर प्रत्याक्रमण भी कर रहे थे। हिन्दुओं के गिरते हुए आत्मविश्वास को वे पुनः स्थापित कर रहे थे।

स्त्री-शिक्षा, अस्पृश्यता-निवारण, मादक द्रव्यों का निषेध, बाल-विवाह निषेध, राष्ट्रभाषा उनके व्यापक प्रचार के अंग थे।

स्त्रियों को उन्होंने वेदाधिकार दिया। इतना ही नहीं, मनुष्यमात्र के लिये उन्होंने वेद का पढ़ना पढ़ाना धर्म ठहराया।

जन्म मूलक वर्णव्यवस्था को उन्होंने वेद-विरुद्ध ठहराया।

विदेशी शासन से वे बहुत दुःखी थे। वह उन्हें असह्य था। वे स्वराज्य-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा प्रकट करते थे।

स्वदेशी उद्योग धन्धों के वे प्रबल समर्थक थे। आधुनिक ज्ञान विज्ञान के द्वारा स्वदेशी उद्योगों के उत्कर्ष के लिये वे जर्मनी के प्रो० जी० वाइज महोदय से पत्र-व्यवहार कर रहे थे।[1] अपने बम्बई-प्रवचनों में उन्होंने स्वदेशी व्यापार धन्धे पर बड़ा बल दिया था।[2]

---

१. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—पृष्ठ ३७४,२८; ३७६,२३; ३७९, १९; ४०३,२; ४१२,१८; ४१३,१; ४५०,६-११॥ प्रो० जी० वाइज के पत्र (ऋ० द० को लिखे गये पत्र और विज्ञापन, भाग ३) पूर्ण संख्या १२०, १२१, १२२, १२३, १४१, १५२, १५३, १५६, १५९॥

२. द्र०—ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन, पृष्ठ ५०७-५११ पर छपा बम्बई का २० वां प्रवचन।

भारत गो-केन्द्रित अर्थ व्यवस्था का देश है। स्वामी जी ने गाय के आर्थिक पक्ष का प्रतिपादन करते हुए **'गोकरुणा-निधि'** पुस्तिका लिखी और गो-हत्या-बन्दी के लिए व्यापक हस्ताक्षर अभियान चलाया।[1]

'वेदोक्तसंस्कारप्रकाश' के लेखक पं० बाला जी विट्ठल गांवस्कर महर्षि के निकटस्थ महानुभावों में थे। इस पुस्तक में महर्षि-प्रतिपादित वैदिक संस्कारों का वैज्ञानिक स्वरूप उपस्थित किया गया है। वैदिक संस्कारों का महर्षि प्रतिपादित वैज्ञानिकरूप उन्हें अपेक्षित जड़मूल से क्रान्ति की नीव है। स्वयं महर्षि की 'संस्कार-विधि' नामक कृति सर्वविदित है। प्रस्तुत पुस्तक के अनुवादक स्वयं को गौरवान्वित समझते हैं क्योंकि इस अनुवाद के द्वारा महर्षि के जीवन, कार्य और लक्ष्य से सीधे जुड़ जाने का अमूल्य, अलभ्य अवसर प्राप्त हो सका है।

जैसे अन्धकार में कोई लालटेन लेकर आगे-आगे चल रहा हो, वही स्थान मेरे जीवन में महर्षि दयानन्द और उनके आर्यसमाज का है। ९-१० की अवस्था में ही यह प्रकाश मुझे मिला था। फलस्वरूप जीवन के किसी भी मोड़ पर मैं भटकने से बचा रहा। उच्च कक्षा के एक आर्यसमाजी छात्र ने मनुस्मृति के अनुसार कहा कि मांसाहारी आठ प्रकार के कसाई होते हैं। बस मैंने मांस खाना छोड़ दिया। परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि मैं आर्यसमाजी बन चुका हूं। यह भी कहां पता था कि महर्षि से सम्बन्धित इस पुस्तक का मैं अनुवादक बनूंगा।

महर्षि से सम्बन्धित इस पुस्तक के अनुवाद के द्वारा मैं स्वयं को कृतकृत्य समझता हूं। महर्षि के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन ही मेरे इस

---

१. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ५३५,१४; ५३७,१२; ५३८,१; ५४०,२४; ५४३,९; ५६९,२५; ६००,२२; ६०२,१५; ६०४; ६०७,८; ६४८,१४; ७४८,१५-१७॥

निवेदन का लक्ष्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—'नाते नेह राम के मनियत'। मेरे लिए भी महर्षि के प्रति प्रेम और उनके साथ आत्मिक सम्बन्ध ही इस अनुवाद के मूल में है। इसीलिए उस प्रिय संन्यासी के जीवन-कार्य के उपलक्ष्य में यहां श्रद्धा के दो शब्द लिख कर धन्यता का अनुभव कर रहा हूं।

विविध भाषाओं का ज्ञान जीवन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। पर यदि किसी भाषा का ज्ञान 'वेदोक्तसंस्कारप्रकाश' जैसे ग्रन्थ का अनुवाद करने में उपयोगी सिद्ध हो, तो उस ज्ञान की इससे बड़ी सार्थकता जीवन में और क्या हो सकती है। वैदिक वाङ्मय के प्रमुख विद्वान् पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महती कृपा से ही मैं अपने मराठी और गुजराती ज्ञान का ऐसा स्पृहणीय उपयोग कर सका। इससे पूर्व पंडित जी ने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के बम्बई प्रवचनों के गुजराती विवरण का आर्यभाषा में मुझ से अनुवाद करवाया था। यह अनुवाद पंडित जी ने 'वेदवाणी' के विशेषांक में प्रकाशित किया था।[1] धन्य हैं पंडित जी जो मुझ जैसे सामान्य जनों को ऐसे काम देकर कल्पनातीत स्थान पर पहुंचा देते हैं।

यह अनुवाद मैंने अपनी पत्नी सौ० भारती बी० ए०, एम० एड० के सहयोग से किया है। उन का पूरा शिक्षण मराठी माध्यम से हुआ है। अनुवाद में यथामति यथाशक्ति मूल भावों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी यदि कहीं कोई भूल रह गयी हो, तो सुधीजन सुधार लेने की कृपा करें।

८/ए, आनन्द कोर्ट,
डा० रघुनाथ मार्ग
बान्द्रा, बम्बई-४०००५०

जगदेवसिंह

---

१. वेदवाणी, वर्ष ३४ अङ्क ४-५।

# वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश का संक्षिप्त परिचय

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की रचना पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर ने की है। यह मराठी भाषा में लिखा गया है। इस का प्रथम भाग वानप्रस्थ-संन्यास पर्यन्त सं० १९३८ में प्रकाशित हुआ था और दूसरा भाग जिस में 'अन्त्येष्टि-संस्कार-विधि है' सं० १९३९ में छपा था। इस भाग के आरम्भ में जो उपोद्घात है। वह अत्यन्त उपयोगी है। अन्त्येष्टि संस्कार विधि को पृथक् छापने का प्रयोजन ग्रन्थकार ने श्मशान-भूमि में ले जाने की सुगमता वा सुभीता बताया है। पृथक् छापने का संभवतः यह भी प्रयोजन रहा हो कि उस समय श्मशान में गई हुई वस्तु को घर पर वापस लाना उचित नहीं समझा जाता था।

वेदोक्त संस्कार प्रकाश के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

**।। ओ३म् नमो जगदीश्वराय ।।**[1]

---

**वेदोक्त संस्कार प्रकाश**

---

हा ग्रन्थ

**वेद व तदाधार भूत आश्वलायन, पारस्कर व गोभिलीय गृह्य सूत्रादि आद्य, सर्व मान्य**

---

१. दोनों भागों के मुख पृष्ठों का हिन्दी रूपान्तर आगे पृष्ठ ३-४ पर छापा है।

सत्य शास्त्रां चा आधारे

मन्त्रार्थ व प्रमाण सहित

**पं० बाला जी विट्ठल गांवस्कर**

आणि तयार करून

**लोक कल्याणार्थ छापून प्रसिद्ध केले**

**मुम्बई**

**इण्डियन प्रिंटिंग छापाखान्यांत छापिला**

**व तेथें तो विकत मिळल**

विक्रम संवत् १९३८ शालिवाहन शक १८०३

---

**किमत २॥ रुपये**

लगभग ऐसा ही मुख पृष्ठ का लेख **द्वितीय भाग** में भी है। निम्न अंश भिन्न है—

विक्रम संवत् १९३९, शालिवाहन १८०४

---

**किमत ६॥ आणे**

(दोनी भाग मिळून किमत २॥ रुपये)

## वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश का गुजराती अनुवाद

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद भी तत्काल ही प्रकाशित हो गया था। अनुवादक इसके बम्बई निवासी प्राणजीवन-दास काहनदास थे। द्वितीय भाग का गुजराती में अनुवाद सम्भवतः

प्रकाशित नहीं हुआ था। प्रथम भाग के गुजराती संस्करण के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

ॐ नमो जगदीश्वराय

---

**वेदोक्त संस्कार प्रकाश**

आ ग्रन्थ

**वेद अने तदाधार भूत आश्वलायन पारस्कर**
**अने गोभिलीय गृह्य सूत्रादि आद्य**
**सर्वमान्य सत्य शास्त्रो आधारे**
मन्त्रार्थ अने प्रमाण सहित
**रची,**

**पं० बाला जी विट्ठल गांवस्कर**

**एमणे प्रसिद्ध कर्यो छे**

---

महाराष्ट्र भाषामांथी गुजराती भाषान्तर
परोपकार वुद्धि थी करी छापनार
**प्राणजीवनदास कहानदास**
सरकारी से० ग्रे० ऐं० १० शालानो बड़ो शिक्षक

विक्रम संवत् १९३८ शालिवाहन शक १८०३

कीम्मत रु० २॥ अढी

इस मुखपृष्ठ में 'पण्डित बाळा जी विट्ठल गांवस्कर' नाम देवनागरी अक्षरों में छपा है, शेष सब गुजराती अक्षरों में।

## वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की उपलब्धि

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद मैंने प्रथम वार सन् १९४४ में परोपकारिणी सभा में कार्य करते हुए सभा के पुस्तकालय में देखा था। उस समय से ही मैं इस ग्रन्थ के मूल मराठी संस्करण एवं गुजाराती संस्करण के लिये प्रयत्नशील रहा। अनेक नगरों के पुस्तकालयों की छानबीन की, परन्तु सन् १९८० तक इन्हें प्राप्त न कर सका।

सन् १९८१ के जनवरी मास में बम्बई के 'दादर' संभाग में स्थित 'मुम्बई मराठी ग्रन्थालय' में वेदोक्त संस्कार-प्रकाश के मराठी में छपे दोनों भाग उपलब्ध हो गये (द्वितीय भाग के अन्त में ३-४ पृष्ठ त्रुटित हैं)। उसी समय के दोनों भागों की फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी करवा ली। गुजराती अनुवाद (प्रथम भाग का ही छपा था) श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती को राजकोट की यात्रा में सन् १९८२ में प्राप्त हुआ था। उस की फोटोस्टेट कापी भी श्री स्वामी जी ने करवा कर मुझे दे दी। इस प्रकार सम्प्रति हमारे पास वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के मराठी और गुजराती दोनों संस्करण हैं।

## वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश से तुलना

संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की विषय सूची इस प्रकार है—

| संस्कारविधि प्र० सं० | वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश |
|---|---|
| उपोद्घात | उपोद्घात |
| सकल कर्मोपयोगी प्रार्थनामन्त्राः | सामान्य संस्कारविधि |
| अथ गर्भाधान संस्कारविधि. | विवाह संस्कारविधि |
| ,, पुंसवन संस्कारविधिः | गर्भाधान संस्कारविधि |
| ,, सीमन्तोन्नयन संस्कारविधिः | गृहाश्रम संस्कारविधि |

| | |
|---|---|
| अथ जातकर्म संस्कारविधिः | पुंसवन संस्कारविधि |
| ,, नामकरण संस्कारविधिः | सीमन्तोन्नयन संस्कारविधि |
| ,, निष्क्रमण संस्कारविधिः | जातकर्म संस्कारविधि |
| ,, अन्नप्राशन संस्कारविधिः | नामकरण संस्कारविधि |
| ,, चूडाकरण संस्कारविधिः | निष्क्रमण संस्कारविधि |
| ,, कर्णवेध संस्कारविधिः | अन्नप्राशन संस्कारविधि |
| ,, उपनयन संस्कारविधिः | चूडाकरण संस्कारविधि |
| ,, वेदारम्भ संस्कारविधिः | कर्णवेध संस्कारविधि |
| ,, समावर्तन संस्कारविधिः | उपनयन संस्कारविधि |
| ,, विवाह संस्कारविधिः | वेदारम्भ संस्कारविधि |
| ,, गृहाश्रम संस्कारविधिः | समावर्तन संस्कारविधि |
| ,, वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कारविधिः | वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कारविधि |
| ,, मृतक संस्कारविधिः | अन्त्येष्टि संस्कारविधि |

दोनों ग्रन्थों के संस्कारों की सूची समान है। संभवतः वेदोक्त-संस्कारप्रकाश के कर्त्ता बालाजी विट्ठल गांवस्कर ने आश्वलायन-सूत्री होने से आश्वलायन गृह्यसूत्रानुसार[1] विवाह संस्कार का प्रथम उल्लेख किया है। उन की दृष्टि यह है कि विवाह के पश्चात् ही तो गर्भाधानादि संस्कार सम्पन्न हो सकते हैं। ऋ० द० ने मनुस्मृति २।१६ के अनुसार निषेक (गर्भाधान) से श्मशान (मृतक) संस्कार पर्यन्त संस्कारों का निर्देश किया है। इस क्रम में यह दृष्टि कार्य कर रही है कि संस्कारों का प्रधान प्रयोजन आत्मा और शरीर को संस्कृत करना है। आत्मा और शरीर का संयोग गर्भाधान संस्कार से सम्पन्न होता है। यह क्रम-भेद तो दृष्टि-भेद के कारण है, परन्तु वेदोक्त-संस्कारप्रकाश के कर्त्ता का गृहाश्रम को स्वतन्त्र संस्कार मान कर

---

१. अन्य कई गृह्यसूत्रों में भी विवाह संस्कार का प्रथम वर्णन है।

वानप्रस्थ सन्यास को एक स्वीकार करके १६ संख्या की पूर्ति करना निश्चय ही संस्कारविधि के प्रथम संस्करण पर आधृत है। ऋ० द० नें इस भूल का संशोधित संस्करण में वानप्रस्थ और संन्यास को पृथक् स्वीकार करके परिशोधन कर दिया है, परन्तु संस्कारविधि के संशोधित संस्करण में भी 'गृहस्थाश्रमविधि' के स्थान में 'गृहाश्रम संस्कारविधि' का उल्लेख होना निश्चय ही भूल है, क्योंकि इसे स्वतन्त्र संस्कार मानने पर १६ के स्थान में १७ संस्कार हो जाते हैं।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में सभी संस्कारों के मूल प्रमाण-वचनों का संग्रह तथा संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के संक्षिप्त अर्थ भी प्रत्येक भाग के अन्त में दिये हैं।

## वेदोक्त संस्कार-प्रकाश की रचना में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से सहायता

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने ऋ० द० कृत संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३२), सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सं० १९३२) तथा पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४) से पर्याप्त सहायता ली है। यथा—

### संस्कारविधि प्र० सं०) और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

१—वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने संस्कारविधि के प्रथम संस्करण से पर्याप्त सहायता ली है। दोनों के आरम्भ में चतुर्वेद मन्त्रों का संग्रह है। यद्यपि मन्त्रों में पर्याप्त भिन्नता है, पुनरपि परम्परागत विद्वान् श्रौत और गृह्य कर्मों में अथर्ववेद के मन्त्रों का प्रायः समावेश नहीं करते। अतः वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में अथर्ववेद के मन्त्रों का संस्कारकर्म में विनियोग ऋ० द० के मतानुसार ही किया गया है।

२—ऋ० द० ने संस्कारविधि के प्र० सं० में गृहस्थाश्रम को स्वतन्त्र संस्कार मानकर और वानप्रस्थ संन्यास को एक करके १६

संस्कार स्वीकार किये हैं (द्र०—संस्कारविधि प्र० सं० की विषय सूची)। इसी प्रकार वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के रचयिता ने भी गृहाश्रम संस्कार को स्वतन्त्र मानकर तथा वानप्रस्थ संन्यासाश्रम को एक करके १६ संस्कार लिखे हैं (द्र०—पूर्व उल्लिखित वेदोक्त-संस्कार प्रकाश की विषय सूची)।

३—ऋ० द० ने संस्कारविधि (प्र० सं०) में संस्कारों में प्रयुक्त मन्त्रों के संक्षिप्त अर्थ लिखे हैं प्रायः उन्हीं अर्थों का अनुकरण वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के कर्त्ता ने किया है।



**दोनों में भेद**—इस प्रकार संस्कारविधि (प्र० सं०) तथा वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में कुछ समानता होने पर भी लेखन में अत्यधिक भिन्नता है। संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में विधि के रूप में गृह्य-सूत्रों के पाठ ही उद्वृत किये गये हैं। अतः उसके द्वारा जो व्यक्ति कर्मकाण्ड में कुशल न हो, वह संस्कार नहीं करा सकता। परन्तु वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में प्रमाणरूप में उद्वृत वचनों का पृथक् संकलन किया है तथा प्रत्येक संस्कार की आदि से अन्त तक सम्पूर्ण विधि क्रमशः दी है। अतः मराठी भाषा वा गुजराती भाषा जानने-वाला कोई भी व्यक्ति उससे संस्कार कराने में समर्थ हो सकता है। यथा सम्प्रति संस्कारविधि के संशोधित संस्करण से केवल आर्य भाषा जानने वाला भी संस्कार करा लेता है।



## पञ्चमहायज्ञविधि और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

ऋषि दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञविधि का एक संस्करण सं० १९३१ में प्रकाशित किया था। उसमें परम्परानुसार अघमर्षण मन्त्रों के पश्चात् सूर्योदय होने पर सूर्य की परिक्रमा के मन्त्र और उसे अर्घ्य देने का उल्लेख था[1]। इस में एक महती बाधा उपस्थित होती

१. द्र०—ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास, पृष्ठ ७५।

थी । प्रचीन परम्परा के अनुसार गायत्री के जप का काल सूर्योदय से पूर्व ही माना गया है परन्तु सूर्य को परिक्रमा के लिये सूर्योदयपर्यन्त रुकने से गायत्री जप के काल का उल्लंघन होता था । अतः ऋषि दयानन्द ने सं० १९३४ में पञ्चमहायज्ञविधि का जो परिशोधित संस्करण प्रकाशित किया, उस में सूर्य की परिक्रमा के मन्त्रों को हटाकर **मनसा-परिक्रमा** के ६ मन्त्र रख दिये । मनसा-परिक्रमा में सूर्योदय के साथ सम्बन्ध न होने से सूर्योदय से पूर्व सन्ध्या और गायत्री का जप संभव हो गया । यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि ऋ० द० के द्वारा लिखे गये अथर्ववेद के मन्त्रों का संध्या में विनियोग किसी प्रचीन सन्ध्या में नहीं है । **यह ऋ० द० की अपनी सूझ-बूझ का प्रमाण है ।** वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में भी गृहस्थाश्रम संस्कार के अन्तर्गत सन्ध्याप्रकरण में अथर्ववेदीय मनसापरिक्रमा के मन्त्र उद्धृत किये हैं । ये मन्त्र निश्चय ही वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के कर्त्ता ने ऋ० द० कृत पञ्चमहायज्ञविधि से लिये हैं ।

## सत्यार्थप्रकाश [प्र० स०] और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

ऋ० द० ने संस्कारविधि (प्र० सं०) में पठन-पाठन-विधि का उल्लेख नहीं किया था । वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में वेदारम्भ के अन्त में पठन-पाठन-विधि का उल्लेख (पृष्ठ १७०-१७३) किया है । यह सम्पूर्ण पठन-पाठन-विधि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम संस्करण के तृतीय समुल्लास से ली है ।

इस प्रकार हमने अतिसंक्षेप से यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने ऋ० द० कृत संस्कारविधि (प्र० सं०) पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४) तथा सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) से अनेक विषय उदारतापूर्वक स्वीकार करके अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किये हैं ।

## एक दूसरे का निर्देश न करना

उपर्युक्त निर्देश से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश और संस्कारविधि (संशोधित सं०) के लेखक एक दूसरे के ग्रन्थों का पर्याप्त उपयोग करते हैं, पर दोनों ही एक दूसरे के नाम का उल्लेख नहीं करते। इसका क्या कारण है?

इसके परिज्ञान के लिये सब से प्रथम यह देखना होगा कि पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर का सम्बन्ध आर्यसमाज अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ था, अथवा नहीं।

सं० २०३८ के ज्येष्ठ मास में जब मुझे आर्यसमाज (काकड़-बाड़ी) बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही प्राप्त हुई, उस से पूर्व मुझे पं० बालाजी विठ्ठल गांवस्कर तथा रा० रा० आत्मा-राम बापू दलवी (जिन्हें लेखक ने अपना ग्रन्थ समर्पित किया है) के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था। मैं लेखक को उदार दृष्टि वाला जनहितवादी शास्त्रज्ञ व्यक्ति ही समझता था। परन्तु बम्बई आर्य-समाज की कार्यवाही पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे और **रा० रा० आत्माराम दलवी** तो बम्बई आर्यसमाज के वर्षों प्रधान और उप-प्रधान रहे हैं। वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के गुजराती अनुवादक **श्री प्राणजीवनदास कहानदास** के बम्बई आर्यसमाज में १३ तथा २७ नवम्बर १८८१ को वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश अन्तर्गत विवाह और गर्भाधान संस्कार पर व्याख्यान हुये थे[1]। बम्बई आर्यसमाज की १६ अप्रेल १८८२ की कार्यवाही में लिखा है—'रा० रा० आत्माराम

---

१. द्र०—'ऋ० द० और आ० स० से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' वेदवाणी मार्च १९८२ का अंक, पृष्ठ ९२-९३।

बापू दलवी वेंगुर्ला (जि० रत्नागिरि कर्नाटक) में वदोक्त-संस्कार-प्रकाश के अनुसार पण्डित बालाजी के यहां हुए उपनयन संस्कार का वृत्तान्त सुनाया।' इसी प्रकार २४ मई १८८२ को बलसाड़ गांव के निवासी कवि कृष्णराम इच्छाराम शास्त्री ने 'गोमान्तक (गोवा) देश की यात्रा के प्रसङ्ग में वेंगुर्ला में [बालाजी] शास्त्री जी द्वारा कराये गये उपनयन संस्कार का विवरण उपस्थित किया।' इन दोनों दिनों की कार्यवाही देखने योग्य है (द्र० वेदवाणी मार्च १९८२ पृष्ठ ७८-७९ तथा ८२-८३)। इन दिनों ऋषि दयानन्द बम्बई में ही विद्यमान थे।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक का ऋषि दयानन्द के साथ गहरा सम्पर्क था और यह सम्पर्क सम्भवतः सन् १८७५ के बम्बई वा पूना निवास के काल में हुआ था। यही कारण है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश सर्वथा ऋषि दयानन्द की विचारधारा के अनुसार लिखा गया[1]।

अपने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम के उल्लेख न करने में पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर का यह कारण रहा हो कि महाराष्ट्र में वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के अनुसार संस्कार करने कराने की प्रथा चल जाये। इस विचार से यदि देखा जाय तो ग्रन्थ में दयानन्द का उल्लेख करना उनके प्रयोजन का व्याघातक सिद्ध हो सकता था।

---

१. वेदोक्त-सस्कार-प्रकाश में प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर विवाह में एक कर्म ऐसा सम्मिलित हो गया था, जिसे ऋ० द० के विचार के अनुकूल नहीं कहा जा सकता है। परन्तु इस लेख का निराकरण लेखक ने स्वयं वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के द्वितीय भाग की भूमिका में कर दिया है।

अन्त में हम यह निर्देश करना आवश्यक समझते हैं कि संस्कार-विधि और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के विषय में ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन का परिणाम है। **इस तुलनात्मक अध्ययन के बिना वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश आर्य समाजियों के लिये एक भयानक पुस्तक है।** सन् १९४४ में मैंने जब इस ग्रन्थ को प्रथमवार देखा था, तब मेरे मन की भी ऐसी ही स्थिति थी, क्योंकि उससे ज्ञात होता था कि ऋ० द० ने अपनी संस्कारविधि (संशोधित संस्करण) इस ग्रन्थ के आधार पर बनाई है। दूसरे शब्दों में ऋ० द० पर साहित्यिक चोरी का अपराध लगाया जा सकता है। अतः मैंने 'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' के प्रथम संस्करण में इस ग्रन्थ का उलेख नहीं किया। यही मनःस्थिति श्री पं० विश्वश्रवाः जी की भी इस ग्रन्थ को देख कर हुई थी।

हमारे पास ऋ० द० के सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और पञ्च-महायज्ञ विधि के आद्य संस्करण विद्यमान हैं और उनसे इस तुलना में अत्यधिक सहायता मिली है। यदि ये आद्य संस्करण हमारे पास न होते और यदि आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई की सन् १८८१-८२ के अधिवेशनों की कार्यवाही हमें उपलब्ध न होती तो हम भी अन्त तक भटकते रहते।

**—युधिष्ठिर मीमांसक**

श्री पं० बाळा जी विट्ठल गांवस्कर कृत

# वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

मराठी-भाषा में प्रकाशित का हिन्दी-रूपान्तर

# मुद्रण सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं

१. श्री पं० बाळा जी विट्ठल गांवस्कर ने **वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश** ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित किया था। दूसरे भाग में केवल अन्त्येष्टि-संस्कार-विधि थी। इसे पृथक् छापने का प्रयोजन द्वितीय भाग के उपोद्घात में ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है।

२. हम यहां दोनों भाग इकट्ठे छाप रहे हैं। इसलिये दोनों भागों के मुख-पत्रों को अलग-अलग दे रहे हैं। दोनों भागों में छपे 'विक्रयार्थ तैयार' शीर्षक विज्ञापन में थोड़ा सा ही भेद होने से द्वितीय भागस्थ विज्ञापन ही छापा है।

३. ग्रन्थकार ने द्वितीय भाग में जो उपोद्घात लिखा है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यतः हम दोनों भाग इकट्ठे छाप रहे हैं, अतः द्वितीय भाग का उपोद्घात भी प्रथम भाग के उपोद्घात के अनन्तर ही छाप रहे हैं।

४. ग्रन्थकार की टिप्पणियां मोनो काले अक्षरों में छापी हैं। मैंने अपनी टिप्पणीयां मोनो सफेद में दी हैं और अन्त में स्पष्टता के लिये 'यु० मी०' संकेत भी कर दिया है।

॥ ॐ नमो जगदीश्वराय ॥

# वेदोक्त संस्कार प्रकाश

यह ग्रन्थ

वेद तथा तदाधारभूत आश्वलायन, पारस्कर और गोभिलीय
गृह्यसूत्रादि आद्य सर्वमान्य सत्य शास्त्रों के आधार पर

मन्त्रार्थ तथा प्रमाण सहित

पंडित बाळाजी विठ्ठल गांवस्कर

ने लिखकर

लोक कल्याणार्थ छापकर प्रकाशित किया।

मुंबई

यह ग्रन्थ इण्डियन प्रिंटिंग मुद्रणालय में मुद्रित हुआ तथा वहीं से प्राप्त होगा।

विक्रम संवत १९३८, शालिवाहन शक १८०३

किमत २॥ रुपये

॥ ॐ नमो जगदीश्वराय ॥

# वेदोक्त संस्कार प्रकाश

## भाग २

# अन्त्येष्टि संस्कार विधि

यह ग्रन्थ

वेदादि आद्य सर्वमान्य सत्य शास्त्रों के आधार पर मन्त्रार्थ

और प्रमाण सहित

पंडित बाळाजी विठ्ठल गांवस्कर

ने तैयार करके

लोक कल्याणार्थ छाप कर प्रसिद्ध किया।

मुंबई

यह ग्रन्थ इण्डियन प्रिंटिग प्रेस में मुद्रित हुआ तथा वहीं से प्राप्त होगा।

विक्रम सवत् १९३९ शालिवाहन शक १८०४

मूल्य ६॥ आने

(दोनों भागों का सम्मिलित मूल्य २॥ रुपये)

# समर्पण

प्राचीन काल में दक्षिण प्रदेशस्थ अनार्य लोगों को
वेदोक्त धर्म में प्रवृत्त करने के लिए श्रेष्ठ
परोपकारी ऋषिजन आर्यावर्त से
आर्यक[1] में निवास करके
सदुपदेश करते थे।

इस सम्बन्ध में

**संप्रति उनके कुल में एक ही आदर्श**

**वे० रा० रा० आत्माराम बापू दळवी० आ० दी०**

**में देखकर**

उनको यह ग्रन्थ

**लेखक**

**पंडित बाळाजी विठ्ठल गांवस्कर**

**ने**

**सानन्दाश्चर्य पूर्वक परम प्रेमभाव से**

**अर्पण किया है।**

---

१. संभवतः 'आर्यक' शब्द में अल्पार्थ में 'क' प्रत्यय है। अर्थ होगा—वह प्रदेश जिसमें आर्य लोग अल्प संख्या में हैं। यदि दक्षिण देश के किसी भाग का यह नाम रहा हो तो आर्य शब्द से संज्ञार्थ में 'क' प्रत्यय जानना चाहिये।
यु० मी०

# बिक्री के लिये तैयार[1]

इसी ग्रन्थकार की लिखित पुस्तक "**अहिंसा-धर्म-प्रकाश**"[2] मूल्य १ रुपया, डाकव्यय एक आना, "**मुंबई इण्डियन प्रिंटिंग प्रेस**" के व्यवस्थापक से प्राप्त होगी। इस पुस्तक में सृष्टिजन्य शास्त्र और वेदादि मान्य ग्रन्थों तथा संसार के अनेक धर्मों, मतों के आधार पर अहिंसा-धर्म का प्रतिपादन किया गया है। कि मनुष्यमात्र को हिंसा और मांस भक्षण नहीं करना चाहिए। "अर्थात् अनाथ, दीन, निर-पराध, परोपकारी, मूक पशु-पक्षियों को मारकर उनका मांस भक्षण करना ईश्वरीय आज्ञा तथा प्रत्येक धर्म के मूल तत्त्वों के विरुद्ध और बड़ा पाप कर्म है, यह सिद्ध किया है!" इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में भ्रष्ट देवी उपासना (वाम मार्ग) और हिंसात्मक यज्ञों का खंडन तथा लोगों के संशयों को प्रश्नोत्तर रूप में दूर करके अनार्य वेदोत्पत्ति[3] का दिग्दर्शन कराया गया है।

---

१. वेदोक्त संस्कार प्रकाश के दोनों भागों में यह विज्ञापन छपा है, परन्तु द्वितीय भागस्थ विज्ञापन में कुछ पाठ अधिक है। दोनों भागों में छपे विज्ञापन में भेद दर्शाने के लिये द्वितीय भागस्थ विज्ञापन के अधिक पाठ को " " इस प्रकार के चिह्नों में छापा है।

२. यह ग्रन्थ हमें अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ।

३. 'अनार्य वेदोत्पत्ति' का तात्पर्य समझ में नहीं आया। 'अहिंसा धर्म प्रकाश' ग्रन्थ उपलब्ध होने पर ही इसका तात्पर्य समझ में आ सकता है।

# उपोद्‌घात

## [प्रथम भाग का]

इस सृष्टि में उत्पन्न किसी वस्तु को उत्तम स्थिति में लाने का वा करने का अर्थ 'संस्कार' (सं=उत्तम; कृ—कार=कृति) है। इस से संसार के मनुष्यों को उत्तम स्थिति प्राप्त हो अर्थात् उन का जीवन निरोग, सुदृढ़, सतेज, दीर्घायु, निर्भय, होकर उन्हें उत्तम ज्ञान, गुण, प्राप्त हों, वे निर्विघ्न रहकर सुखपूर्वक सांसारिक व्यवहार तथा परमार्थ की सिद्धि करें, इसीलिये वेदों में षोडश (१६) संस्कारों का विधान किया गया है। इन सबका स्पष्टीकरण प्रत्येक वेद के गृह्य सूत्रादि ग्रन्थों में उत्तमता पूर्वक किया गया है। इसी के अनुसार प्राचीन काल में आर्य लोग सारे कार्य करते थे, इसीलिये कला कौशलादि विद्याओं में वे अप्रतिम, अपराजित, शरीर से स्वस्थ, सुदृढ़, तेजस्वी और दीर्घायु होते थे। सद्‌गुणों को प्राप्त कर, विना किसी विघ्न वाधा के सांसारिक तथा पारमार्थिक कर्त्तव्य का आचरण करते हुए आनन्द पूर्वक रहते थे। परन्तु धीरे--धीरे वे सत्य तथा कल्याणकारी कर्त्तव्य कर्म, जो इतने स्वल्प थे कि धनी-निर्धनी सब के लिए समान रूप से करने योग्य थे, आगे चलकर अज्ञान तथा पक्षपात के कारण परिवर्त्तित कर दिये गये। उनका रूपान्तर करके वेद विरुद्ध, निषिद्ध, काल्पनिक, कठिन रचना स्वार्थ वश की गयी। जनकल्याण के स्थान पर स्वार्थ सिद्धि की प्रवृत्ति बढ़ गयी। इसीलिए वैदिक धर्मी आर्यजन आज नितान्त ज्ञान, धर्म और कर्म से भ्रष्ट हो गये हैं। इस दुरवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज पुरोहित और यजमान दोनों ने एक दूसरे के कल्याण की इच्छा तथा संरक्षण करने की श्रद्धा त्याग दी है। इससे दोनों पक्ष आज की कठिन स्थिति में आ पहुंचे हैं तथा कर्त्तव्य भ्रष्ट हो गये हैं।

दोनों में से किसी एक को अपराधी नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार पुरोहितों ने यजमानों के हित चिन्तन की श्रद्धा त्याग दी उसी तरह यजमानों ने उनका प्रतिपालन करने का उत्तम नियम और भक्ति त्याग दी। जैसे-जैसे पुरोहितों की उपेक्षा होने लगी वैसे-वैसे उनकी स्थिति बिगड़ने लगी तथा उनका जीवन-निर्वाह कठिन होने लगा। परिणामस्वरूप उन्होंने आगे चलकर यजमानों से धन निकालने के लिए तथा उसके द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए नाना प्रकार की युक्तियां रचकर धर्म निर्णयसिन्धु, गागा, नारायण आदि भट्टी[1]; कालमाधव इत्यादि नवीन ग्रन्थ रचे। इस प्रकार सत्य कर्मों में अप्रामाणिकता आ गयी। इनके स्थान पर आज असत्य कर्मों का विस्तार हो गया है। इससे शारीरिक शक्ति और बौद्धिक बल विकसित होने के मुख्य साधन, वेदानुकूल संस्कारों का करना, बन्द हो जाने से, इन दोनों की हानि हुई है। यह हानि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। अतएव भविष्य में यह निकृष्ट अवस्था नष्ट होकर पूर्व स्थिति प्राप्त करने के लिए सभी को सावधानी से सत्य मार्ग पर चलने चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए उन्हें मूल सत्य तथा कल्याणकारी कर्त्तव्यों का आचरण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यजमानों को एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जो पुरोहित यजमानों की कल्याण कामना से वेदानुकूल सत्य कर्म का आचरण करवाता है उसे तन, मन, धन से यथाशक्ति प्रसन्न रखना चाहिए। उनका अन्न, वस्त्र आदि से यथोचित पालन करना चाहिए। इसी प्रकार पुरोहित को चाहिए कि वह यजमान की हितकामना से उसे सत्यकर्म के आचरण का उपदेश करे। यह उसका मुख्य धर्म है। पुरोहित को मर्यादा के बाहर लोभ नहीं करना चाहिए। दोनों को एक-दूसरे का हित चिन्तक होना चाहिए। प्रत्येक कार्य के लिए

---

१. अर्थात् गागाभट्टी, नारायणभट्टी। गु० मी०

लेने-देने के नियम शक्ति के अनुसार निश्चित करने चाहिए। पुरोहित का धर्म है कि वह यजमान की स्थिति का ध्यान रखे। तात्पर्य यह है कि लेन-देन सामर्थ्यानुसार होना चाहिए।

ये मूल सत्य संस्कार के ग्रन्थ संस्कृत लिपि[1] में लिखे गये हैं। परन्तु सस्कृत भाषा का अध्ययन छूट जाने से तथा धन व्यय करके भी उन ग्रन्थों के कहीं उपलब्ध न होने से उनका सत्य ज्ञान लोगों को प्राप्त होना अत्यन्त कठिन हो गया है। यह देखकर यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचा गया है। इसका उद्देश्य यह है कि लोगों को आवश्यक तथा उचित संस्कार सम्वन्धी ज्ञान प्राप्त हो और इसके द्वारा वे यथायोग्य धर्मानुसार व्यवस्था स्वयं स्वतन्त्ररूप से कर तथा करवा सकें। ये संस्कार करने का हेतु क्या है, ये किस रीति तथा पद्धति से करने चाहिए इत्यादि बातें समझ लेने से पुरोहित को संस्कार कराने तथा यजमान को करने में सुविधा होगी।

इस ग्रन्थ में प्रथम पृष्ठ १-२२ तक "सामान्य संस्कार विधि" लिखी गयी है। इसमें ईश्वरोपासना, यज्ञ कुण्ड, होमद्रव्य, आहुति-विधि तथा प्रमाण, सामान्य होमाहुति, मन्त्रपठन, वामदेव्य गान, स्थान और कालमान की विवेचना की गयी है। इनका सभी संस्कारों में थोड़ा वहुत उपयोग हुआ है। अतएव यह सामान्य संस्कार प्रथम पढ़कर उसमें लिखी गयी विधि तथा मन्त्रों का अर्थ भलीभांति समझ लेना चाहिए। इस से संस्कार कराने वाले तथा करने वाले को संस्कार की विधि[2] करने तथा कराने में सुगमता होगी। विवाहादि १५ संस्कार इस भाग में अनुक्रम से लिखे गये हैं। सोलहवां अन्त्येष्टि—मृतक

१. यहां 'संस्कृत भाषा' होना चाहिये। यु० मी०

२. मूल पाठ में 'संस्कार विधि' समस्त पद है। हमने अर्थ की स्पष्टता के लिये असमस्त अर्थात् विग्रहरूप प्रयोग रखा है। यु० मी०

संस्कार पृथक् पुस्तक में छापकर प्रकाशित किया है उसे श्मशान भूमि में लोगों को ले जाने में सुगमता होगी।

ये १५ संस्कार समाप्त होने पर अन्त में वेद तथा शतपथ ब्राह्मण आदि आर्ष ग्रन्थों के मूल वचन प्रमाणार्थ दिये गये हैं। सब से अन्त में संस्कारों में आये हुए मन्त्रों का अर्थ संक्षिप्त रूप से दिया गया है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। अब विशेष यही कहना है कि जो कार्य उत्तम रीति से किये जाते हैं वे लोगों में उत्तम, पूज्य और ग्राह्य माने जाते हैं और यह **'चक्षुर्वै सत्यम्''** है। सन्तान उत्तम उत्पन्न होने पर उसे सुशिक्षा, विद्याध्ययन, ब्रह्मचर्य और सत्संग इत्यादि नियमित सदाचरण में प्रवृत्त करना चाहिए। उसका उचित समय पर विवाह करने से मानव प्राणी (स्त्री पुरुष) शारीरिक और मानसिक स्थिति में (अर्थात् बल और बुद्धि में) सर्वोत्कृष्ट सुदृढ़ होता है। अतः सब सज्जन पुरुषों को वेदों की कल्याणकारी आज्ञा है कि वेदानुकूल धर्म प्रतिपादित ग्रन्थों के अनुसार उचित धार्मिक अनुष्ठान (आचरण) के द्वारा लाभान्वित हों। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इसको पालन करने की सद्‌बुद्धि सभी को प्रदान करे। प्रभु की कृपा से यह कार्य सिद्ध हो।

मुम्बई मिती शुद्ध १ माघ मास उदगयन, शालिबाहन शक १८०३ — **पं० बा० वि० गांवस्कर**

---

# उपोद्घात

## [ द्वितीय भाग का ]

इस संसार में मनुष्य प्राणी को किस प्रकार का आचरण करना चाहिए आदि नियम वेद प्रतिपादित आश्वलायन गृह्य सूत्रादि ग्रन्थों में प्रदर्शित किये गये हैं। इनमें विवाहादि षोडश (१६) संस्कार (सम्यक् नियमित आचार) मनुष्य के लिए आवश्यक बताये गये हैं। इन षोडश संस्कारों में से विवाह, गर्भाधान, गृहस्थाश्रम, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडा-करण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन तथा वानप्रस्थ— संन्यासाश्रम ये १५ संस्कार स्वतन्त्र पुस्तक में प्रकाशित किये गये हैं। शेष १६ वां संस्कार—"अन्त्येष्टि—मृतक संस्कार" पृथक् छाप-कर प्रसिद्ध किया है। पृथक् छापने का कारण यह है कि इसे लोगों को श्मशान भूमि में ले जाने की सुविधा हो।

इस वेदानुकूल अन्त्येष्टि विधि में यज्ञीय वृक्ष काष्ठ तथा केसर आदि में सुगंधित घृत के द्वारा मृतक देह भस्म कर देना चाहिए। मृत्यु जनित शोक निवारणार्थ संन्यासी, ब्रह्मवादिनी, साधु संत इत्यादि सत्पुरुषों के सन्निकट जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करे। निष्काम बुद्धि से विद्या पढ़ाना, धर्मार्थ कुआं-तालाब आदि बनवाना इत्यादि परो-पकारी कार्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार करे। अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बन्धित केवल इतना ही कर्त्तव्य है। परन्तु इस आद्य, सर्वमान्य ऋषि प्रणीत वेदोक्त संस्कार के सम्बन्ध में और इसी प्रकार विवाहादि अन्य गृह्य संस्कारों के सम्बन्ध में स्वार्थी लोगों ने भोले लोगों को धर्म के बहाने उलटी बातें समझा कर उन्हें भर दोपहर के प्रकाश

में लूटना प्रारम्भ कर दिया। इस लूट पर अपना जीवन निर्वाह करने के लिए निर्णय सिन्धु, नारायण भट्टी, अनन्त भट्टी, गागा भट्टी, काल माधव, हेमाद्री, द्योत, शेखर इत्यादि सैकड़ों ग्रन्थ रचे तथा उन में वेद विरुद्ध—स्वार्थी क्रिया-कर्म और ढोंग का विधान किया इस नये खड़े किये ढोंग के आधार पर इस समय अविद्वान् पुरोहितों ने लोगों को फंसा कर अपनी उपजीविका का साधन बना लिया है। इस प्रकार के पाखंड भोले भाले लोगों में बहुत समय से प्रचलित होने के कारण ऋषि प्रणीत सत्य धर्म का लोप हो गया है। लोगों के मन में यह भली भांति बैठ गया है कि यह पाखंड ही सत्यधर्म और शास्त्र के अनुकूल है। लोगों के मन से यह मिथ्या विचार निकालने के लिए इस सम्बन्ध में थोड़ा स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

वेद का तात्पर्य क्या? उनको रचना किसने की? वेद प्रतिपादित सत्य ग्रन्थ (शास्त्र) कौन से हैं? इन बातों के सम्बन्ध में लोगों के भीतर बड़ा भ्रम है अतः इन्हीं को लक्ष्यकर यहां दो शब्द लिखे जा रहे हैं। जैसे आजकल राजा दीवानी और फौजदारी के लिए विषयानुसार अलग--अलग न्यायालय स्थापित करता है वैसे ही सृष्टि के प्रारम्भ में अपौरुषेय अर्थात् अयोनि संभव पुरुष जिसकी ऋषि (ज्ञानी, श्रेष्ठ) संज्ञा है ने किये। उन आद्य अयोनि सम्भव अपौरुषेयों ने गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, इस प्रकार के छन्दों की जो क्रमशः २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८ अक्षरों के हैं, अनन्त ज्ञान दर्शक छन्दोबद्ध कविता प्रारम्भ की। उसकी वेद (विद् ज्ञाने) अर्थात् ज्ञान मूर्ति संज्ञा है। यह छन्दोबद्ध कविता व्यासादि महापुरुषों ने विषयानुसार ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इन चार पृथक्--पृथक् भागों में एकत्र की[1] इसीलिए उसका

---

१. उपर्युक्त लेख अस्पष्ट है। व्यास जी ने वेदों के चार भाग किये, यह भी ठीक नहीं है। यु० मी०

"संहिता"—एकत्र की हुई, नाम है इस प्रकार वेदों की उत्पत्ति हुई। उनमें (यजुर्वेद, अध्याय २६)।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥२॥

इस प्रकार ब्राह्मणादि चारों वर्ण और उनसे भिन्न भी अर्थात् सभी लोग वेद पढ़कर तदनुसार आचरण करें यह स्वयं वेद की स्पष्ट आज्ञा है। ऐसा होते हुए भी "वेद अमुक जाति ही पढ़े, अन्य न पढ़ें, पढ़ेंगे तो अधोगति प्राप्त होगी" इस प्रकार के मिथ्या विचार स्वार्थी लोगों ने भोले भाले लोगों के मन में बैठा दिये हैं। अतः ऐसे जड़ जमाये हुए मिथ्या विचार सभी को उखाड़ फेंकने चाहिए। मनुष्य को किस प्रकार का आचरण करना चाहिए इस बात का विशेष स्पष्टीकरण वेदों के आधार पर आश्वलायन, पारस्करादि गृह्य सूत्र में ऋषियों ने किया है। ये गृह्य सूत्र ही सत्य धर्म शास्त्र ग्रन्थ हैं। कितने ही अविचारी लोग इन सूत्रों में द्विधा मानकर एक ही सूत्र लेकर बठ जाते हैं।[1]

सल—देखिए आश्वलायन सूत्र पक्षीय लोग यदि पारस्कर गृह्य-

---

१. जिस प्रकार राजा की विधि के अनुसार दीवानी और फौजदारी के पृथक्-पृथक् विभाग होते हैं और सभी को मान्य करने पड़ते हैं, वैसे ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इस प्रकार विषयानुसार रचे गये पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मान्य करके लोगों को उनके अनुसार आचरण करना चाहिए। इतने पर भी कितने ही हठवादी लोग वेद के एक-एक पक्ष मानते हैं अर्थात् एक वेद के भाग मानकर दूसरे वेद भाग को तुच्छ मानते हैं अथवा उसके सम्बन्ध में विचार ही नहीं करते तथा उसमें कही गयी बात को नहीं मानते! ऐसे लोगों को सर्वथा अविचारी मानना चाहिए।

सूत्र नहीं मानते तो वे तत्सूत्र प्रतिपादित यज्ञोपवीत क्यों धारण करते हैं ? आश्वलायन गृह्यसूत्र में तो यज्ञोपवीत सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है। अतः केवल आश्वलायन गृह्यसूत्र लेकर बैठने वाले लोग यज्ञोपवीत कदापि न धारण करें, यह स्पष्ट है। तात्पर्य यह कि जैसे चारों वेद अलग-अलग विभागों में विभक्त होने पर भी एक समान मान्य है वैसे ही उनके आधार पर गृह्यसूत्र भी सब को एक समान मान्य होने चाहिए, क्योंकि वेद और उन पर आधारित सूत्रों के समान मानी गयी छान्दोग्य उपनिषद् में **यद्वै किंचन मनुरवदत्तद् भेषजं भैषजायाः** ।। मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म की मान्यता दर्शायी गयी है। इतना अवश्य है कि यह स्मृति स्वार्थी भ्रष्ट लोगों ने नूतन क्षेपकों[1] के द्वारा बिगाड़ दी है, अतः इसका वेदानुकूल विषय ही ग्राह्य है।

इस मनुस्मृति का प्रमाण महाभारत में व्यास ने प्रचुर स्थानों पर अंकित किया है और इसी प्रकार स्मृति सर्वमान्य भी है। इसकी भांति पराशरादि स्मृतियां मान्य नहीं हैं। लघु पराशर, बृहत्पराशर, वृद्धशातातप, वृद्ध मनु इस प्रकार के स्मृति ग्रन्थ आधुनिक हैं। जिन में स्वार्थी लोगों ने स्व स्तुति और पर निन्दा की कथाएं[2] तथा इतिहास लिखा है। "**कलौ पाराशरी स्मृता**" (कलियुग में पराशर प्रतिपादित धर्म मानें) यह वाक्य पाराशर स्मृति का है। अब हम इस बात की असत्यता पर विचार करें। इस पाराशरी के प्रारम्भ में लिखा है कि "सभी ऋषि व्यास के निकट जाकर कहने लगे कि हमें वर्णाश्रम के सम्बन्ध में समझाइये। व्यास ने कहा कि मैं वर्णाश्रम

---

१. क्षेपकों के विशेष स्पष्टीकरणार्थ "अहिंसा धर्म प्रकाश" ग्रन्थ के पृष्ठ २०,२१,२२ देखिए।

२. इसका विशेष स्पष्टीकरण "अहिंसा धर्म प्रकाश" पृ० २२,२३ पर किया है।

नहीं जानता। तब निश्चय हुआ कि पराशर से जाकर पूछना चाहिए। पराशर के निकट जाकर सबके प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—"**कलौ पाराशरी स्मृता**" तात्पर्य यह कि लघु मध्य और वृद्ध[1] पराशर का कहा हुआ धर्म कलिकाल में पालन करें। वाचक इस पर विचार करें कि जिन व्यास ने पुराण, महाभारत जैसे ग्रन्थ रचे उनके सदृश ज्ञानी पुरुष को वर्णाश्रम धर्म का ज्ञान नहीं। इस प्रकार लिखते हुए स्वार्थी पराशर को भला क्यों लज्जा नहीं आयी ? दूसरी बात यहां कि पराशर अपने ही मुंह से कैसे कहता है कि कलिकाल में मेरे (पराशर के) ही धर्म का आचरण करो। आद्य वेद प्रतिपादित गृह्य सूत्रानुकूल धर्म छोड़कर अहंकार और स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने ही धर्म का पालन करने के लिए कहना विचारवान् लोगों के समक्ष उपहासास्पद होगा, यह भान पराशर जी को गांजे अथवा स्वार्थ के नशे में सम्भवतः नहीं रहा। तात्पर्य यह कि बालक, तरुण, वृद्ध पराशरादिक ने 'स्मृति' के नाम पर प्रचुर ग्रन्थ लिखे हैं। ये ग्रन्थ सर्वथैव अप्रामाणिक और मिथ्या हैं। पुराणेतिहास भी इसी प्रकार के हैं। न्याय तथा अन्याय, धर्म तथा अधर्म, दया तथा निर्दयता इनका विचार करके आचरण करने पर परिणाम क्या होता है ? पुराणेतिहास ग्रन्थों को समझकर उचित न्याय पूर्वक आचरण करे। इनकी ईश्वर लीला का कथा भाग सुनकर ईश्वर का गुणानुवाद करे। उसका प्रेम पूर्वक स्मरण करे। यही पुराणादि ग्रन्थों का उद्देश्य है। परन्तु ऐसी कथाओं में से अधर्म पूर्वक किये गये

---

१. मूल मराठी पाठ में 'लहान, तरुण, वृद्ध' शब्द है। लहान का अर्थ छोटा या बालक है, वृद्ध का अर्थ बड़ा या बूढ़ा है। अतः यहां तरुण अर्थ लघु और बड़ा (वृद्ध) की मध्य स्थिति के लिये प्रयुक्त हुआ है। पराशर स्मृति के लघु मध्य और वृद्ध तीनों पाठ उपलब्ध होते हैं। यु० मी०

या प्रसंगानुरूप घटित हुए क्रिया-कर्म विधिवत् मानना या कथा के अनुसार प्रदर्शित मनमाने आचार-विचार प्रमाणभूत मानना, सर्वथैव अनुचित है।

जिस प्रकार धर्म भ्रष्ट स्वार्थी लोगों ने मद्य-मांस सेवन तथा अगम्य स्त्री गमन, विना पैसे के साध्य करने के लिए, शिव पार्वती के संवाद रूप में विलास तन्त्र, योनितन्त्र, सुन्दरी तन्त्र जैसे सैकड़ों निन्द्य ग्रन्थ[1] रचे हैं, वैसे ही स्वार्थी लोगों ने "गोपीनाथभट्टी, महेशभट्टी, बालंभट्टी, नारायणभट्टी, शंकरभट्टी, श्राद्ध शान्ति, उत्सर्ग दान, आचार शुद्धि, काल माधव १२, हेमाद्री १२, द्योत १२, शेखर १२, निर्णयसिंधु, शान्ति कमलाकर, पूर्त कमलाकर, शूद्र कमलाकर, कौस्तुभ, तिथिनिर्णय, व्रतकौमुदी, पुरुषार्थचिन्तामणी, व्रतार्थ, शास्त्रार्थ प्रदीप, शान्तिसार, कल्पवल्ली, गदाधर, रत्नसंग्रह, गृहरत्नावली, नारद पंचरात्र, रेणुकारिका, धर्मसिन्धु, दान तथा व्रतखंड। इस प्रकार के सैकड़ों नवीन ग्रन्थों को रचकर मूल सत्य वेद-प्रतिपादत धर्म में अव्यवस्था और अनियमितता उत्पन्न करदी। उपर्युक्त १२।१२ ग्रन्थों के रचयिताओं में से हेमाद्री दौलताबाद के जाधव राजा का मन्त्री और माधव विजयनगर के राजा का मन्त्री था। माधव के एक ग्रन्थ लिखने पर उसके विरुद्ध हेमाद्री लिखता। हेमाद्री का पूर्ण होने पर उसे पराजित कर आगे जाने के लिए माधव दूसरा रचता। इस प्रकार इन दोनों की लेखनियों के एक-दूसरे पर चढ़ाई करने के कारण ग्रन्थों के ढेर के ढेर लग गये। ये सब ग्रन्थ इस समय आलसी लोगों के लिए विना परिश्रम किये उपजीविका तथा सुखप्राप्ति के साधन बन गये हैं। इन सब ग्रन्थों का परिस्फोट करने पर अनेक महाभारत होंगे। फिर भी

---

१. इन निन्द्य वाममार्गी तन्त्र ग्रन्थों का विशेष स्पष्टीकरण "अहिंसा धर्म प्रकाश" पृष्ठ २७, २८, २९, ३० पर किया है।

इन सर्वसाधारण ग्रन्थों में कौन-कौन से वेद विरुद्ध मिथ्या क्रिया कर्म समाविष्ट कर दिये हैं तथा उनके द्वारा धर्म के बहाने द्रव्यहरण करने का दैनिक नियम स्वार्थी लोगों ने प्रारम्भ कर दिया है, इसका संक्षिप्त स्पष्टीकरण पाठकों को विश्वास दिलाने के लिए यहां किया जा रहा है। विवाहादि अधिकांश ऋषि प्रणीत संस्कारों के प्रारम्भ में "**तदंगविहितं गणपतिपूजनं, पुण्याहवाचनं, षड्विनायक पूजनं, मातृका पूजनं, नांदी श्राद्धं, नवग्रह पूजनं, ग्राम कुलदेवता पूजनं, कलश पूजनं, दीप पूजनं, देवदेवक पूजनं च करिष्ये**" इस प्रकार एकादश (११) प्रकार के कर्मों की लम्बी सूची पूर्वोक्त ग्रन्थों में समाविष्ट करके, उनके द्वारा जो स्वार्थ सिद्ध किया, उसका संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है—

**१. गणपति पूजन** – अर्थात् चावल की राशि पर नारियल अथवा सुपारी स्थापित करके उस पर "**लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय नागस्य नाग हारत्वं अंबिका त्र्यंबिकात्मजं**"॥ इस प्रकार के श्लोकों से, उस गणपति देवता को बुलाकर "आँ, ह्रीं, ह्लीं, क्राँ, क्रीं, ह्रौं, क्रौं, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, क्षं, हंसः, सोहं" यह पाठ त्रिवार उच्चारण करके उस देवता की प्राणप्रतिष्ठा करे। तदनन्तर उस पर जल चन्दन अक्षत (भीगे हुए चावल) फूल, हल्दी, रोली सिन्दूर आदि भोले लोगों की दृष्टि में भली भांति उभरने वाले पदार्थ सजा कर "**हिरण्यगर्भ गर्भस्थं हेमबीजो विभावसोः। अनतपुण्यफलद मतः शांन्ति प्रयच्छ मे**"॥ इस प्रकार के पाठ से देवता के लिए दक्षिणा देकर यह दक्षिणा पुरोहित को अर्पण करे। तत्पश्चात् कर्म समाप्ति के लिए "**ब्राह्मणपूजां च करिष्ये**" इस संकल्प से पुरोहित के हाथ पर या मस्तक पर जल चन्दन अक्षत इत्यादि डालकर "**सुवर्णमुद्रां अमुक शर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सप्रददे**" इस प्रकार बोलकर यथाशक्ति पुरोहित को दक्षिणा और सब पदार्थ दे।

२. **पुण्याहवाचन**– अर्थात् एक जलपूर्ण कलश चावलों की राशि पर, नारियल से ढककर स्थापित करे। इस जल में वरुणदेवता को उपर्युक्त गणपति की भांति बुलाकर प्राणप्रतिष्ठा करे। "**दक्षिणाः पांतु बहु धनमस्तु अस्तु बहुधनं, माहेश्वरी प्रीयतां-प्रीयतां माहेश्वरी**" इस प्रकार के ५-५० निश्चित किये हुए वाक्य क्रम से यजमान और पुरोहित बोले तथा पूर्ववत् पुरोहित को उसकी और देवता की दोनों दक्षिणाएं तथा सर्व पदार्थ दे।

३. **षड्विनायक पूजन**—अर्थात् मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख देवताओं के चिह्न, अन्नपूर्ण मिट्टी के बर्तन पर कुंकुम (रोली) से बनाकर, पूर्ववत् गणपति के समान उनको बुलाकर प्राणप्रतिष्ठा करे। अन्त में दोनों दक्षिणाएं तथा सब पदार्थ पुरोहित को दे।

४. **मातृका पूजन**—अर्थात् गौरी, पद्मा, शची, मत्सी, शूकरी, मकरी, कच्छपी, चामुंडा, पिंगला, महाकाली इस प्रकार के ६४ देवताओं को प्राणप्रतिष्ठा, सूप में वस्त्र रखकर, उस पर कुंकुम (रोली) से चिह्न करके तथा निकट नारियल, चावल रखकर इस में पूर्ववत् करे। अन्त में दोनों दक्षिणाएं तथा वस्तुएं पुरोहित को दे।

५. **नांदी श्राद्ध**—अर्थात् नान्दी मुख, सत्य वसु, पितर, इस प्रकार के सुन्दर मुख वाले देवताओं तथा पितरों को नारियल, चावल को राशि पर "भूर्भुवः स्वः" इस मन्त्र से बुलाकर गणपति की भांति पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठा करे। दोनों दक्षिणाएं तथा पदार्थ पुरोहित को दे।

६-७. **नवग्रह देवता**—अर्थात् राहु,केतु,शनि ग्रहों तथा काली, दुर्गा, भवानी, ग्राम, कुल देवताओं को अन्न की राशि पर बुलाकर पूर्ववत् उनकी प्राणप्रतिष्ठा करे। दोनों दक्षिणाएं और पदार्थ पुरोहित को दे।

८. **भमिपूजन**—अर्थात् कोई कार्य करने के लिये भूमि पर चन्दन अक्षत इत्यादि रखकर उसमें पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठा करे और दोनों दक्षिणाएं पुरोहित को दे।

९-१०. **कलश और दीपपूजन**—अर्थात् एक जलपूर्ण पात्र तथा एक दीप की स्थापना करके उन पर चन्दन अक्षत डालकर उनमें प्राणप्रतिष्ठा करे। दोनों दक्षिणाएं तथा पदार्थ पुरोहित को दे।

११. **देव देवक**—अर्थात् समिधा, आम्रपर्ण, नारियल, चावल रखकर उनपर मंडप देवता बुलाकर उनमें प्राणप्रतिष्ठा करे। दोनों दक्षिणाएं तथा पदार्थ पुरोहित को दे।

इस प्रकार २०-२२ महादक्षिणाएं और अनेक पदार्थं तथा पान पर २ आने, तुलसी के पत्ते पर ८ आने दर्भ पर ३ आने इत्यादि बीच-बीच में निश्चित की हुई उपदक्षिणाएं; जिनकी तो कोई गिनती ही नहीं है, जितना अधिक भोला यजमान मिलेगा उतनी ही अधिक से अधिक पुरोहित की चांदी। इस प्रकार इन साधारण कार्यों की महा तथा उपदक्षिणाएं हैं। अब विशेष संस्कार के लिए जो विशेष कार्य खड़े किये गये हैं उनका थोड़ा दिग्दर्शन यहां किया जाता है।

विवाह संस्कार के लिए "**कुंभ विवाह**, (वैधव्य योगाहर) **मृत भार्यात्व परिहारोपाय, सुवर्ण-विष्णु-मूर्ति-दान, अर्क विवाह, सुवर्णाभिषक, विनायक-शान्ति, बृहस्पति शान्ति, वाग्दान, सीमांत पूजा, अन्तःपट, कन्यादान, रजोदर्शन प्रायश्चित्त, ऐरिणी प्रदान, गौरीहर-पूजन**" ऐसे कर्मकाण्ड खड़े किये हैं। इनका सक्षिप्त विवेचन—

१. **कुंभ विवाह**—जन्म-समय अमुक ग्रह होने पर सर्वप्रथम वैधव्य दोष दूर करने के लिए वधू का एक मिट्टी के बर्तन से विवाह करना चाहिए। सुवर्ण के अश्वत्थपत्र युक्त मिट्टी का बर्तन चावलों की राशि पर स्थापित करके उसे मधुपर्क और दक्षिणा दे। उसके निकट वधू को लावें, दोनों के बीच में अन्तःपट (वस्त्र) रखकर "**गंगा सिंधु शंख**" इस नाम के पद्यरूप से उच्चारण करके वह अन्तःपट बीच से निकाल दे। तदन्तर वधू वह बर्तन देखे। इसके अनन्तर वधू और उस

बर्तन दोनों को **"विष्णु रूपिणेऽश्वत्थ कुंभायसुलक्षणामिमां कन्यां श्रीरूपिणी संप्रददे"** यह पाठ बोलकर सूत से लपेटे। तदन्तर **"समुद्रा ज्येष्टा०"** इस मन्त्र से वधू के शरीर पर जल छिड़के तत्पश्चात् पुरोहित को दक्षिणा और भोजन तथा सब पदार्थ दे। इस विवाह में मधुपर्क दक्षिणा, कुंभ दक्षिणा, भोजन दक्षिणा, अन्तःपट दक्षिणा, आचार्य दक्षिणा तथा इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त गणपति आदि पूजन सम्बन्धी २०।२२ महादक्षिणा, उपदक्षिणा तथा नारियल, चावल आदि पदार्थ पुरोहित को अर्पण करे, यह बात पाठकों के ध्यान में आ ही गयी होगी।

२. **सुवर्ण-विष्णु-मूर्ति दान**—वैधव्य से बचने के लिए एक ताम्र-पात्र में चावल भरकर उस पर सुवर्ण की, विष्णुप्रतिमा स्थापित करे। उसमें पूर्ववत् गणपति की भांति प्राणप्रतिष्ठा करे। उस मूर्ति पर चन्दन अक्षत इत्यादि चढ़ाकर उसे वस्त्रालङ्कार और दक्षिणा सहित पुरोहित को दें।

यह उपाय वैधव्य दूर करने के लिए हुआ। अब विधुर न होने का उपाय आगे देखिए:—

३. **मृत भार्यात्व-परिहारोपाय**—एक जलपूर्ण कलश चावल की राशि पर स्थापित करके उसमें पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठा करके चन्दन अक्षत इत्यादि लगायें तथा थोड़ा सा होम करके कलश दक्षिणा सहित पुरोहित को दे।

४. **अर्क विवाह**—एक बार पुरुष की स्त्री मर जाने पर पुनर्विवाह के समय स्त्री-मृत्यु-दोष निवारणार्थ **"आदित्य प्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीं, अर्कस्य पुत्रीं काश्यपगोत्रां इमां अर्ककन्यां तुभ्यं दत्ता"**[1] इस संकल्प से

---

१. मूल पुस्तक में यही पाठ है। यहां **'संप्रददे'** पाठ होना चाहिये। यु० मी०

प्रथम अर्क के पौधे से पुरुष का विवाह कराये। पूर्वोक्त कुंभविवाहानुसार सूत्र वेष्टानादि विधि करके अन्तःपटादि सब पदार्थ पुरोहित को दे।

५. **विनायक-शान्ति**—चावल की राशि पर जल पूर्ण ५ कलश स्थापित करके उन पर विनायक, अम्बिका की मूर्तियां "**वक्रतुंडाय धीमहि—तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। काल मालिन्यै धीमहि—तन्नो गौरी प्रचोदयात्**" इस पाठ से स्थापित करके उनमें गणपति की भांति प्राणप्रतिष्ठा करे और पुरोहित को दक्षिणा सहित सब पदार्थ दे। तत्पश्चात् होम करके उससे सम्बन्धि दक्षिणा, नारियल, चावल घृतादि पदार्थ पुरोहित को दे।

६. **बृहस्पति-शान्ति**—यह भी उपर्युक्त विनायक-शान्ति की भांति ही है। इसमें होमाहुतियां किंचित भिन्न हैं। परन्तु दक्षिणा के नियम वही हैं।

७. **रजोदर्शन-प्रायश्चित्त**—विवाह पूर्व वधू ऋतुस्नात होने पर पूर्वोक्त गणपति पूजनादि कार्य करके कुछ होमाहुतियां दें, पुरोहित को दुधारू गाय और महादक्षिणा दे। वधू के ऋतु समय गिनकर उनकी संख्या के बराबर पुरोहित को गोप्रदान (१० से २०० रु० तक एक गोप्रदान का मूल्य) करके यथेच्छ भोजन दे।

८. **वाग्दान**—वर-पिता वधू-पितृ-गृह जाकर पत्नी सहित पीठासन पर बैठे। नारियल, चावल की राशि पर गणपति को तथा जल पूर्ण कलश पर वरुण को आमन्त्रित करके पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठा करे उस पर चन्दन, अक्षत इत्यादि चढ़ाकर पुरोहित को दक्षिणा तथा पदार्थ दे। इसके अतिरिक्त वधू-पिता "**वाचा दत्तामया कन्या पु[illegible] स्वीकृता त्वया। कन्यावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं सुखी भव**" [illegible] प्रकार का पाठ उच्चारण करके चावल की राशि पर [illegible]

देवता को आमन्त्रित करे। उस पर वधू से चन्दन, अक्षत, फूल रखवा-कर पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठा करे तथा पुरोहित को दक्षिणा सहित सब पदार्थ दे।

९. **सीमान्त-पूजन**—वधू-पिता वर के घर या अन्यत्र जाकर उपर्युक्त वाग्दान की भांति विधि करके पुरोहित को दक्षिणा इत्यादि दे।

१०. **अन्तःपट**—वधू-वर के बीच में एक वस्त्र परदे की भांति रखकर गंगा, सिंधु, सरस्वती, माला, अस्थि, शंख जैसे पदार्थों के पद्य रूप में नाम उच्चारण करके वह अन्तःपट तथा दक्षिणा पुरोहित को दे।

११. **गौरी-हर-पूजन**—कात्यायनी, शची, पार्वती इस प्रकार के देवताओं की सुवर्ण अथवा रौप्य मूर्ति या रुपये चावल की राशि पर वस्त्र रखकर, उस पर स्थापित करके चारों ओर ४ कलश रखकर, उन पर सूत्र लपेट दे। तत्पश्चात् उस मूर्ति या रुपये में पूर्ववत् प्राण-प्रतिष्ठा करके चन्दन अक्षत इत्यादि लगाये। तदन्तर पुरोहित का दक्षिणा सहित सर्व पदार्थ तथा यथेच्छ भोजन दे।

१२. **कन्यादान**—वधू-पिता वधू की हस्तांजलि वर की हस्तांजलि में रखकर, उन दोनों वधू-वर को हस्तांजलि में वधू-पिता कुश, अक्षत युक्त जल '**कन्यां कनकसपन्नां दास्यामि विष्णवे तुभ्यं**'[1] इस प्रकार पाठ बोलकर डाले और पुरोहित को महादक्षिणा तथा कन्यादान दक्षिणा दे।

---

१. अमुक प्रपौत्राय—अमुक प्रपौत्री ⎫ अमुक शर्मणे श्रीधर
,, पौत्राय— ,, पौत्री ⎬ रूपिणे वराय-श्रीरूपिणी
,, पुत्राय — ,, पुत्रीं ⎭ प्रजोत्पादनार्थं

तुभ्यमहं···प्रददे न मम। इस प्रकार लम्बे शीर्षक का पाठ है।

१३. **सुवर्णाभिषेक**—एक कांस्य के बर्तन में जल लेकर सोने की अंगूठी, कुश, दूर्वा, दर्भ अथवा गूलर की गीली पत्तियों से युक्त वह जल वधू-वर के शिरोभाग पर **"स यः कामयेत०"** इस प्रकार (औषध विधि दर्शक) पाठ बोलकर छिड़के। पुरोहित को कम से कम आधा तोला सोना अथवा इतने मूल्य के रुपये; और दक्षिणा तथा भोजन दे।

१४. **ऐरिणी-प्रदान**—विवाह के चौथे दिन रात को बांस के पात्र में (सूप में) सुवर्ण, चावल, गेहूं, कंघा, कुंकुम, (रोली) पंखा, दीप, आरसा (दर्पण), वस्त्र, फल, ताम्बूल, लड्डू, गोझे (=गुञ्जे) इत्यादि पकवान और नारियल रखकर उन पर गणपति की प्राण-प्रतिष्ठा करके चन्दन, अक्षत, सिन्दूर इत्यादि चित्र विचित्र दिखाई देने वाले पदार्थ लगाये और वह सूर्य **"वंशपात्रमिदं दानं वंशवृद्धिकरं परं। ऐरिणी त्वमुमादेवी वंशपात्रस्वरूपिणी। कन्यादानस्य संपूर्णफलं देहि शिवप्रिये"** इस प्रकार पाठ बोलकर वधू-पक्ष के लोगों के सिर पर रखे। तत्पश्चात पुरोहित को दक्षिणा सहित सब पदार्थ दे।

इस प्रकार नारियल, चावल आदि आमान्न, वस्त्र और असंख्य दक्षिणाओं की लूट शीघ्र-शीघ्र हाथ लगे। अतः वर्तमान समय-बद्ध सरकारी विधि की भांति पूर्वप्रदर्शित नूतन ग्रन्थों में स्वार्थी लोगों ने १० वें वर्ष में ऋतु प्राप्ति का काल निश्चित करके स्त्रियों के विवाह की अवधि इस ऋतु प्राप्ति तक अर्थात् कन्या के १० वर्ष की होने के भीतर रखी है। लड़की के १० वर्ष की होने के भीतर अर्थात् ऋतु काल प्राप्त होने के पूर्व विवाह न हुआ तो जाति-भ्रष्टता और माता पिता, भाई को नरक प्राप्ति का[1] भय होने के कारण तथा **"सप्त वर्षात्वियं कन्या पुत्रवत्पालिता मया"** और **अष्टवर्षा भवेद्गौरी"** इस

---

१. **अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी।**
**दश वर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥**

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठ भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं याति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।।

ये दो श्लोक काशीनाथोपाध्याय ने शीघ्रबोध ग्रन्थ में लिख डाले हैं। परन्तु ये मिथ्या हैं, क्योंकि सुश्रुत मन्वादिक आद्य सर्व मान्य आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध, युक्ति और तर्कों से शून्य तथा स्वार्थपूर्ण हैं, यह बात अन्ततः विचारवान् व्यक्ति की समझ में अवश्य आ जायेगी। देखिए, गौरी का अर्थ है शुभ्र वर्ण की अथवा महादेव की स्त्री—पार्वती; अब आठवें वर्ष कन्या का विवाह करने पर कृष्ण वर्ण की कन्या शुभ्र वर्ण की कैसे होगी? अथवा महादेव की स्त्री गौरी जो माता मानी गयी है, उस माता के साथ विवाह कैसे हो सकेगा? दूसरे रोहिणी नक्षत्र आकाश में रहता है। वह निर्जीव पदार्थ है। उससे विवाह कैसे होगा? किंवा रोहिणी बलदेव की माता वसुदेव की पत्नी थी, वह स्वर्ग जा चुकी है। उसका विवाह कैसे होगा? कभी सम्भव नहीं है। वैसे ही १० वें वर्ष में कन्या होती है, यह कहना भी मिथ्या है; क्योंकि जब तक विवाह नहीं होता तब तक लड़की की कन्या ही संज्ञा होती है। साथ ही पिता के लिए तो वह सदैव कन्या और भाई के लिए भगिनी रहती है। काशीनाथोपाध्याय कन्या को १० वें वर्ष से रजस्वला मानने के लिए लिखता है, परन्तु अनुभव के आधार पर यह बात असत्य है। १० वर्ष से आगे अर्थात् १० से १५ वर्ष तक की ६० प्रतिशत कन्याएं रजोदर्शन न होने वाली होती हैं। यह बात निर्विवाद तथा अनुभव सिद्ध है। दूसरे काशीनाथोपाध्याय लिखता है कि यदि माता पिता और ज्येष्ठ भ्राता रजस्वला कन्या देखेंगे अर्थात् १० वर्ष से पूर्व विवाह न करेंगे, तो वे नरक में जायेंगे। काशीनाथोपाध्याय की यह बात पढ़कर विचारवान् व्यक्ति उसे महानीच, मूर्ख तथा स्वार्थी मानेंगे, क्योंकि "माता-पिता तथा बन्धु ने ऐसा कौन सा महा-अपराध किया है कि कन्या के रजस्वला होने तथा १० वर्ष के भीतर उसका विवाह न करने से वे नरक में जायें?" रजस्वला होना स्त्रियों का सृष्टि सम्बन्धी

प्रकार के नूतन रचित वाक्य धर्म-शास्त्र के रूप में कान में पड़ने लगने के कारण, अज्ञानी भोले लोग ७-८ वर्षों के भीतर ही कन्या का विवाह कर के छुट्टी पा जाते हैं। स्त्री-पुरुषों का आमरण एकत्र एक विचार से रहना, परस्पर एक-दूसरे के सुख-दुःख और हानि-लाभ में सहभागी रहना, एक दूसरे की सहायता करना, परस्पर प्रेम तथा स्नेह भाव से रहना, सन्तति उत्पन्न करके उसका यथाशक्ति संरक्षण करना तथा उसे उत्तम शिक्षण देकर सन्मार्ग में लगाना इनसे सम्बन्धित स्त्री-पुरुष के प्रतिज्ञा लेख का नाम विवाह है। परन्तु यह विवाहरूप प्रतिज्ञा लेख साधारणतः अज्ञानावस्था में होने पर किसी भी विचारवान् व्यक्ति को विचार करने पर न्याय, तर्कनीति के विरुद्ध प्रतीत होगा। आज जब पैसे इत्यादि के लेन-देन में जनता तथा शासन की अनुमति से मनुष्य की आयु १५-१६ वर्ष की आवश्यक है, तब आमरण एकत्र रहने के लिए विवाहरूपी प्रतिज्ञा लेख के लिए भला सज्ञानता, दूरदृष्टि तथा दूर तक विचार करने की कितनी आवश्यकता होनी चाहिए। छोटी बालिका ६-७ वर्ष की कन्या, जो प्रजोत्पादनार्थ निर्बल तथा अयोग्य होती है, से प्रजोत्पादनार्थ प्रतिज्ञा करवाकर उस बालिका को

---

स्वाभाविक धर्म है, वह अटल है। क्या माता-पिता में ऐसी सामर्थ्य है कि वे रजोदर्शन बन्द कर दें? कितने ही स्वार्थी लोग कहते हैं कि पिता के घर में कन्या रजस्वला होगी, तो पितादिक नरक में जाते हैं। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। आद्य सर्वमान्य मनु, ऋषि ने तो स्पष्ट लिखा है कि—"त्रीणी वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य ऋतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालाद् एतस्माद् विंदेत सदृशं पतिम्"। रजोदर्शन के पश्चात् तीन वर्षों में स्त्री विवाह तथा गर्भाधान योग्य होती है। तात्पर्य यह कि इस प्रकार के सर्वमान्य, आद्य, सत्य शास्त्र के विरुद्ध शास्त्रार्थ रूप में प्रतिपादित करना, विचारवान् व्यक्ति के समक्ष उपहासास्पद होगा, इस वास्तविकता का भान स्वार्थान्ध काशीनाथोपाध्याय को नहीं रहा।

प्रजोत्पादनार्थ प्रवृत्त करना कितना अन्याय, अत्याचार, नीचता और दुष्टता का कार्य है। इस प्रकार के विवाहित बालिका पर अविचारी पति अयोग्य समय में भी अत्याचार करते हैं। अतः उस कन्या के माता, पितादि आप्तजन यदि उस कन्या को सुख देना चाहते हैं, तो इस अत्याचार तथा नीचता पर कुछ तो विचार करें। **चतस्रोवस्था शरीरस्य वृद्धिर्यौवनसम्पूर्णता किंचित् परिहाणिश्चेति। तत्राषोडशाद्वृद्धिः। आपंचविंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः संपूर्णता"** इस धन्वन्तरि मुनिकृत सुश्रुत नामक प्राचीन सर्वमान्य वैद्यक ग्रन्थ की उक्ति के अनुसार मनुष्यों की अर्थात् स्त्री-पुरुषों की युवावस्था में अर्थात् १६ वर्ष के ऊपर शरीरस्थ धातुएं पुष्ट तथा परिपक्व होती हैं। इनसे शारीरिक पुष्टि और विचार शक्ति सुदृढ़ होती है। इस यौवनावस्था में शरीरस्थ धातु पक्व होने लगने पर मनुष्य को शारीरिक और मानसिक स्थिति की अच्छाई, बुराई तथा विचारों के सम्बन्ध में उत्तम परिज्ञान होता है। अमुक स्त्री या पुरुष आगे चलकर शरीर से नीरोगी या रोगी होगा, मानसिक दृष्टि से सद्गुणी या दुर्गुणी होगा इन बातों का यौवनावस्था में विशेष बोध होता है। ये बातें विचारवान् व्यक्तियों के लिए अनुभव सिद्ध और निर्विवाद रूप से मान्य हैं। इस प्रकार मानवीय स्वभाव के शारीरिक और मानसिक धर्मों तथा गुणों का अनुमान करने के समय से ८-९ वर्ष पूर्व ही बालकों का गठजोड़ करके मूर्ख उन्हें दुःख के समुद्र में डालते हैं। ऐसी अज्ञानावस्था में परस्पर सहमति के विना विवाह होने के कारण प्रायः परस्पर एक दूसरे के स्वरूप के प्रति ऊब और तिरस्कार उत्पन्न होता है। उत्तम संतति होने के मुख्य साधन पारस्परिक प्रेम का भंग होकर भयंकर अनर्थ उत्पन्न होता है।

वधू कुरूप या कृष्ण वर्ण की होने पर, वर तरुण होने पर

अपने रूप के अनुसार अन्य सुन्दर स्त्री का वरण करता है या वेश्या-गामी बनता है। इससे बेचारी वधू को अन्न-वस्त्र का प्राप्त होना भी कठिन हो जाता है। यदि वर कुरूप तथा कृष्ण वर्ण हुआ तो वधू युवती होने पर उस वर से ऊब जाती है तथा अपने सुख के लिए अपने रूप के अनुसार अन्य पुरुषों से अनाचार करने में प्रवृत्त होती है। इस प्रकार का अनाचार पति की दृष्टि में आने पर क्रोध के आवेश में वह उसके प्राण ले लेता है या उसे घर से बाहर निकाल देता है। इस प्रकार परित्यक्ता नारी विवश होकर उदर भरण के लिए वेश्या व्यवसाय करने के लिए बाध्य होती है। इस प्रकार परस्पर बिना अनुमोदन के अज्ञानावस्था में किये गये विवाह के कारण दोनों पक्षों में बिगाड़ उत्पन्न हो जाता है। दूसरी बात यह है कि बाल्यावस्था में प्रथमत. लड़की-लड़के नीरोगी दिखाई देते हैं, परन्तु आगे चलकर शरीरस्थ धातु पक्व होने के समय अर्थात् कन्या के १५-१६ वें और लड़के के २०-२२ वें वर्ष के आस पास, कफ, क्षय, धातु क्षीणतादि पिंडस्थ रोगों का उद्भव होता है। रोग दृष्टिगोचर होने के समय के सम्बन्ध में मूर्ख माता-पिता किंचित विचार अथवा चिन्ता न करके उस समय के पूर्व ही बालकों को विवाह-ग्रन्थि में बाँध देते हैं। यह काम इनके लिए अत्यन्त नीचतापूर्ण तथा लाञ्छनास्पद है। इस प्रकार के विवाहित अर्भक वधू-वर आगे चलकर दोनों रोगी या नीरोगी होने पर समानता आ जाती है; परन्तु बहुधा जब विरुद्ध स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तब दोनों ओर संकट उत्पन्न हो जाता है। वधू रोगी होने पर बेचारा वर उससे प्रजोत्पत्ति और सुखोत्पत्ति होने की आशा से, उसे अच्छा कराने के लिए, सैंकड़ों रुपये व्यय करके, अगले परिणाम के सम्बन्ध में सदा चिन्तित रहता है। इतने प्रयत्नों के अनन्तर यदि वह स्वस्थ हो गयी तो ठीक है पर मृत्यु ही हो गयी, तो विवाह और रोग निवारण के लिए, भविष्य के सुख की आशा से किया हुआ व्यय

तथा श्रम, सुखोत्पत्ति का लेश मात्र भी प्राप्त किये विना, व्यर्थ गया।

इस प्रकार बेचारा रोते हुए हाय हाय करते बैठता है। इसी प्रकार जब वर ऐसे पिंडस्थ रोगों से ग्रस्त होकर असमय मरता है तब हाय ! हाय ! बेचारी बालिका वधू पूर्णतः दुःख के सागर में डूब जाती है। आगे चलकर उसकी इतनी निकृष्ट अवस्था होती है कि वह मृत्यु को ही ठीक समझती है। सास, ससुर, देवर, माता-पितादि आप्तजन चारों ओर से उसे कष्ट देते हैं, परन्तु इन मूर्खों की समझ में यह नहीं आता कि इन्हीं की मूर्खता और अविचार से उसे दुःख भोगने पड़ रहे हैं। वेदादि सत्यशास्त्र ग्रन्थों के अनुसार कन्या सज्ञान अवस्था में अर्थात् १५-१६ वें वर्ष में और पुरुष २३-२४ वें वर्ष में विवाह योग्य होता है। इतना होने पर भी समय से ९-१० वर्ष पहले ही कन्या को विवाह ग्रन्थि में बांध देते हैं। इन १० वर्षों की अवधि में उसका विवाहित वर रोगादि के आक्रमण से बचा, तो उसे विषय सुख इत्यादि की प्राप्ति होगी। ऐसी अवस्था में उसे १० वर्ष तक क्यों बांधकर रखा जाय ? हम देखते ही हैं कि इन १० वर्षों की अवधि में छोटा अथवा तरुण या वृद्ध कोई हो, उसे कोई सामान्य रोग ही नहीं प्रत्युत उसके कालग्रस्त तक होने की सम्भावना रहती है। ऐसी अवस्था में बेचारे बालक को दुःख के जबड़े में जाने देने के लिए क्यों प्रवृत्त किया जाय ? स्त्री में १५-१६ वर्ष के निकट तथा पुरुष में २०-२२ वर्ष के निकट पिण्डस्थ धातु पक्व होने के समय कफ, क्षयादि अकाल प्राण-नाशक पिंडस्थ रोग दृष्टिगोचर होते हैं। यह बात आद्य सर्वमान्य धन्वंतरि आदि महामुनियों ने सिद्ध की है। सम्प्रति राजा के द्वारा की गयी जनगणना के अनुसार स्त्रियां १७-१८ वर्ष के ऊपर और पुरुष २३-२४ वर्ष के ऊपर जितने मरते हैं उससे अधिक १६-१७ वर्ष की स्त्रियां तथा २०-२२ वर्ष के पुरुष मरते हैं। यह अनुभव से सिद्ध होता

है। इस अनिवार्य दुःखोद्भवक समय का विचार तथा किंचितमात्र चिंता न करके बेचारे बालकों को दुःखरूपी तोप के मुंह में जाने के लिए क्यों प्रवृत्त किया जाय ? अरे कन्या के मातापितादि आप्तजनो! तुम्हीं अपनी प्रिय कन्या को अनिवार्य दुःख प्राप्ति के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करते हो, इसमें बेचारी छोटी कन्या का क्या अपराध है। तुम्हारी मूर्खता, विचारहीनता, नीचता और भोलेपन से ही उसे दुःख भोगने पड़ते हैं। परन्तु उल्टे तुम "अभागिन कुलघ्ना" जैसे नीच शब्दों से उसका तिरस्कार करते हो तथा उसे दुःख देते हो। तुम्हारी इस निर्दयता के लिए क्या कहा जाय। कितने ही लोग कहते हैं कि उचित समय पर विवाह करने पर भी जिस स्त्री के भाग्य में सुख नहीं है उसका पति मरता ही है। परन्तु इस प्रकार की घटनाएं बहुत कम होती हैं। १७-१८ वर्ष के ऊपर विवाहित स्त्रियों तथा २३-२४ वर्ष के ऊपर विवाहित पुरुषों को स्थिति विगड़ी हुई कदाचित ही दृष्टिगोचर होगी। इस प्रकार की कोई स्त्री मरती भी है तो उसके बहुधा बच्चे हो चुके होते हैं। पति की मृत्यु हुई तो बहुधा उसके बच्चे होते हैं। बच्चे न भी हुए तो वह आयु में बड़ी, प्रौढ़ा होने और पति के साथ रही हुई होने तथा घर के सभी व्यवहार समझकर करने लगने के कारण अन्न-वस्त्र इत्यादि के सम्बन्ध में उसको कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इतना ही नहीं उसे कोई दुःख भी नहीं देता। सज्ञान और प्रौढ़ अवस्था के कारण उसे भी दुःख का अनुभव नहीं होता। परन्तु अयोग्य समय में केवल बाल्यावस्था में विवाहित सैंकड़ों स्त्रियां पति सुख प्राप्ति के पूर्व ही विधवा होते सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। हाय ! हाय ! बेचारे अर्भक पर जब इस प्रकार का अत्याचारी प्रसंग आता है तब माता, पिता, सास, श्वशुर, देवर, ननदें देवरानियां इत्यादि आप्तजन उसके शरीर से कुंकुम, कंकण, मंगलसूत्रादि आभूषण और सिर के केश अत्याचार पूर्वक निकाल डालते

हैं। उस पर इस प्रकार अत्याचार करते हैं कि उसे अपना मुख दिखाने में लज्जा आती हैं। वह कभी-कभी प्राण देने के लिए तैयार हो जाती है। हाय! हाय!! कन्या के माता पितादि आप्तजनो! अपनी प्रिय पुत्री पर ऐसे कठिन प्रसंग लाने के लिए निर्दयतापूर्वक तुम कैसे प्रवृत्त होते हो? भाग्य में लिखा हुआ वैधव्य समय पर विवाह करने पर भी आये विना न रहेगा, तुम्हारा यह कथन किसी अंश में ठीक है, परन्तु मनुष्य के कफ, क्षयादि पिंडस्थ रोग उत्पन्न होने का एक समय होता है। उसे टालकर शरीर-स्वभाव की परीक्षा करके वधू-वर चुनकर विवाह किया जाय, तो बहुधा ऐसे कठिन प्रसंग आयेंगे ही नहीं। तुम आग्रह पूर्वक कहते हो कि कभी-कभी ऐसे कठिन प्रसंग आते हैं, अब तुम्हारे ही कथनानुसार विचार करें। भविष्य में १८-२० वर्ष के अनन्तर आने वाले वैधव्यादि दुःख प्रसंग, दारुण तथा अनिवार्य दुःख प्रसंग, उसपर १०-१२ वर्ष पहले ही तुम दुष्ट और अविचारी बनकर लाते हो। धिक्कार है तुम्हें। ऐ दुष्टो! अपनी प्रिय कन्या, भागिनी को भला दुःख के समुद्र में क्यों ढकेलते हो! प्रिय कन्या, भगिनी को दुःख पीड़ित न होने के लिये तुम निर्दय माता पितादि आप्तजन विचार और चिन्ता क्यों नहीं करते? जब जामाता की मृत्यु का समाचार तुम सुनते हो, तब अपनी अज्ञानी, दीन, लाचार छोटी प्रिय बालिका के सम्बन्ध में अपने मन में निष्ठुरता कैसे धारण करते हो? पराये व्यक्ति जब तुम्हारी कन्या, भगिनी विधवा, दीन दुःख पीड़ित दशा में मार्ग से जाते हुए देखते है तब उसकी दीनावस्था देखकर उनका अन्तःकरण जलता है, पिघलता है और उनके भीतर दया उपत्न होती है, परन्तु तुम माता, पिता, भाईबन्धु, चतुर, विचारवान् नौकरी-धन्धा करनेवाले, अपने विभाग का व्यवहार, वकीली, दलाली, व्यापार करने वाले होकर भी इतना अनर्थ कैसे करते हो? प्रिय कन्या को दुख के सागर में ढकेलते हो और प्रिय बालक के कल्याण की ओर से आँखें बन्द कर लेते हो?

यहां तक विवाह से सम्बन्धित नवीन खड़े किये गये मिथ्या पाखंडों पर संक्षिप्त विचार किया गया। अब गर्भाधानादि कितने ही संस्कारों के सम्बन्ध में नवीन खड़े किये गये मिथ्या कर्मकाण्ड का संक्षेप में विचार करके यह विषय समाप्त करता हूं।

**गर्भाधान के सम्बन्ध में**—१. अनादिष्ट प्रायश्चित्त, २. रजो दर्शन शान्ति, ३. नारायणबलि, ४. नागबलि, ५. हरिवंश पाठ, ६. ब्राह्मण विवाह, ७. पुत्रकामेष्टि, ८. यज्ञोपवीत दान, मुख्य हैं जिनका क्रमशः संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—(प्रत्येक कार्य में दक्षिणा उपदक्षिणा, नारियल, चावल, घृतादि पदार्थ सामान्य रूप से लगाते हैं) १. गर्भाधानकाल छूट जाने पर होम करना २. रजोदर्शन दोष[1] निवारणार्थ सुवर्ण, रौप्य अथवा ताम्र धातु के तीन कलश चावलों का स्थापित करके उन पर चन्दन अक्षत आदि डालना। ३. ताम्रकलश पर सुवर्णादि धातु की विष्णुप्रतिमा रखकर उस पर चन्दनाक्षत डालना और प्रतिमा पुरोहित को देनी। ४. एक गाय और एक बैल पर चन्दनाक्षत डालकर उनका मूल्य पुरोहित को देना। तदनन्तर पुरोहित आटे का सर्प करके उस पर चन्दनाक्षत डालकर उसे चिता पर रखकर जलाये तथा इसके अनन्तर एक कलश पर सुवर्ण सर्प स्थापित कर उस पर चन्दनाक्षत लगाकर वह सर्पयुक्त कलश

---

१. स्त्रियों का रजस्वला होना तो सृष्टि का सामान्य नियम (धर्म) है। इस साधारण सृष्टि नियम को भी द्रव्य प्राप्ति के लिए दोष लगाना कितनी नीचता, आश्चर्यजनक और लोभीपन है। प्रति भाद्रपद शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन "ऋषिपंचमी" नामक एक व्रत सधवा, विधवा स्त्रियों को "रज-स्राव दोष" निवारणार्थ करने के लिए कहा गया है। इस व्रत में जब सब स्त्रियां ही यजमान होती हैं तब लूट, अनाचार और अनर्थ की क्यों कमी ! ।

पुरोहित को देना। ५. हरिवंश ग्रन्थ पुरोहित के द्वारा पढ़वाकर पुरोहित को दान, दक्षिणा, वस्त्रालंकार, एक दुधारू गाय, तीन तोले तक सोना तथा यथेच्छ भोजन देना। ६. पुरोहित का विवाह करना। ७. सब कन्याएं ही होती हों तो थोड़ा सा होम करके पुरोहित को सुवर्ण दान तथा दक्षिणा देकर दम्पती का दर्भासन पर शयन करना। ८. गर्भस्राव होता हो, तो सुवर्ण का यज्ञोपवीत बनवा कर, उसकी गांठ के स्थान पर मोती लगाकर, उसपर चन्दन, अक्षत डालकर, वह यज्ञोपवीत तथा तांबे की उत्तम घी से भरी हुई गागर सदक्षिणा पुरोहित को देना।

गृहस्थाश्रम के लिये तो असंख्य दान तथा व्रत लगा दिये गये हैं। इनका विधान इस नीति पर किया गया है कि मनुष्य, पशु, पक्षी, मत्स्य, सर्प, वृक्ष, तृण, लता, अन्न, समुद्र, नदी, डांगर, गांव, शहर के स्थान पर, सुवर्णादि धातु, काष्ठ, मृत्तिका, पत्थर में खोदकर अथवा कागज पर रंगकर बनायी गयी प्रतिमा—मूर्ति के स्थान पर धातु या मिट्टी के जलयुक्त वर्तन के स्थान पर, कागज, दीवाल, कांच, काष्ठ पर बनायी गयी चित्रविचित्र रेखाओं के स्थान पर और अनेक वृक्षों के पत्तों, फूलों और लताओं के स्थान पर पिशाच आदि की कल्पना करके उनपर चन्दनाक्षत, सिन्दूर, यज्ञोपवीतादि वस्तुएं सजाकर रखी जाये, उनके सामने धूप, कपूर इत्यादि पदार्थ जलाकर अथवा धातु पाषाणादि की मूर्ति पर सतत प्रहर डेढ़ प्रहर तक निरन्तर जलधारा छोड़कर, या सिन्दूरयुक्त तेल उड़ेलकर, या कोई पुस्तक पढ़कर या पढ़वाकर अथवा इसी प्रकार के अन्य कार्य रचकर पुरोहित को दान दक्षिणा देने से ईश्वर, धन, सुत, दारा विद्या, सुख की प्राप्ति होती है। रोग, पीड़ा, भय, संकट, शत्रु, अकाल-मृत्यु ये सभी दूर होकर, सब प्रकार से इह तथा परलोक में कल्याण होता है। ये सब व्रत कार्य भोले-भाले लोगों के अन्तःकरण में अच्छी

तरह से स्थान जमा लें, अतः काशीखंड, सह्याद्रि-खण्ड जैसे खण्ड, फाल्गुन माहात्म्य, गंगा माहात्म्य जैसे माहात्म्य रचकर उनमें तत्सम्बन्धी पार्वती—शिवादिकों के नाम से कथाएं लिखी हैं। इन व्रत-कार्यों के लिये उषाकाल में, सूर्योदय के समय, सूर्यास्त के समय, मध्याह्न-कान्न में, मध्यरात्रि के समय, प्रहर गये दिन में, प्रहर गयी रात्रि में, प्रत्येक तिथि तथा दिन में; पौर्णिमा, अमावस्या को; मकर, कर्क संक्रांति, को; प्रत्येक मास तथा वर्ष में, ६।४।३।२ महीनों के अन्त में, इस प्रकार प्रतिघटिका में एक-एक व्रत पड़ने की योजना की गयी है। इसके अतिरिक्त छिपकली ऊपर गिर पड़े, कोई छींक दे, आंख फड़के, भालू या उल्लू का चिल्लाना सुन ले, कौवे का मैथुन देख ले, बिल्ली रास्ता काट दे, बन्दर घर में आ जाये तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह अमुक राशि पर होने से दोष उत्पन्न होता है। यह दोष द्रव्य, सुवर्णादि धातु, व्रीह्यादि अष्ट अन्न, वस्त्र, आम्रादि फल, घी, शक्कर ऐसे पदार्थ दक्षिणा सहित पुरोहित को अर्पण करने से दूर होता है। इस प्रकार के ये, क्रियाकर्म वेदानुकूल आर्षग्रन्थ प्रतिपादित न होकर सर्वथैव मिथ्या समझने चाहिए। वैसे ही जातकर्म के लिए—अमावस्या या पौर्णिमा को, ग्रहण के समय, मध्यरात्रि को, सूर्यास्त के समय, सक्रांन्ति के समय अथवा सूर्य, चन्द्रादि ग्रह अमुक किसी राशि पर होते हुए कोई स्त्री प्रसूता होने पर सुवर्ण, रौप्य कलश चावल को राशि पर स्थापित करे, उन पर चन्दन अक्षत चढ़ाकर वे दक्षिणासहित पुरोहित को गाय, वस्त्र, सुवर्ण, रौप्य, भूमि, गुड़, शक्कर, चावल आदि अष्ट-अन्न सहित दक्षिणा भी दे। इसी प्रकार तीन पुत्रों के पश्चात् चौथी कन्या हो, तीन कन्या होकर चौथा पुत्र हो, सब कन्याएं या पुत्र होने लगें, तो पूर्व प्रदर्शित नवग्रह, होम, शान्ति, बली और विष्णुदान दक्षिणा सहित करे। इस प्रकार के विधान किये हैं।

जिस प्रकार शीघ्र द्रव्य प्राप्ति के लिए विवाह का समय अल्प

(केवल बाल्यावस्था) कर डाला, वैसे ही शीघ्र द्रव्य प्राप्ति के लोभ से ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि (कम से कम १२ वर्षों की जो थी) केवल ३ दिनों[1] की निश्चित् करके ब्रह्मचर्याश्रम बिल्कुल ही समाप्त कर दिया।

ब्रह्मचर्याश्रम में लड़कों की मृत्यु हो गई तो वे ब्रह्मराक्षस, भूत-पिशाच जैसे भंयकर योनियों में जन्म लेते हैं और कौटुम्बिक जनों तथा इतरों को अत्यधिक पीड़ित करते हैं। घर की तथा अन्य स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं। इस प्रकार के विचार भोले लोगों के मन में बैठा देने के कारण व उपनयन के चौथे दिन ही ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके कितने ही वर्षों तक विवाह नहीं करते। इससे ये लोग गृहस्थाश्रम के पात्र न होने के कारण किस आश्रम के माने जायं ? ब्रह्मचर्याश्रम के कहें तो उनके ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति हो चुकी है, गृहस्थाश्रम भी नहीं कह सकते, क्योंकि विवाह नहीं हुआ। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्याश्रम समाप्ति के कारण जब तक विवाहित नहीं होते, तब तक वे किसी भी आश्रम के पात्र न होने से धर्म और वर्ण

---

उपनयन के अनन्तर ब्रह्मचर्याश्रम की १२ वर्षों की अवधि प्रचलित रखने पर इस अवधि में लड़की-लड़के—ब्रह्मचर्याश्रम के—कितने ही मृत्यु को प्राप्त होंगें (मरने की सम्भावना तो है ही)। इन मरने वाले बालकों के ब्रह्मचर्याश्रम-समाप्ति तथा विवाह संस्कार न होने से इनसे होने वाली प्राप्ति से वंचित न रहने के उद्देश्य से १२ वर्षों में होने वाले संस्कार शीघ्र करने का उपाय सोचा। इस प्रकार की स्वार्थी नीति के द्वारा (विवाहवत्) यज्ञोपवीत संस्कार अवधि बिल्कुल ही कम कर डाली। इतने पर भी कोई ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके कदाचित् अविवाहित मर गया, तो श्मशान में उसका एक पुतला बनाकर, उस पुतले के विवाहादि संस्कार पूर्ण करके, तन्निमित्त द्रव्यहरण करने की योजना बनाकर रखी ही है॥

रहित रहते हैं, यह स्पष्ट है। इस प्रकार धर्म और व्यवहार की दृष्टि से वर्ण भ्रष्टता होती है। ब्रह्मचर्य नष्ट होने से एक तो विद्या का लोप होता है, दूसरे बाल्यावस्था में विवाहित स्त्री पुरुषों की निरर्थक अपक्व वीर्य हानि होने से वे शीघ्र मरणोन्मुख होते हैं। इनके लड़के-लड़की हुए तो उनकी भी वही दशा होती है। यह सब "**चक्षु वै सत्यम्**" है। मनुष्य को इस निकृष्ट स्थिति से बचाने के लिए प्रारम्भ में ही वेद में कहा है—

**"ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्"।**

अथर्व० ११।५।१८॥

उसके अनुसार स्त्रियां युवावस्था तक अर्थात् कम से कम १५-१६ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रमी (=कुमारी) रहकर, वेदशास्त्रादि विद्या पढ़कर, तदनन्तर प्रसन्नता से स्वेच्छापूर्वक तथा माता-पितादि आप्तजनों के अनुमोदन से अपनी योग्यता का तरुण पुरुष वर निश्चित कर, उससे विवाह करे। वेद ने मनुष्य को इस प्रकार की शिक्षा दी है। इस ओर से आखें बन्द करना वेद धर्मानुयायियों के लिए लाञ्छनास्पद है।

अब संन्यास की स्थिति देखिए। प्रापंचिक गृह्य व्यवसाय छोड़कर अर्थात् सर्व संग और सांसारिक मोहक पदार्थ त्यागकर वैराग्यशील; निरपेक्ष तथा जितेन्द्रिय होकर देश-देशान्तरों में भ्रमण करे। केवल लोककल्याणार्थ लोकों को सत्य, का बोध कराये उन्हें सद्धर्म तथा सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिए काया, वाचा, मन से निष्पक्ष होकर परिश्रम करे। यही संन्यास सम्बन्धी कर्त्तव्य है। परन्तु सम्प्रति स्वार्थी लोग द्रव्यहरण करने के उद्देश्य से किसी की मृत्यु सन्निकट होने पर उसे संन्यास देकर उससे प्रायश्चित्त आदि विधियां करवाते हैं। इससे सम्बन्धित विधि की कल्पना आगे अन्त्येष्टि विषयक लिखी गयी संक्षिप्त विधि से ही स्वतः हो जायगी।

**अन्त्येष्टि के समय** स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अत्यन्त आश्चर्य-जनक युक्तियां की गयी हैं। विस्तारभय से यहां उनका संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है:—

मनुष्य मरणोन्मुख होने के समय प्रायश्चित्त करे। एक बैल और एक गाय अथवा ८० गुंजा सोना पुरोहित के समक्ष रखे, इनको लेकर पुरोहित व्यक्ति के धनी या निर्धनी होने के अनुसार प्रायश्चित्त बताये उसमें प्रथम **"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्या समानि च। केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान् वपाम्यहम्"** श्लोक पढ़कर केश कटवाये। सकेशा स्त्री के दो अंगुल केश कटवाये। स्नान करके पुरोहित को गोमिथुन (गाय बैल का जोड़ा) अथवा उसका मूल्य दे। तत्पश्चात् **"तिलं लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। गुंजाशीतिः सुवर्णकं गो प्रत्यक्षाथवा मूल्यं, शय्या वर्षासनं वर्षदीपं वर्षतोयं च दापयेत्** इस प्रकार की दक्षिणा सहित दान करे। अब **विष्णु श्राद्धः**-श्राद्ध कर्त्ता ३-४ पुरोहित को आमान्न[1] **"विप्राय नरकोत्तारणार्थाय"** बोलकर दक्षिणासहित दे। तत्पश्चात् पूर्वांग गोदानः-एक सवत्स गाय किंवा मूल्य और गाय प्राप्तकर्त्ता पुरोहित पर चन्दन, अक्षत डालकर वह सवत्स गाय अथवा मूल्य दक्षिणासहित पुरोहित को दे। इसके पश्चात् थोड़ा होम करके दान दक्षिणा दे। इसके आगे कृच्छ्र प्रायश्चित्त अर्थात् सुवर्ण, रजत अथवा ताम्र जैसे द्रव्य यथाशक्ति पुरोहित को दे।

अब उत्तरांग—पूर्ववत् विष्णु श्राद्ध और गोदान करके दक्षिणा दे तथा तत्पश्चात् **दशाष्टौ महादान** अर्थात् **गोभूतिलहिरण्याज्यवासो धान्यं गुडानि च रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात्"** इस प्रकार

---

**१. आमान्न अर्थात् अपक्व अन्न—नारियल, चावल, दाल, केला, घी, शक्कर, शाक, भाजी इस प्रकार के अनेक भक्ष्य-भोज्य पदार्थों का सीधा। इसके साथ दक्षिणा अलग से दी जायगी।**

की गाय, सुवर्ण आदि दान करे। अस्तु, यह हुआ मृत्युपूर्व का कर। अब मृत्यु के उपरान्त लिया जाने वाला कर देखिए—

दह्यमान शरीर को अत्यन्त उष्णताजन्य पीड़ा होती है, अत उसकी शान्ति के लिए सर्वप्रथम पुरोहित को सालंकृत गाय दे। इस पृथ्वीतल के ऊपर आकाश में यमलोक नामक एक स्थान है। वहां के यमराज के दूत यहां के मृत जीव को तीक्ष्ण शस्त्रों से विविध पीड़ा और कष्ट देते हुए अत्यन्त अत्याचार पूर्वक ले जाते हैं। १३ दिनों तक अत्यन्त दुःखावस्था[1] में रखते हैं। अतः अनेक प्रकार के दान और श्राद्ध[2] करे तथा आमान्न दे। यहां से यम लोक ३४५२१२ कोस दूर है। वहां जाने का मार्ग अत्यन्त दुर्गन्धिपूर्ण, उष्ण, शीतल तथा कंटकाकीर्ण भयानक होने के कारण अत्यन्त क्लेशदायक है। यह कष्ट दूर करने के लिए छत्री, जूते, अंगरखे, चोली, बनात, आदि वस्त्र पुरोहित को दे। मार्ग में एक स्थान पर मृत जीव पर पत्थरों की वर्षा होती है, जिससे पीडा होती है। पुरोहित को छत्री देने से वह दूर होती है[3]। अत्यन्त संकटपूर्ण स्थान में वैतरणी नामक एक पाव-

---

१. दह्यमानस्य देहे तु पीडास्य महती भवेत्। तच्छांत्यै तत्र कुर्वीत गोदानं धार्मिको नरः। द्वाराग्रे पुनराधाय त्रयोदश दिनावधि। स्थापयन्ति मृत जीवं हाहाभूतं सुदुःखितम्॥

२. श्राद्ध अर्थात् एक अथवा अनेक दर्भ भूमि पर रखकर उस पर तिलोदक रखे और उस पर भात का पिंड—गोला रख कर, उसके ऊपर चन्दन, अक्षत, मृगराज, तुलसी पत्र, सिन्दूर (भलीभांति दृष्टि को आकृष्ट करने वाले पदार्थ) रखे तथा "प्रेताय क्षुत्पिपासानिवृत्यर्थम्" "लज्जानिवारणार्थम्" जैसे वाक्य बोलकर पुनः तिलोदक डाले नारियल, चावल, वस्त्र सभी दक्षिणादि वस्तुएं पुरोहित को दे।

३. ततः शालागमं प्रेतो नीयते यमः। किंकरै पाषाणास्तत्र वर्षंति प्रेतस्योपरि दुःखदाः तत्र छत्रेषु दत्तेषु न पीडा प्राप्यते खगः।

रक्तादि से भरी हुई नरक की दुर्गन्धि से युक्त ४०० कोस लम्बी नदी अनेक भयंकर मगरादि जन्तुओं से युक्त पड़ती है।[१] वह पार करने के लिए पुरोहित को एक गाय सदक्षिणा दे। रौद्रपुरी में अत्यन्त मेघ वृष्टि होती है। तज्जन्य पीड़ा निवारणार्थ **ऊनी वस्त्र** दे। अब इस भयंकर तथा लम्बे मार्ग पर यमपुरी तक जाने के लिए विश्रान्ति के निमित याम्य, शौरी, रौद्र, क्रौंच इत्यादि १६ विश्राम स्थल किये हैं।[२] वहां यमदूत मृत जीव को विश्रान्ति तथा भोजन के लिए बैठाते हैं। अतः १६ स्थानों पर मृत जीव को भोजन प्राप्त होने के लिए प्रति-मास एक-एक के अनुसार १२ तथा २७, ४५, १७८, ३५९ वें दिन के ४, कुल मिलकर १६ **श्राद्ध** वर्ष के भीतर करे। यमदूत को पीने के लिए जल प्राप्त हो, अतः **उदकुंभ**—उदकपात्र, चावल की राशि पर स्थापित करके दक्षिणा सहित पुरोहित को अर्पण करे। एक वर्ष के पश्चात् यमदूत मृत जीव को यम के न्यायालय में ले जाकर, चित्र-गुप्त के अनुमोदन से पातकानुसार, दुर्गन्धित कूप, भयंकर पशु, पक्षी, सर्पादि जीवजन्तुओं और खड्गादि तीक्ष्ण शस्त्रों में तथा तप्त तेल, तप्त लोह आदि ८० प्रकार के नरकों में डालते हैं। इस नरक यातना से मृतजीव को बचाने के लिए उसके जीवित पुत्र पौत्रादि आप्तजन १० दिन तक नित्य श्राद्ध करें। इसके अतिरिक्त १-३-५-७-९ इन दिनों में विषम श्राद्ध, नग्न प्रच्छादन श्राद्ध, पाथेय श्राद्ध, अस्थि संच-

---

१. तत्र मार्गे वैतरणी नामाख्या तु महानदी। शतयोजनविस्तीर्णा पूय-शोणितसंकुला। नाना जंतु समाकीर्णा लोहचंचु खगैर्वृता। न दत्ता चेत्त्वया धेनुर्निमज्जसि महाह्रदे। तस्माद्वैतरणी देया विप्राय विधिपूर्वकम्।

२. षडशीति सहस्राणि त्रिशतं त्रितीयाधिकम्। एतदन्तरमुद्दिष्टं-भूर्लोकयमलोकयोः। अब्द मध्ये तु प्रेतस्य विश्रामाः षोडशैव हि प्रतिश्राद्धं मुहूर्तं तु प्रेतोविश्राम्यते खग।

धन श्राद्ध और जलकुंभ दान करके तत्सम्बन्धी सब पदार्थ तथा उचित दक्षिणा पुरोहित को दे। इसके पश्चात् ११वें दिन पहले पूर्वोक्त विधि से प्रथम "नारायण वली" करके तत्पश्चात् "वृषोत्सर्ग" करे[1]। चावल की राशि पर ४ कलश तथा उन पर एक कर्ष के प्रमाण में सुवर्ण की प्रेतमूर्ति (हिरण्य, मौक्तिक, रत्न, वस्त्रयुक्त) स्थापित कर चन्दन, अक्षत, फूल इत्यादि उन पर डालकर, थोड़ा होम करे, एक बैल (सुवर्ण सींग, रौप्य खुर तथा वस्त्रालंकार युक्त) पुरोहित को सम्मुख खड़ा करके उस पर चन्दन से चक्राकृति या त्रिशूलाकृति बना कर वह बैल तथा सब पदार्थ पुरोहित को दे। इसके पश्चात् शय्या-दानः[2]—एक सुदृढ़ लकड़ी के पलंग पर कोमल बिछौना बिछाकर, उस पर सुवर्ण की प्रेतमूर्ति रखकर, उस पर चन्दन, अक्षत, पुष्प "यथा कृष्णशयनमिति" बोलकर, डाले और वह मूर्तियुक्त शय्या दक्षिणा सहित पुरोहित को दे। इसके अनन्तर मृतजीव को अत्यन्त प्रिय लगने वाले वस्त्रालंकारादि पदार्थ दक्षिणा सहित दान करे—प्रथम किसी पुरोहित के दम्पति को वस्त्रालंकार से पूजे, तत्पश्चात् सुवर्ण कृष्ण मूर्ति उसे दे तथा इसके अनन्तर मृत जीव की प्रिय वस्तु सदक्षिणा दान करे। इसके अतिरिक्त द्रव्य, वस्त्र, घड़े भर उत्तम घी, केले, शक्कर, दीप, जूते, छत्री, चमर, आसन विशेष रूप से दे। इसके आगे एकोद्दिष्ट

---

१. वृषोत्सर्गप्रभावेन प्रेतः स्वर्गपुरं व्रजेत्। सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु, दक्षिणेनापि आदाय सतिलाः सकुशास्तथा।

२. शय्यादान प्रभावेन विमानस्थोवसेद्दिवि। शय्या कार्या खगश्रेष्ठ सारदारुमयी दृडा, दंतपात्रा चितारम्या हेमपृष्ठैरलंकृता। मूर्तिः शुद्धस्य स्वर्णस्य कार्या प्रेतस्वरूपिणी संपूज्यतां च शय्यायां मंत्रमेनमुदीरयत्।

३ प्रेतप्रियं यदन्यस्यादुचितं तु प्रकल्पयेत्। सपत्नीकं द्विजं वस्त्राद्यलंकारैः प्रपूजयेत्०। तत्र श्रिया कृष्णामूर्तिः स्थाप्यातव्ये सुवर्णजा सर्वोपचारैः संपूज्य मंत्रमेनमुदीरयत्।

श्राद्ध, रुद्रगण श्राद्ध, वसुगण श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, गया श्राद्ध इत्यादि अनेक श्राद्ध करके तन्निमित्त पुरोहित को सीधा, भोजन, दान-दक्षिणा दे। एक सपिंडीकरण श्राद्ध है जो अत्यन्त आश्चर्यकारक युक्ति पर आधारित है— मृत जीव प्रेत होकर अकेले रहने में डरता है अतः उसके निकटस्थ माता, पिता, प्रपितादि जो पूर्व पुरखे आप्तजन मर गये हैं, उनसे उसकी भेंट हो अर्थात् आजा पिता की, (बाप जीवित हो तो) आजा नाती की, श्वशुर वधू की, पति पत्नी की, पिता सन्तान की, भेंट पितृलोक में हो तथा परस्पर सम्मेलन हो, इसके लिए **सपिंडीकरण** कराये। अर्थात् एक (प्रेत) कुश तिलोदक दूसरे (पितृ) कुश तिलोदक में और भात का एक गोला दूसरे गोले में "**प्रेतलोकं परित्यज्य पितृलोकं समाश्रयेत्। तेन समानतां याहि विहरस्व यथा-सुखम्**" इस प्रकार बोलकर मिलाये तथा पुरोहित को अन्न वस्त्रादि से तृप्त करे। अस्तु। ११ दिनों के अनन्तर आगे वर्ष भर प्रतिदिन उत्तम-उत्तम भोजन, दान-दक्षिणा, शाकघृत, शर्करायुक्त आमान्न, वस्त्र, पात्र इत्यादि पुरोहित को दे। तात्पर्य यह है कि ये सब वस्तुएं मृत जीव को वहां मिलती हैं। प्यास की पीड़ा से बचने के लिए कमंडलु आदि पात्र, बैठने के लिए घोड़ा आदि सवारियां मिले। अतः जूते दान करे।[1] वर्ष के अन्त में "वर्ष श्राद्ध" करके पूर्वोक्त सब पदार्थ पुरोहित को दे। प्रतिवर्ष महालयादि श्राद्ध तथा पक्ष करके पुरोहित को अन्न, वस्त्र दक्षिणादिक से सन्तुष्ट करे।

इस प्रकार भोले अज्ञानी यजमानों से द्रव्यहरण[2] करने के अनेक

---

१. एकादशाहात् प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः। दिने दिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः। भोजनं भूरिदानं च कर्तव्यं तद्दिने सुतैः। कमंडलुप्रदानेन तृषया न स पीडयते। उपानद्युग्मदानेन हयारूढो हि स व्रजेत्। गरुड पुराण।

२. विना रोग के किसी के मरने पर द्रव्य प्राप्ति के लिए कुछ विशेष कार्यों की की गयी योजना इस प्रकार है—

प्रकार[1] तथा युक्तियां स्वार्थी लोगों ने ढूंढ निकाली हैं, इन सबका कहां तक वर्णन किया जाय। फिर भी जितने प्रकार यहां खोल कर रखे गये हैं, उनसे ज्ञात होगा कि विवाहादि संस्कारों से सम्बन्धित सम्प्रति चालू किये गये क्रिया-कर्म नितान्त न्याय, तर्क, युक्ति तथा विचार-शून्य हैं। ये सनातन सर्वमान्य सत्य वेदोक्त धर्म से भिन्न तथा विरुद्ध हैं। धर्म के बहाने लोगों को फंसाकर केवल द्रव्यहरण करने के लिए ही इनका निर्माण किया गया है, इस प्रकार की धारणा किसी भी विचारवान्, निष्पक्ष, निरपेक्ष सद्धार्मिक व्यक्ति को हुए बिना न रहेगी।

मुंबई, मिति मार्गशीर्ष शुद्ध ११ शक १८०४ — पंडित बाळाजी विठ्ठल गांवस्कर

---

रजस्वला अथवा गर्भवती की मृत्यु होने पर तीन चांद्रायण तथा कृच्छ प्रायश्चित्त करे। सर्पदंश से, घर में आग लगाकर फांसी से, पेड़ से गिरकर व्याघ्रादि के द्वारा, आत्महत्या से अथवा अन्य देश में मृत्यु हुई हो, तो तद्दोष निवारणार्थ और उत्तम गति प्राप्त होने के लिए नारायण बलि तथा गोदान व्रत करे। सर्पदंश से मृत्यु होने पर विशेष नाग व्रत करे अर्थात् प्रतिमास शुक्लपक्ष की पंचमी को आटे का ५ फनों का नाग बनाकर उसकी पूजा करके उत्तम भोजन दक्षिणा सहित पुरोहित को दे। वर्ष के अन्त में सोने का नाग और गाय दान दे तथा नारायण बलि करे अर्थात् चावल की राशि पर दो कलश स्थापित कर उन पर सुवर्णादि धातुओं की विष्णु तथा यम की प्रतिमा पूजकर पुरोहित को वस्त्राभरण, दक्षिणा तथा सब पदार्थ दे।

१. पूर्व भाग पृष्ठ २६* के अन्तर्गत वधू लक्षण सम्बन्धी विवरण इसी प्रकार का है, जो वहां भूल से अंकित है।

*यह पृष्ठ संख्या मराठी भाषा में छपे प्रथम भाग की है। यह वधू लक्षण सम्बन्धी विवरण विवाह संस्कार में टिप्पणी में दिया है वह जहां आयेगी, वहां इस टिप्पणी का संकेत कर देंगे।

# वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

## सामान्य-संस्कार-विधि

### १ ईश्वरोपासना

सर्वशक्तिमान, जगन्नियन्ता परमपिता परमात्मा गणपति सृष्टि के स्वामी हैं। गर्भाधानादि प्रत्येक शुभ संस्कार विधि के प्रारम्भ तथा अन्त में कार्य सिद्धि के लिए हमें वेदमन्त्रों से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए। वे मन्त्र—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः

प्रत्येक वेदमन्त्र के प्रारम्भ में उपर्युक्त प्रणव और व्याहृति का उच्चारण करके मन्त्र पढ़ना चाहिए।

## ऋग्वेद

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥२॥

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे
सुमृळीकाय मीळ्हुषे। इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्।

ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥३॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥४॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥७॥
शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥८॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥९॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥१०॥[1]

---

१. ऋग्वेद क्रमशः—१।१।१॥ १।८६।५॥ १।१३६।६॥ २।२३।१॥ ५।११।११॥ ५।५१।१४॥ ५।५१।१२॥ १०।३७।१०॥ ७।३५।५॥ १०।१९१।४॥ यु० मी०

# यजुर्वेद

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवं स्थ देवो वंः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठ-तमाय कर्मण आप्यायध्व मघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अंयक्ष्मा मा वं स्तेन ईशत माघशंꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ-स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥१॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमों वृक्षेभ्यो-हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥२॥

नमों गणेभ्यों गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥३॥

नमः शम्भवायं च मयोभवायं च नमः शंकरायं च मयस्क-रायं च नमः शिवायं च शिवतराय च ॥४॥

ऋचं वाचं प्र पंद्ये मनो यजुः प्र पंद्ये सामं प्राणं प्र पंद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पंद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥५॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-रोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्ति-रेधि ॥६॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥७॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥८॥

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥९॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ॥१०॥[1]

## सामवेद

अग्न[2] आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥२॥

---

१. यजुर्वेद क्रमशः—१।१॥ १६।१७॥ १६।२५॥ १६।४१॥ ३६।१॥ ३६।१७॥ ३६।११॥ ३६।१८॥ ३६।२२॥ ४०।१७॥ यु० मी०

२. यहां ग्रन्थकार ने सामवेद के मन्त्रों पर भी ऋग्वेदीय स्वर चिह्न ही लगाये हैं। हमने मूल ग्रन्थवत् ही स्वर चिह्न रहने दिये हैं। यु० मी०

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥४॥
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥५॥
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥७॥
त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥८॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥९॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ओ३म् । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१०॥[1]

---

१. सामवेद में आर्चिक प्रपाठक अर्धप्रपाठक दशति आदि विभाग हैं। हमने पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर मुद्रापित सामवेद में आदि से अन्त तक दी गई मन्त्र संख्या का यहां निर्देश किया है। क्रमशः मन्त्र संख्या—१।६५३। ६७८।३८१।११७०।१३०६।१३२१।१३२२।१७७४।१८७५ ॥ यु० मी०

# अथर्ववेद

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३॥

इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥

शंनो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शंनो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥६॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवीः शं बृहस्पतिः ॥७॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शन्तिभिः सर्व-

शान्तिभिः शमयाम्यहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं
तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥८॥

पश्येम शरदः शतम् । जीवेम शरदः शतम् ।
बुध्येम शरदः शतम् । रोहेम शरदः शतम् ।
पुष्येम शरदः शतम् । भवेम शरदः शतम् ।
भूषेम शरदः शतम् । भूयसीः शरदः शतात् ॥९॥

पुनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत्ताँ उपयात पिबध्यै ।१०॥[1]

## २—यज्ञ कुण्ड तथा द्रव्याहुति का प्रमाण

स्वयं अपने तथा इतरों के कल्याणार्थ आहुति द्वारा ईश्वरोपासना करे। एतदर्थ चन्दनादि सुगन्धित तथा रोगनाशक द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में दे। यज्ञकुण्ड, द्रव्य और आहुति का प्रमाण तथा आहुति की विधिः—

**यज्ञकुंड**—मंडप में अथवा घर में स्वच्छ, वायुयुक्त, प्रकाश-युक्त, लम्बे चौड़े विस्तीर्ण, समतल भूपृष्ठ पर बनाये २४ अंगुल लम्बी, २४ अंगुल चौड़ी भूमि लेकर उसके चारों ओर ६ अंगुल ऊंची तथा ३ अंगुल चौडी एक मेखला (सोपान) दीवाल जैसी, चिकनी मिट्टी की बनाये। तत्पश्चात् इस सोपान के नीचे बाहर से चार अंगुल

[1] अथर्ववेद क्रमशः—१।१।१।। १६।६।२।। १६।६।३।। १६।६।४।। १६।६।५।। १६।६।१०।। १६।६।११।। १६।६।१४।। १६।६७।१-८ अत्र क्वचित् पाठभेदो दृश्यते। २०।१४३।६।।

पर, तीन अंगुल चौड़ा दूसरा सोपान बनाये । इसके अनन्तर इस सोपान के नीचे तीन अंगुल पर दो अंगुल चौड़ा तथा दो अंगुल ऊंचा तीसरा सोपान बनाये । इस प्रकार भूपृष्ठ भाग पर ६ अंगुल गहरा, २४ अंगुल लम्बा २४ अंगुल चौड़ा कुण्ड होगा जिसके बाहर से चारों ओर भूपृष्ठ भाग से ऊपर २,३,४ अंगुल के समान ऊंचाई-चौड़ाई के तीन-तीन सोपान होंगे। विवाह, उपनयन और समावर्तन के समय ऐसे कुण्डों की योजना करनी चाहिए[1]। पुंसवनादि अन्य मंगल-संस्कारों में भी उपर्युक्त विवाहादि के लिए निर्मित यज्ञकुंड के सदृश ही बनाना चाहिए । परन्तु भूमि २४ अंगुल के स्थान पर १२ अंगुल लम्बी चौड़ी लेकर उसके चारों ओर पूर्व की भांति बाहर से ३-३ सोपान भूपृष्ठ भाग से क्रमशः २-३-४ अंगुल की समान ऊंचाई और चौड़ाई के बनायें ।

ये यज्ञकुण्ड मंडप में अथवा घर में ऐसे स्थान पर होने चाहिए कि वधू-वरादि कार्य करने वाले को उस कुण्ड के निकट पूर्व की ओर मुंह करके बैठने के लिए तथा इनके आगे, पार्श्व में, कार्य में सम्मिलित होने वाले लोगों के लिए विस्तीर्ण स्थान हो ।

**होम द्रव्य**—इसमें इंधन और आहुति इस प्रकार दो द्रव्य होते हैं । ईधन द्रव्य अर्थात् यज्ञाग्नि-प्रज्वलित करने के लिए उपयुक्त काष्ठ और तृण । काष्ठ यज्ञीय वृक्षों का होना चाहिए । चन्दन, पलाश और

---

१. इस यज्ञकुण्ड के लिए मंडप अथवा घर में लिया जानेवाला भूभाग ५४ अंगुल लम्बा और ५४ अंगुल चौड़ा तथा ६ अंगुल ऊंचा होना चाहिए । अर्थात् ५४ अंगुल लम्बा ५४ अंगुल चौड़ा और ६ अंगुल ऊंचा मिट्टी का चबूतरा मूल भू-पृष्ठ पर बनाकर उसके मध्य भाग में यज्ञकुण्ड बनाना चाहिए ।

खैर ये मुख्य यज्ञीय वृक्ष हैं। इन वृक्षों के अभाव में बहेडा, लोध, **हिंगणबेट**' नीम, अमलतास, सेहुड़ (थूहर), सेमल, **दिडा**, कैथ, कचनार, लिसोड़ा वृक्षों को छोड़कर शेष वट, पीपल, पिपली, गूलर, आम, बेल, अपामार्ग, देवदारु, सुरु, शाल, शमी इत्यादि वृक्षों को यज्ञीय समझना चाहिए। यज्ञीय काष्ठ की भांति कुश और दर्भ मुख्य यज्ञीय तृण हैं। इनके अभाव में कुश घास, सर, मुंज '**देवनळ**' नड, **मोळ**, **लळ्हाक** इन तृणों को छोड़कर शेष सब तृण यज्ञीय समझना चाहिए। इस प्रकार के उपलब्ध यज्ञीय वृक्षों की लकड़ी ईंधन के लिए (कुण्डस्थ अग्नि प्रदीप्त करने के लिए) यज्ञकुण्ड के प्रमाणानुसार, कीटक और पर्ण रहित लेनी चाहिए। कुशादि तृण अग्रयुक्त, मूलरहित, अलग-अलग (एक दूसरे में उलझे न हो) एक बालिश्त लम्बाई के लेने चाहिए।[२]

**अन्य आहुतिद्रव्य**—सुगन्धित, पुष्टिकारक, मिष्ट-गुणयुक्त तथा रोगनाशक वस्तुएं मन्त्रोच्चारण के साथ अग्नि में डाली जायें। चन्दन, कस्तूरी, केशर, शक्कर, दही, दूध, घी, सुगन्धित तेल, व्रीहि (भूसी न निकाले हुए धान), यव, तिल, गेहूं, यवागू,[3] चरु,[४] (व्रीहि

---

१. इस प्रकरण में जो वृक्षादि के नाम मोटे अक्षरों में छपे हैं उन मराठी नामों का हिन्दी नाम ज्ञात नहीं हो सका।

२. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ। सवितुर्वः प्रसव उ पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवो ऽग्रे ऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳसुधातु यज्ञपतिं देवयुवम्॥ इस मन्त्र से विना नख लगाये होम द्रव्यों के टुकड़े करने चाहिए।

३. अधिक जल में पकाये चावल जो पककर घुल गये हों। यु मिश्रणे।
युधिष्ठिर मीमांसक

४. विना मांड निकाले पकाये हुए चावल। अन्तरूष्मसिद्ध ओदनः।
—युधिष्ठिर मीमांसक

अथवा यव जिस दिन उपयोग करना हो उसी दिन यज्ञकुण्ड के निकट ३-३ बार कूट-पछोर कर ३-३ बार स्वच्छ जल से धोलें। इन चावलों का भात, जो जला हुआ, कठोर या नरम न होकर पक्व, खिला हुआ घृतमिश्रित हो, लेना चाहिए)। और सोमलता आदि ओषधियां आहुति द्रव्य हैं। इन आहुति द्रव्यों की आहुति देनी चाहिए।

**द्रव्याहुति का प्रमाण** - हाथ की कुहनी से कनिष्ठिकाग्र तक लम्बी और अंगूठे के पोर के बराबर मुंह वाली, खैर वृक्ष की या कांस्य की स्रुवा (करछी) दाहिने हाथ के अंगूठे, मध्यमा और अनामिका से पकड़कर, इस स्रुवा से घृत, क्षीर आदि द्रव पदार्थों की आहति दे। व्रीहि चरु आदि शुष्क पदार्थ दाहिने हाथ के अंगूठे, मध्यमा और अनामिका से (इन तीनों उंगलियों में जितना आ सके) लेकर उसकी एक-एक आहुति दे। धान और ज्वार की खील की आहुति का प्रमाण अंजली है।

अब समिधा अर्थात् पूर्वोक्त यज्ञीय वृक्षों की विशेषरूप से चन्दन की कीटकों तथा पत्तों से रहित, जो फटी न हों कम से कम अंगूठे के बराबर मोटी, दस अगुल लम्बी तोड़ी हुई लकड़ी लेनी चाहिए। पूर्वोक्त स्रुवा की भांति अंगूठे, मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग से समिधा पकड़कर आहुति दें।

**होमाहुति विधिः**—पूर्वोक्त यज्ञीय काष्ठ, तृणादि जो प्राप्त हों इंधन-द्रव्य; घृत, व्रीहि यवादि (जिस संस्कार में जो वस्तु बतायी गयी हो वह) सब आहुति द्रव्य शुद्ध जल से भरा पात्र (तांबे और पंचपात्र का); आज्यस्थाली (प्रायः दो सेर घी आने योग्य कांसे का बड़ा गोलपात्र); पूर्वोक्त स्रुवा; कुशादि उपलब्ध हरेतृण ये पदार्थ यज्ञकुण्ड के निकट लाकर रखने चाहिए। इस कुण्ड की दाहिनी ओर

पुरोहित के बैठने के लिए एक आसन (पूर्वोक्त यज्ञीय वृक्षों का एक उत्तम ऊंचा आसन) और कुण्ड के पश्चिम में यजमान (संस्कार कर्त्ता) के बैठने के लिए मृदु शुभासन स्थापित करें।

इस प्रकार सब सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर यजमान **ॐ भूर्भुवः स्वः** मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वर्ण के याज्ञिकों के घर से अग्नि लाकर, अथवा शमी वृक्ष पर बढ़े हुए पीपल के अथवा अन्य वृक्ष के काष्ठघर्षण से अग्नि सिद्ध करके, निर्धूम अग्नि (धुम्रांरहित अग्नि) कुण्ड के समीप रखे। अब यजमान उत्तर की ओर से बाहर जाकर हाथ-पैर धोकर शुद्ध धुले हुए वस्त्र धारण करे तथा यज्ञोपवीत की भांति (ओढने का वस्त्र दाहिनी कांख के ऊपर से लेकर बायें कन्धे पर से पहना हुआ) उपवस्त्र ओढ़कर पूर्व नियोजित पुरोहित[1] के निकट जाकर उसे विनय पूर्वक **ॐ आवसोः सदने सीद मन्त्र** का उच्चारण करके पौरोहित्य स्वीकार करने की प्रार्थना करे। पश्चात् पुरोहित **ॐ सीदामि** कहकर, हाथ-पैर धोकर तथा आचमन करके, निश्चित आसन पर बैठे। कार्य-समाप्ति पर्यन्त वह यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर मुंह करके शान्त तथा नम्रतापूर्वक रहे तथा उपस्थित कार्य के सम्बन्ध में ही बोले।[2]

---

१. योग्य, धर्मानुकूल भलीभांति कार्य समझने वाले, विद्वान्, सद्धार्मिक, कुलीन, निर्व्यसनी, वेदप्रिय, ईश्वरभक्त, पूज्य गृहस्थ की पुरोहित (पुरा= अग्रमार्गी; हित=रखा हुआ, अर्थात् पूज्य) सज्ञा है। कई प्रसंगों में स्त्रियों का भी समावेश होता है।

२. अन्य किसी विषय में भाषण न करे। अन्य विषय पर बोलने पर निम्न मन्त्रों का जप करे—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे॥
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥

इस प्रकार पुरोहित की स्थापना करने के पश्चात् यजमान कुण्ड के सामने पूर्वाभिमुख बैठकर, हृदय तक पहुंचने भर का शीतल जल दाहिने हाथ की अंजली में लेकर, हाथ की कुहनी कन्धे के बाहर ऊपर उठाते हुए हस्तांजली सामने करके—

**ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥**

इस मन्त्र से आचमन करे। इसी प्रकार,

**ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥**

**ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥**

इन दो मन्त्रों से, प्रत्येक मन्त्र के अन्त में एक-एक बार इस प्रकार और दो आचमन करे तथा दोनों हाथ धोकर मुख, कान, नेत्र, नासिकादि इन्द्रियों को जल स्पर्श कराते हुए इस प्रकार मन्त्र पढ़े—

**ओ३म् वाङ् मऽआस्येस्तु ॥** इस मन्त्र से मुख को ॥

**ओ३म् नसोर्मे प्राणोस्तु ॥** इससे नाक को ॥

**ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुस्तु ॥** इससे आंखों को ॥

**ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥** इससे दोनों कानों को ॥

**ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥** इससे दोनों बाहुओं को ॥

---

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥
ओ३म् नमो विष्णवे ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमति त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यारातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टभं छन्द आरोह दिशमनु विक्रमस्व ।

**ॐ ऊर्वोर्मेऽओजोस्तु** ।। इससे दोनों जांघों को और

**ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह संतु** ।। इससे सारे शरीर को दाहिने हाथ से जलस्पर्श कराये ।[1]

इस प्रकार आचमन तथा जल स्पर्श विधि करने के पश्चात् यज्ञ-कुण्ड में कुछ समिधाएं रखकर उन पर **ॐ भूर्भुवः स्वः** मन्त्र बोलते हुए अग्नि स्थापित करे। उस अग्नि पर पुनः और पृष्ठभाग तक काष्ठ तथा बीच-बीच में कुशादि तृण रखकर बांस इत्यादि के पखे से अग्नि प्रदीप्त करे। उस पर घृतपात्र में (आहुतियां के प्रमाण से) घृत लेकर गर्म करे। नीचे उतारकर यदि उसमें बाल, कचरा, चींटी इत्यादि कुछ पड़ा दिखाई दे, तो दाहिने हाथ के अंगूठे और अनामिका से दर्भ पकड़कर उसके अग्र भाग से बाहर निकाल डाले और दर्भ यज्ञाग्नि में डाल दे तथा यह मन्त्र पढ़े—

**ॐ देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः** ।।

यह मन्त्र एक बार बोला जाय। इस प्रकार घृत सिद्ध करके अग्नि पर से नीचे उतारकर कुण्ड के उत्तर में रखे। तत्पश्चात् स्थालीपाक (भात) जिस सस्कार में कहा गया हो उस सस्कार में सिद्ध करे। इसकी विधि—जिस मन्त्र से भात को आहुति देनी हो उस मन्त्र के देवता (मुख्य ईश्वर वाचक शब्द) का उच्चारण करके ('अग्नि देवता होने पर **ॐ अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि** ।। इस मन्त्र से) ओखली में प्रत्येक

---

१. इस प्रकार आचमन तथा जलस्पर्श विधि शान्तिपूर्वक आसन पर बैठकर करे। चलते हुए, हंसते हुए, खड़े खड़े, पानी विना देखे हुए, उंगली से, आड़ी हस्तांजली से, मुंह से फट-फट की ध्वनि करते हुए, पैरों में जूते पहन कर, गले या सिर में वस्त्रादि लपेट कर, पैर फैलाकर, यह विधि न करे ।

आहुति के लिए ४-४ मुट्ठी गिनकर देवशालि[1] अथवा यदि अन्य अन्न की योजना की हो, तो वह डाले। पश्चात् दूसरी बार विना मन्त्र पढ़े मौन होकर प्रत्येक आहुति के लिए ४-४ मुट्ठी धान डाले। इसके पश्चात् पूर्व की ओर मुंह करके मूसल से ३-३ वार इसे कूटकर और ३-३ बार सूप से पछोरकर चावल तैयार करे। ये चावल ३-३ वार शुद्ध जल से धोकर चरुस्थाली में (उत्तम भात होने के लिए तांबे[2] के बर्तन में) डालकर उतम भात बनाकर करछो से मिलाये। इस पक्व भात में स्रुवा से घी डाले। यह भात अग्नि पर से उतारकर कुण्ड के उत्तर में घृतपात्र के निकट रख दे। इस भात पर पुनः घी डाले तथा इसे भलीभांति ढककर रख दे।

इस प्रकार स्थालीपाक, घृतादि अग्नि में डालने के पदार्थ सिद्ध हो जाने पर समिदाधान करे—उपलब्ध समिधा काष्ठ (जितने से अग्नि प्रज्वलित हो सके) लेकर उन पर स्रुवा से घृत सिंचन करके उनमें से

**ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा—इदमग्नये जातवेदसे, इदन्न मम ॥**[3]

---

१. देवशालि वह धान कहलाता है जो बिना जोते बोये बरसात में पैदा हो जाता है (वह लाल रंग का होता है)। 'व्रत उपवास आदि में प्रयोग किया जाता हैं इसका स्थानीयज्ञान सही' है। यु० मी०

२. तांबे के बर्तन में कलई की हुई होनी चाहिये अन्यथा भात विषाक्त हो जायेगा। —युधिष्ठिर मीमांसक

३. ग्रन्थकार ने अयन्त इध्म आत्मा मन्त्र से समिधा डालने का विधान आश्वलायन गृह्य के अनुसार किया है। ऋ० द० ने संस्कारविधि में पहले

इस मन्त्र से एक-एक समिधा यज्ञाग्नि कुण्ड में भलीभांति अग्नि प्रज्वलित होने तक डाले। कुशादि ताजे तृण हाथ में लेकर कुण्ड के चारों ओर दक्षिण से आरम्भ करके जितने शोभायमान दीखें उतने एक बित्ता भर बिछादे। एक हाथ लम्बी तथा अंगूठे से किंचित मोटी शमी अथवा पलाश वृक्ष की छिलके वाली ताजी लकड़ियां थोड़ी बहुत कुण्ड की प्रत्येक भुजा के पास रख दे। तत्पश्चात् दाहिना घुटना और बायें पैर का पंजा भूमि पर टेककर पलथी मारकर बैठे तथा हस्तांजली में जल लेकर कुण्ड के दक्षिण से पूर्व की ओर एक बित्ता तक सिंचन करे। इस समय,

ओ३म् **अदितेऽनुमन्यस्व** ।। यह मन्त्र बोले इस प्रकार

ओ३म् **अनुमतेऽनुमन्यस्व** ।। इस मन्त्र से पश्चिम में और

ओ३म् **सरस्वत्यनुमन्यस्व** ।। इस मन्त्र से कुण्ड के उत्तर में हस्तांजलि से जल सिंचन करे, और

ओ३म् **देव सवितः प्रसुव** ।। इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर तीन बार सिंचन करे। तदन्तर घृतादि आहुति द्रव्यों पर।

ओ३म् **विष्णोर्मनसा पूते स्था** ।। यह मन्त्र पढ़कर किंचित् जल छिड़के तथा आहुति देना प्रारम्भ करे। प्रथम घृताहुति और पश्चात्

---

इस मन्त्र का निर्देश न करके कात्यायनश्रौतसूत्र के अनुसार **समिधाग्नि०** **सुसमिद्धाय०** **तन्त्वा समिद्भि०** तीन मन्त्रों से ३ समिधा देने का विधान किया था। तत्पश्चात् हस्तलेख के हाशिये पर **अयन्त इध्म आत्मा०** मन्त्र बढ़ाया गया यह वृद्धि सम्भवतः इस ग्रन्थ को देखकर की गई है, परन्तु ऋ० द० ने जब इस मन्त्र का समिधाओं की आहुति के पश्चात् पांच घृताहुतियों में विनियोग किया है तब इस मन्त्र को यहां बढ़ाना युक्तिसंगत नहीं है। इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिये। युधिष्ठिर मीमांसक

स्थालीपाकाहुति दे। इसकी विधि आगे संस्कारों में वारंवार आने वाली आहुतियों में बतायी गयी है। इससे स्पष्ट होगा।

विवाहदि संस्कारों में मुख्य होम होते हैं। मुख्य होम की आहुतियां से पूर्व और अन्त में सूत्रोक्त मन्त्रों से घृताहुति दे। विधि—

(१) **आघारावाज्यभागाहुती**—यज्ञकुण्ड में प्रथमतः उत्तर अंग में एक और दक्षिण अंग में एक इस प्रकार दो आहुतियां दे। इसकी **आघारावाज्याहुति** संज्ञा है। मध्यभाग में दो दे, उसकी **आज्यभागाहुति** संज्ञा है। पूर्व कहे अनुसार यज्ञाग्नि में डाली गयी समिधाओं के प्रज्वलित होने पर उन प्रज्वलित समिधाओं पर सिद्ध घृतपात्र से स्रुवा भर घृत लेकर वह घृतपूर्ण स्रुवा अंगूठे, मध्यमा तथा अनामिका के अग्रभाग से उसके मध्य भाग को पकड़ कर उसके घृत की—

**ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये इदन्नमम ॥**

यह मन्त्र पढ़कर उत्तरांग में आहुति दे। इसी प्रकार

**ॐ सोमाय स्वाहा—इदं सोमाय, इदन्न मम ॥**

यह मन्त्र बोलकर दक्षिणांग में प्रज्वलित समिधा-काष्ठों पर दूसरी आहुति दे। आगे—

**ॐ प्रजापतये स्वाहा—इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥**

**ॐ इन्द्राय स्वाहा—इदमिन्द्राय, इदन्न मम ॥**

इन प्रत्येक मन्त्र से एक-एक घृताहुति मध्यभाग में प्रज्वलित-समिधाओं पर पूर्वोक्त रीति से दे।[1]

---

१. यहः आघाराज्याहुति और आज्यभागाहुति के मन्त्र भूल से ऊपर नीचे छप गये हैं प्रजापतये स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा ये मन्त्र आघाराज्यभागाहुति के हैं और अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा मन्त्र आज्यभागाहुति के हैं। संस्कार-

(२) **व्याहृति आहुतिः**—ये चार आहुतियां है। ये पूर्वोक्त आघारावाज्याभागाहुति के पश्चात् दे, तथा प्रधान होम के अन्त में दे। सिद्ध घृतपात्र से पूर्वोक्त रीति से स्रुवा से घृत लेकर प्रज्वलित समिधा काष्ठों पर—

**ओ३म् भूरग्नये स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥**

**ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा—इदं वायवे, इदन्न मम ॥**

**ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा—इदमादित्याय, इदन्न मम ॥**

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः अग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा—इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥**

उपर्युक्त प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार चार आहुतियां दे।

(३) **स्विष्टकृद्होमाहुतिः**—यह आहुति एक ही हैं। मुख्य होम जैसा होगा उसके अनुसार घृत अथवा भात की सबसे अन्त में एक-एक दे। इस आहुति का मन्त्र—

**ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा—इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम।**

(४) **चतस्र आज्याहुतिः**—इन चार घृताहुतियों का होम, चौल, उपनयन, समावर्तन तथा विवाह इन संस्कारों में मुख्य है। ये चार आहुतियां वेद मन्त्रों से दी जाती हैं। वे वेदमन्त्र—

---

विधि में भी यही अशुद्धि है। उसका मूल वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश ही है। इस विषय में संस्कारविधि ( रा० ला० कपूर ट्रस्ट मुद्रित ) में हमारी टिप्पणी देखें। यु० मी०

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥३॥

ओं भूर्भुव स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥४॥

(५) प्राजापत्याहुतिः—यह एकमात्र आहुति केवल मन में बोली जाती हैं। यह होमानुसार घृत अथवा स्थालीपाक—पक्व भात की दी जाती है। यह नित्य सर्वत्र मंगल होम में प्रयुक्त होती है। इसका कब-कब कैसे-कैसे उपयोग करना चाहिए आगे संस्कारों में यथास्थान यह बात स्पष्ट कर दी गयी है। इस आहुति का मन्त्रः—

ॐ प्रजापतये स्वाहा—इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥

(६) अष्टाज्याहुतिः—ये आठ घृताहुतियां नित्य सर्वत्र होम में दी जाती हैं। ये कब-कब तथा कहां-कहां देनी चाहिए, इसका स्पष्टीकरण आगे संस्कारों में उस-उस होम के प्रसंग में किया गया है। इस आहुति के मन्त्र—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदं न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोति नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वोहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।।
इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदं न मम ।।२।।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा ।। इदं वरुणाय--इदं न मम ।।३।।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ।।
इदं वरुणाय—इदं न मम ।।४।।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ।।
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः
—इदं न मम ।।५।।

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ।। इदमग्नये अयसे—इदं न मम ।।६।।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ।।
इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च—इदं न मम ।।७।।

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ।।
इदं जातवेदोभ्याम्—इदं न मम ।।८।।

## ४—मन्त्र पठन

विवाहादि संस्कारों में ईश्वरोपासना सम्बन्धी तथा यजमान

(संस्कारकर्त्ता) की प्रतिज्ञा से सम्बन्धित वेदमन्त्र तथा सूत्रमंत्र वस्तुतः संस्कारकर्त्ता ( यजमान ) को ही बोलने चाहिए। फिर भी वे मन्त्र यथोचित रीति से शुद्ध तथा क्रम से बोलने में उसकी ओर से असावधानी प्रमाद अथवा आलस्य न हो, अतः पुरोहित को भी यजमान के साथ मन्त्र बोलना चाहिए। यदि कोई यजमान जड़, मतिमन्द, अपढ़, शुद्ध अक्षर उच्चारण करने में असमर्थ हो, तो ईश्वरोपासना तथा आहुति के सभी मन्त्र पुरोहित बोले। प्रतिज्ञा के मन्त्र यजमान से ही पढ़वाने चाहिए। उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्रालंकार, रंग मंडप इत्यादि शोभा सम्बन्धी बातों की तैयारी की ओर यजमान पहले ही जितना ध्यान देता है, उससे भी अधिक उसे मन्त्र पठन की तैयारी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

## ९—वामदेव्य गान

विवाहादि संस्कारों में होम हवनादि यथोक्तविधि से समाप्त होने पर सामवेदोक्त गान मन्त्रों से वामदेव्य गान बोले। वामदेव्य गान के मन्त्रः—

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ ३ २ १ २
ओं भूर्भुव स्व ः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

१ २उ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ :
ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
३ १ १ ३ १ २
शतं भवास्यूतये ॥३॥

३ र ४ २ ४र ५ १ र २ १र
काऽ५या । नश्चा३ यित्रा३ आभुवात् । ऊ । ता सदा-
२ १ २ र२ १ २ र२
वृधः स । खा । औ३ होहाई । कया२३ शचाई । ष्ठयौहो३ ।
१ २
हुम्मा२ । वाऽ२र्तो३ऽ५हाई ॥१॥

१ र ४ २ ४ ५ १ २र १ २
काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठोमात्सादन्ध ।
२ र२ २ ३र२ १
सा । औ३होहाई । दृढा२३ चिदा । रुजौहो३ । हुम्मा२ ।
१ २
वाऽ२सो३ऽ५हाई ॥२॥

३ र ४ २ ४ ५ १ २र २र
आऽ५भी । षुणा३: सा३खीनाम् । आ । विता जरायितृ ।
१ र२ १ २ ३र२ १
णाम् । औ२३ होहाई । शता२३म्भवा । सियोहो३ हुम्मा२ ।
५ २
ताऽ२ यो३ऽ५हाई ॥३॥

उक्त वामदेव्य गान के पश्चात् यजमान सद्धार्मिक, लोकप्रिय, परोपकारी, ब्रह्मचारी, सन्यासी, विद्यार्थी तथा लोक-कल्याण करने वाले स्त्री-पुरुषों का यथाशक्ति आदर सत्कार करे तथा उन्हें आदर-पूर्वक भोजन करावें।

## ६—स्थान तथा काल-मान।

चौल, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह तथा सीमन्तोन्नयन संस्कारों की व्यवस्था प्रायः घर के बाहर मंडप में करे। इसका मुख्य काल उत्तरायण में शुक्ल पक्ष समझना चाहिए। अर्थात् मकर संक्राति

से आगे कर्क संक्रान्ति तक छह (६) महीने उत्तरायण काल होता है। इस समय सूर्य मकर वृत्त से उत्तर की ओर जाता है। इन छह महीनों में से किसी भी एक महीने की प्रतिपदा से पौर्णिमा तक किसी भी शुभ नक्षत्र युक्त दिन में ये संस्कार करें।[1] उत्तरा, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, स्वाती, मृगाशीर्ष और रोहिणी ये शुभ नक्षत्र समझने चाहिए। जातकर्म संस्कार प्रसूत समय पर अवलम्बित है, अतः उसे छोड़कर शेष सभी विवाहादि शुभ संस्कारों का प्रारम्भ निश्चित दिन प्रातःकाल दोपहर के पूर्व करे।[2]

इन सभी सामान्य संस्कार विधियों का उल्लेख आगे संस्कारों में उसी स्थान पर पृष्ठ देकर न्यूनाधिक स्पष्ट किया है।

—:o:—

---

१. सीमन्तोन्नयन का विशेष समय गर्भ मास से चौथा, छठा या आठवां महीना होता है। यदि यह उत्तरायण में न मिले तो यह संसार दक्षिणायन में (कर्क संक्रांति तक ६ महीने में) उपर्युक्त दिन करे।

२. शास्त्रीय विधि अनुसार विवाह का काल भी प्रातः काल माना गया गया है। दक्षिणदेश में यह परिपाटी अभी भी विद्यमान है। उत्तर भारत में विवाह संस्कार रात्रि में होते हैं। इस का निर्देश भी सूर्यदर्शन के स्थान में अस्तमितेऽग्निम् सूत्र द्वारा अग्निदर्शन के रूप में अनुमोदित है। परन्तु यह काल गौण है यह बात सूत्र रचना से ही स्पष्ट है। यु० मी०

# विवाह संस्कार विधि

**विवाहः**—ऐहिक तथा पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुष द्वारा एकत्र तथा एकमत से रहने का यथाविधि किया गया निश्चय ही विवाह है।

**विवाहाकालः**—पिछले ६२ पृष्ठ लिखे अनुसार उत्तरायण में शुक्ल पक्ष तथा शुभनक्षत्र युक्त दिन में विवाह करे। इसका प्रारम्भ प्रातःकाल मध्याह्नपूर्व अर्थात् १५ घटिका दिवस आने के पूर्व करना चाहिए। वर का वधू के घर जाकर मधुपर्क ग्रहण करना ही विवाह का प्रारम्भ समझना चाहिए।

**वधू तथा वर से सम्बन्धित वय, कुल, निवास स्थान, लक्षण, शरीर तथा स्वास्थ्य**—

वधू तथा वर दोनों ज्ञानवान् होने चाहिए। वर की आयु का प्रमाण वधू की आयु की अपेक्षा डेढ से दूना तक होना चाहिए। वधू-वर के कुल जितनें अधिक दूर के होंगे उतना ही उत्तम हैं। पितृ गोत्र में अथवा माता-पिता का ६ पीढ़ियों तक परस्पर सम्बन्ध के वर-वधू नहीं होने चाहिए। इसके अतिरिक्त वरवधू जितने अधिक दूर देश के होंगे उतने ही उत्तम होंगे

**वर वधू के लक्षण**—लक्षण समान होने चाहिए। विदुषी वधू के साथ विद्वान् वर का विवाह होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि समान गुण, समान शील (स्वभाव), समान बुद्धि, समान आचार इस प्रकार के समान लक्षणों के (वर्णों को) वर-वधू होने चाहिए। अहिंसक सत्यवादी, मधुरभाषी, नम्र, कृतज्ञ, परोपकारी, दयालु, निरहंकारी, निर्मत्सरी, उत्तम बुद्धिमान्, स्वदेश सुधारार्थ विद्यादान तथा सदुपदेश

करने में समर्थ और उत्सुक; इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, शोक, द्वेष, कपट, प्रतिस्पर्धादि दुर्गुणों से रहित, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों का वर्ण **ब्राह्मण** समझना चाहिए। पूर्वोक्त अहिंसादि सद्-गुण जिसमें है, परन्तु विद्या पढ़ाने तथा सदुपदेश करने की सामर्थ्य तथा उत्सुकता नहीं है, साथ ही विद्या कुछ कम होकर शूरत्व, बल पराक्रम विशेष हैं, और देश रक्षा की ओर विशेष भक्ति है, ऐसे स्त्री पुरुषों का **क्षत्रिय** वर्ण समझना चाहिए। पूर्वोक्त अहिंसादि सद्गुणों से युक्त है परन्तु जिसके पास विद्या साधारण है तथा व्यापारादि व्यवहार में कुशल है। द्वीप-द्वीपान्तरों में घूमकर माल ले जाकर और लाकर क्रय-विक्रय करने में प्रवीण, चतुर, दक्ष, बुद्धिमान्, सहन-शील, धैर्यवान्, और शान्त स्वभाव का है। ऐसे स्त्री पुरुषों का वर्ण **वैश्य** समझना चाहिए। पूर्वोक्त अहिंसादि कुछ गुण हैं, पर विद्या पढ़ने में जड़, मतिमन्द है, अत्यधिक प्रयत्न करके सिखाने पर भी कोई विद्या नहीं आती, फिर भी सेवा-चाकरी करने में परिश्रमी, उत्सुक, सन्तोषी तथा विश्वासपात्र है, ऐसे स्त्री-पुरुषों को शूद्र वर्ण का समझना चाहिए।[1] इस प्रकार वर्ण व्यवस्था देखकर ब्राह्मण का ब्राह्मणी से, क्षत्रिय का क्षत्रिया से, वैश्य का वैश्या से तथा शूद्र का शूद्रा से अर्थात् समान गुण कर्म के वधू-वरों का परस्पर विवाह होना चाहिए। परन्तु इस समान गुण-कर्म-व्यवस्था में १० कुल धन-धान्य आदि से समृद्ध हों, तो भी ऐसे कुलों को **वर्जन** करना चाहिए—

(१) हीन क्रिया, जिन कुलों में उत्तम पुरुष न हों, (२) निष्पु-रुष जिस कुल में पुरुषार्थी पुरुष न हों; (३) जिस कुल में वेद-विद्या

---

१. जो चतुवर्ण व्यवस्था के पात्र नहीं हैं—दुर्गुणी, दूषित, दुष्ट ऐसे स्त्री पुरुष अतिशूद्र और धर्मभ्रष्ट, धर्मनाशक ऐसे हिंसक स्त्री पुरुषों को असुर म्लेच्छ जानना चाहिये।

न हो; (४) जिस कुल में सभी के शरीर पर बड़े बड़े बाल हों; (५) जिस कुल में अर्श (बवासीर) रोग हो; (६) जिस कुल में क्षय अथवा दमा रोग हो; (७) जिस कुल में आमवात तथा आमाशय रोग हो; (८) जिस कुल में अपस्मार रोग हो; (९) जिस कुल में श्वेत कुष्ठ हो; और (१०) जिस कुल में गलित कुष्ठ-रक्त पित्त हों। इस प्रकार के दस रोग जिन कुलों में हों उन कुलों का त्याग करना चाहिए अर्थात् जिनके माता-पिता ऐसे किसी रोग से युक्त होते हैं उनका त्याग करना चाहिए। और इसी प्रकार श्वेत वर्ण (श्वेत कुष्ठ के सदृश जिसकी त्वचा हो) श्वेत केश (जिसके केश श्वेत हों) वर कन्या का त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार अधिकांगी अर्थात् जिसका शरीर वर के शरीर से अधिक ऊंचा, स्थूल, रोगग्रस्त तथा अत्यन्त केशोंवाली अथवा नितान्त केशरहित इसी प्रकार अत्यन्त वाचाल तथा पीले नेत्रों वाली कन्या वर्ज्य करनी चाहिए। स्त्री का शरीर पुरुष के कन्धों तक ऊंचा होना चाहिए। दोनों के शरीर स्थूल अथवा दोनों के शरीर पतले हों, परन्तु स्त्री की स्थूलता पुरुष की स्थूलता से किंचित् कम होनी चाहिए। इस प्रकार समान लक्षण[1] युक्त योग्यता देखकर वरवधू को उचित समय पर विवाह करना चाहिए।

---

१. वधू के आभ्यंतर लक्षणों की परीक्षा करने की एक विधि इस प्रकार है – दो बार अन्न उत्पन्न होने वाले खेत, पशुओं के गोठे, यज्ञकुंड, जलकुंड (कभी समाप्त न होने वाला जल संचय), द्यूतस्थान (जुए का स्थान, अनुपजाऊ भूमि (जहां बीज नहीं उगते), चतुष्पथ (चौराहा), और श्मशान इन आठ स्थानों से आठ प्रकार की मिट्टी लाकर उसके भिन्न-भिन्न आठ पिंड समान आकृति के तथा प्रमाण के बनाये। ये पिंड हाथ से वधू के निकट स्थापन करे तथा उस समय ॐ ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं तद् प्रतिष्ठितम। यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत् सत्यं तद्

ऊपर दर्शाये गये अनुसार विवाह-दिवस की योजना करे। विवाह दिवस आने के पूर्व दोनों वधू-वरों के निकट पूर्व (आगे) भाग में मंडप बनाकर उसमें (अथवा घर में) पृष्ठ ४८-४९ पर बतायी गयी विधि से एक एक यज्ञकुंड बनाये और उसके पार्श्व में वधू-वर को बैठने के लिये किंचित् ऊंचा शुभ आसन तैयार करे तथा ४९-५० वें पृष्ठ पर लिखी विधि से ईंधन द्रव्यादि सभी होम-द्रव्य लाकर रख दे। आगे विवाह के निश्चत दिन पर प्रातःकाल वधू को बन्धुवर्ग की सौभाग्यवती स्त्रियां यव तथा उड़द का कल्क शरीर में लगाकर स्नान करायें तथा उस समय वे—

**ओ३म् काम वेद ते नाम मदो नामासि समानया अमुँसुरा ते अभवत्। परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥१॥**

---

दृश्यताम्॥ यह मन्त्र पढ़े तथा आगे [वधू का नाम, (यशोदा नाम हो तो "यशोदे!" इस प्रकार) संबोधनान्त उच्चारण करके ओ३म् यशोदे! एषामेकं गृहाण। इस प्रकार वधू से कहे। वधू उन पिंडों में से एक पिंड उठाये। पहले चार प्रकार के पिंडों में से अर्थात् खेत, गोठा, यज्ञकुंड अथवा जलपूर्ण कुंड इन स्थानों की मिट्टी से बने पिंड उठाने पर उस वधू के साथ विवाह करे। अन्य जाति की मिट्टी से पिंड उठाने पर वह वधू वर्जित करे। प्रत्येक मिट्टी का पिंड उठाने पर भिन्न-भिन्न फल बताये गये हैं—खेत की मिट्टी का पिंड उठाने पर सन्तति होगी तथा वह सन्तति धन-धान्य सम्पन्न होगी। पशुशाला की मिट्टी का पिंड लेने पर वधू पशुओं की स्वामिनी होगी। यज्ञकुंड की मिट्टी का पिंड लेने पर उसे ब्रह्मतेज प्राप्त होगा। जलकुंड की मिट्टी का पिंड लेने पर वह सर्व सम्पतिवान् होगी। द्यूतस्थान की मिट्टी का पिंड लेने पर वह स्वच्छन्द तथा दुर्व्यसनी बनेगी। अनुपजाऊ भूमि की मिट्टी का पिंड लेने पर वह अपुत्रिका, भाग्यहीना होगी। श्मशान की मिट्टी का पिंड लेने पर पतिघ्नी अर्थात् पतिघातिनी (विधवा) होगी।

[इस कन्या-परीक्षा का खण्डन ग्रन्थकार ने स्वयं द्वितीय भाग के उपोद्घात में किया है। द्र० पूर्व पृष्ठ ४१, टि० १ —यु० मी०]

**ओ३म् इमन्त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥२॥**
**ओ३म् अग्निं क्रव्यादमकृण्वन्गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृंगं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥३॥**

इन तीन मन्त्रों का पाठ करे । स्नान के पश्चात् वधू उतम वस्त्रालंकार धारण करके पूर्वोक्त शुभासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठे तथा कार्य-सिद्धि के लिए प्रारम्भ में (४२-४८ पृष्ठ तक) लिखे हुए "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से ईश्वरोपासना करे। वधू तथा पुरोहित निकट बैठकर वधूसहित, ६०-६१ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार[1] ईश्वरोपासना करें। इस अवसर पर कार्यार्थ आगत लोगों को इस उपासना की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ईश्वरोपासना समाप्त होने पर वधू-पक्ष के लोग देशाचार के अनुसार वर को वधू के घर सम्मानपूर्वक लाने के लिए निकलें।

इधर वर अपने घर में प्रातःकाल स्नान करके, उत्तम वस्त्र धारण करे तथा वधू की भांति ही शुभासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठकर, प्रारम्भ में (४२-४८ पृष्ठ तक) लिखित "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से ईश्वरोपासना करे। ईश्वरोपासना समाप्त होने पर वधू के घर जाने की तयारी करे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वधू-पक्ष के लोग वर को देशाचार के अनुसार अत्यन्त सन्मान पूर्वक वधू-गृह में लायें। वर के वधू-गृह में प्रवेश करते ही उसका वधू-पक्ष के लोग मधुपर्क से इस प्रकार आदर सत्कार करें—वर अन्दर प्रवेश करते ही उसका पूर्व की ओर मुंह करके[2] खड़ा रहे तथा

---

१. मन्त्र पठन में लिखे अनुसार। यु० मी०।

२. मंडप द्वार पूर्व की ओर हो तो वर उत्तराभिमुख तथा वधूपक्षीय पूर्वाभिमुख खड़े रहें।

वधू-पक्ष के कार्यकर्त्ता वर के निकट उत्तर की ओर मुंह करके खड़े होकर वर से—

**ओ३म् साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ।**

इस प्रकार की प्रार्थना करे। तत्पश्चात् वर **ओ३म् अर्चय** बोले। अब वधू पक्ष का कार्यकर्त्ता वर को पूर्व स्थापित शुभासन के निकट ले जाकर **ओ३म् विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्** इस प्रकार प्रार्थना करे। इसके अनन्तर वर **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** बोलकर शुभासन पर बैठे और,

**ओ३म् वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः ।**
**इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ।।**

यह मन्त्र बोले। अब कार्यकर्त्ता जलपूर्ण पात्र (लोटा) लाकर वर के सम्मुख रखकर,

**ओ३म् पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।**

इस प्रकार प्रार्थना करे। पश्चात् वर **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** कहकर वह जल ले और उठकर पैर धोये[1] तथा उस समय

**ओ३म् विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ।।**

यह मन्त्र बोले। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता और लोटा भर शुद्ध जल हाथ में लेकर,

**ओ३म् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ।।**

बोलकर वर को दे। वर **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** कहकर ले और मुंह धोते हुए,

**ओ३म् आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि ।।**

---

१. ब्राह्मण पहले दायां पैर तथा अन्य वर्ण पहले बायां पैर धोये।

**ओ३म् समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।**
**अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः॥**

यह मन्त्र पढ़े तथा शुभासन पर बैठे। अब कार्यकर्त्ता जलपूर्ण आचमनीय पात्र (उदकपूर्ण कटोरी) लाकर,

**ओ३म् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयं प्रतिगृह्यताम्॥**

यह पढ़ते हुए वर को दे। वर वह पात्र **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** कहकर ले तथा उसका जल दाहिने हाथ की अंजली में लेकर,

**ओ३म् आमागन्य शसासꣳसृज वर्चसा। तम्मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टं तनूनाम्॥**

यह मन्त्र प्रत्येक बार बोलकर तीन आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क[1] पात्र वर के सम्मुख रखकर,

**ओ३म् मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्॥**

इस प्रकार वर से प्रार्थना करे। इसके अनन्तर वर ओ३म् प्रतिगृह्णामि कहकर मधुपर्क की ओर देखे तथा,

**ओ३म् मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष॥**

मन्त्र बोलते हुए मधुपर्क पात्र वर,

**ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि॥**

यह मन्त्र बोलकर उसे बायें हाथ में ले तथा उस मधुपर्क की ओर,

---

१. घी दही तथा मधु के मिश्रण की मधुपर्क संज्ञा है। घी ८ तोले, दही १२ तोले तथा मधु ८ तोले लेकर' मधुपर्क कांसे के बर्तन में तैयार करे।

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। मधुवाता ऋतायते मधु क्षरंति सिंधवः।**
**माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१॥**
**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः।**
**मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥**
**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।**
**माध्वीर्गावो भवंतु नः ॥३॥**

इन तीन मन्त्रों से देखकर दाहिने हाथ की अनामिका तथा अंगूठे से तीन बार मिलाते हुए उसमें से इन्हीं अगुलियों से,

**ओ३म् वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु**—के द्वारा पूर्व की ओर,

**ओ३म् रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु**—के द्वारा दक्षिण की ओर,

**ओ३म् आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु**—के द्वारा पश्चिम की ओर,

**ओ३म् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु**—के द्वारा उत्तर की ओर, थोड़ा-थोड़ा छिड़के तथा अन्त में **ओ३म् भूतेभ्यस्त्वा** मन्त्र बोल कर मध्यभाग से तीन बार लेकर तीन बार उर्ध्व (ऊपर) की ओर छिड़के। तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन पात्रों में डालकर भूमि पर रख दे और,

**ओ३म् यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥**

यह मन्त्र एक-एक बार बोलकर उसमें एक-एक भाग में से थोड़ा थोड़ा मधुपर्क खाये, अधिक न खाये। शेष (उच्छिष्ट=शेष) मधुपर्क उत्तर की ओर मुंह करके बैठे हुए ब्राह्मण को दे अथवा कुएं या जलाशय (जहां पानी संचित हो) में डाल दे। तदनन्तर पृष्ठ ५३ में कहे गये अनुसार,

**ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।**

**ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक, इस प्रकार दो आचमन शुद्ध जल से करे। पश्चात् पृष्ठ ५३ पर लिखे गये अनुसार चक्षु आदि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे। इसके अनन्तर वधूपक्षीय कार्यकर्ता **ओ३म् गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम्** ।।

इस प्रकार प्रार्थना करके अपनी स्थिति, योग्यता, शक्ति तथा अनुकूलता के अनुसार वर को भूमि, गाय अथवा द्रव्य अर्पण करे, जिसे वर **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** कह कर ग्रहण करे।

इस प्रकार मधुपर्क विधि समाप्त होने पर, वधूपक्षीय कार्यकर्ता वर को मंडप स्थान से[1] घर में ले जाकर शुभासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठाये और उसके सन्मुख वधू को पश्चिम की ओर मुंह करके बैठाये तथा स्वयं उनके निकट उत्तर की ओर मुंह करके बैठे। अब

**ओ३म् (अमुक)[2] गोत्रोत्पन्नाम् इमां (अमुक नाम्नी) अलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ।।**

यह मन्त्र बोलकर वर के दाहिने चित्त हाथ में वधू का दाहिना हाथ चित्त अवस्था में दे। पश्चात् वर **ओ३म् प्रतिगृह्णामि** बोले। तदनन्तर वर वधू को उत्तम वस्त्र दे—

---

१. मंडप स्थान न होने पर मधुपर्क विधि घर में की हो, तो मधुपर्क के पश्चात् कार्यकर्ता वर को घर में ही अन्य स्थान पर ले जाय।

२. (अमुक) स्थान पर जिस गोत्र में वधू का जन्म हुआ हो उस गोत्र या कुल का नाम उच्चारण करे तथा (अमुक नाम की) यहां वधू का नाम द्वितीया विभक्ति (कर्म) में बोले।

**ओ३म् जराङ्गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्च्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।।**

यह मन्त्र बोलकर वर वधू को परिधान करने के लिए वस्त्र दे और

**ओ३म् या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसा संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।।**

इस मन्त्र से उपवस्त्र (ओढने का वस्त्र) दे। तत्पश्चात् ये दिये गये वस्त्र वधू लेकर अन्य स्थान में जाकर पहने। उपवस्त्र यज्ञोपवीत की भांति धारण करे।

इस प्रकार वधू के वस्त्र धारण कर तैयार होने तक वधूपक्षीय कार्यकर्त्ता अथवा अन्य कोई यज्ञकुंड के निकट जाकर ४९-५० वें पृष्ठ पर कहे अनुसार इंधन द्रव्य से कुंड में अग्नि प्रज्वलित कर तथा आहुति देने के लिए घृत, आज्यस्थाली (घी गर्म करने के लिए कांसे का पात्र) स्रुवा, शुद्ध जल-पात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुंड के निकट तैयार रखे। इसके अतिरिक्त वरपक्षीय कोई पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा कर, कुंड के दक्षिण भाग में एक जल पूर्ण कलश लेकर स्वकार्य-समाप्ति तक उत्तराभिमुख रहे। इसी प्रकार वर-पक्षीय अन्य कार्यकर्त्ता हाथ में दण्ड लेकर कुंड के दक्षिण भाग में कार्य समाप्ति तक उत्तराभिमुख रहे।

वधू का भाई अथवा भाई न होने पर भाई के सदृश सम्बन्धी (चचेरा भाई मौसेरा भाई अथवा ममेरा भाई) धान अथवा ज्वार की खील तथा शमी वृक्ष की सूखी पत्तियां एक साथ मिलाकर, यह शमी पत्र युक्त खील चार अंजली एक सूप में डालकर, इस खील के सूप को निकट रखकर यज्ञकुंड के पश्चिम भाग में रहे। तत्पश्चात् कार्य

कर्त्ता कुंड के पश्चिम और ईशान्य दिशा में एक सिलबट्टा रखकर कुंड के निकट पश्चिम की ओर वधू तथा वर के बैठने के लिए कुश अथवा दर्भादि यज्ञीय तृणासन किंवा यज्ञीय वृक्ष के पाटे (पीठासन) रख दे।

तदनन्तर पूर्व कहे अनुसार वर द्वारा दिये गये वस्त्र वधू के यथा-विधि धारण करने के पश्चात् कार्यकर्त्ता उसे वर के सम्मुख लाये तथा उस समय वर—

**ॐ समंजन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।**

यह मन्त्र बोले साथ ही दाहिने हाथ से वधू का दाहिना हाथ[1] ग्रहण करके,

**ॐ यदेषि मनसा दूरं दिशोनुपवमानो वा। हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ[2]॥**

यह मन्त्र वोले तथा उसे साथ लेकर घर के वाहर मंडप में यज्ञ-कुंड के निकट आये। इस समय वधू तथा वर दोनों एक-दूसरे का देखें तथा वर,

**ॐ भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥**

---

**१. वर अपने चित्त अथवा पट पर हाथ से वधू का पट हाथ ही ग्रहण करे। यही नियम सर्वत्र समझना चाहिए।**

**२. "असौ" इस स्थान पर वधू का नाम प्रथमान्त (कर्ताकारक में) ग्रहण करे।**

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥२॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥३॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमा मेरयसान ऊरू उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै ॥४॥

ये चार मन्त्र बोले । तत्पश्चात् दोनों यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा कर के कुण्ड के पश्चिम में जायें और वहां कुण्ड के निकट पूर्व बिछाये गये आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके (वर के दाहिने वधू खड़ी हो) खड़े रहें तथा वर

**ओ३म् प्र मे पतिया नः पन्थाः कल्पताᳪ शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥**

यह मन्त्र वधू से बुलवाये। इसके अनन्तर पृष्ठ ४८-४९ पर कहे गये अनुसार यज्ञकुंड के निकट दक्षिण की ओर पाटे पर पुरोहित को आसीन करके, कुंड के निकट पश्चिम भाग में वधू तथा वर (वर की दाहिनी ओर वधू रहे) पूर्व की ओर मुंह करके बैठे । अब पृष्ठ ५३ पर कहे गये अनुसार "ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" इत्यादि तीन मन्त्रों से (प्रत्येक मन्त्र से एक) तीन आचमन करें। तदनन्तर पृष्ठ ५५ और ५६ पर कहे गये अनुसार "अयन्त इध्म०" इस मन्त्र से समिधा काष्ठों से समिदाधान करें और "ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुंड के निकट तथा **ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पति-**

र्वाचन्नः स्वदतु ।। इस मन्त्र से चारों ग्रोर दाहिने हाथ की ग्रंजली से जल सिंचन करे साथ ही ग्राज्याहुतियां देना प्रारम्भ करे ।

यज्ञाग्नि में डाली गयी समिधाएं प्रज्वलित होने पर,

**ॐ ग्रग्नये स्वाहा०**

**ॐ सोमाय स्वाहा०**

**ॐ प्रजापतये स्वाहा०**

**ॐ इन्द्राय स्वाहा०**

ये चार ग्राघारावाज्यभागाहुति मन्त्र हैं जो ५७ वें पृष्ठ पर पूरे लिखे गये हैं। इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक ग्रर्थात् कुल ४ ग्राज्याहुतियां दे । इसके पश्चात्—

**ॐ भुरग्नये०**

**ॐ भुवर्वायवे०**

**ॐ स्वरादित्याय०**

**ॐ भूर्भुवः स्वः०**

ये चार व्याहृति मन्त्र ५८ वें पृष्ठ पर दिये गये हैं। इनमें से प्रत्येक पूर्ण मन्त्र से एक-एक ग्रर्थात् कुल ४ ग्राज्याहुतियां दें । इसी प्रकार

**ॐ त्वन्नोऽग्रग्ने०**

**ॐ स त्वन्नोऽ ग्रग्ने०**

**ॐ इमं मे वरुण श्रुधी०**

**ॐ तत्त्वा यामि०**

**ॐ ये ते शत०**

**ॐ ग्रयाश्चाग्ने०**

**ॐ उदुत्तमं०**

**ॐ भवतन्न०**

ये ८ ग्रष्टाज्याहुति मन्त्र ५९-६० वें पृष्ठ पर पूर्ण दिये हुए हैं। इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार कुल ८ ग्राज्याहुतियां दें ।

तदनन्तर प्रधान[1] होमाहुति का प्रारम्भ करे। वे होमाहुति मंत्र—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषि०

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व०

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्व०

ये चार आज्याहुति मन्त्र ५९ वें पृष्ठ पर पूर्ण दिये हुए हैं। उनमें से प्रथम तीन पूर्ण मन्त्रों से तीन आज्याहुतियां प्रथम दे तथा चौथे मन्त्र की चौथी शेष एक आज्याहुति, निम्नलिखित मन्त्र की एक आज्याहुति बीच में देकर, तब दे। वह मन्त्रः—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि। अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद् दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

इस प्रकार इन ऋग्वेदोक्त पांच मन्त्रों की ५ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् बारह यजुर्वेदोक्त मन्त्रों की १२ आज्याहुतियां दे। वे आहुति मन्त्र ये हैं।

१. प्रधान होम आहुति देते समय वधू अपने दाहिने हाथ से वर के दाहिने कन्धे को स्पर्श करे।

ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमृताषाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥१॥

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः—इदन्न मम ॥२॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥३॥

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः—इदन्न मम ॥४॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सुषुम्णाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥५॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः—इदन्न मम ॥६॥

इषिरो विश्वव्यंचा वातों गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥७॥

इषिरो विश्वव्यंचा वातों गन्धर्वस्तस्यापों अप्सरस ऊर्ज्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा॥ इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यऽऊग्भ्यः—इदन्न मम ॥८॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥९॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसं स्तावा नाम। ताभ्य स्वाहा॥ इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः—इदन्न मम ॥१०॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनों गन्धर्वः। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्॥ इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय—इदन्न मम ॥११॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनों गन्धर्वस्तस्यं। ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। ताभ्य स्वाहा॥ इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः—इदन्न मम ॥१२॥

इन यजुर्वेदोक्त प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार १२ आहुतियां देने पर सूत्रोक्त मन्त्रों से प्रथम जया होम करे। वे होमाहुति मन्त्र—

**ॐ चित्तं च स्वाहा—इदं चित्ताय, इदन्न मम ॥१॥**
**ॐ चित्तिश्च स्वाहा—इदं चित्यै, इदन्न मम ॥२॥**
**ॐ आकूतं च स्वाहा—इदं आकूताय, इदन्न मम ॥३॥**
**ॐ आकूतिश्च स्वाहा—इदं आकूत्यै, इदन्न मम ॥४॥**
**ॐ विज्ञातं च स्वाहा—इदं विज्ञाताय, इदन्न मम ॥५॥**
**ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा—इदं विज्ञात्यै, इदन्न मम ॥६॥**
**ॐ मनश्च स्वाहा—इदं मनसे, इदन्नमम ॥७॥**
**ॐ शक्वरीश्च स्वाहा—इदं शक्करीभ्यः इदन्न मम ॥८॥**
**ॐ दर्शश्च स्वाहा—इदं दर्शाय, इदन्न मम ॥९॥**
**ॐ पौर्णमासं च स्वाहा—इदं पौर्णमासाय, इदन्न मम ॥१०॥**
**ॐ बृहच्च स्वाहा—इदं बृहते, इदन्न मम ॥११॥**
**ॐ रथंतरं च स्वाहा—इदं रथंतराय, इदन्न मम ॥१२॥**

**ॐ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु। तस्मै विशः समनमन्तः सर्वाः सऽउग्र सऽ इ हव्यो बभूव स्वाहा—इदं प्रजापतये, जयानिन्द्राय, इदन्न मम ॥१३॥**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार जया होम की १३ आहुतियां देने पर अन्य सूत्रोक्त मन्त्रों से अभ्यातन होम करे। वे होमाहुति मन्त्र—

**"ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामा शिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या७"**

यह पद निम्नलिखित प्रत्येक त्वस्मिन्० पद स्थान के आगे तथा **स्वाहा** पद के पहले लगाकर निम्नलिखित प्रत्येक मन्त्र पूर्ण बोले—

**ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदमग्नये भूतानामधिपतये, इदन्न मम ॥१॥**

**ॐ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये, इदन्न मम ॥२॥**

**ॐ यमः पृथिव्याऽअधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं यमाय, पृथिव्या अधिपतये; इदन्न मम ॥३॥**

**ॐ वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं वायवे अन्तरिक्षस्याधिपतये; इदन्न मम ॥४॥**

**ॐ सूर्यो दिवोधिपतिः समावत्वस्मिन्०—इदं सूर्याय, दिवोधिपतये, इदन्न मम ॥५॥**

**ॐ चंद्रमा नक्षत्राणामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं चंद्रमसे नक्षत्राणामधिपतये; इदन्न मम ॥६॥**

**ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये; इदन्न मम ॥७॥**

**ॐ मित्रः सत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा इदं मित्राय, सत्यानामधिपतये; इदन्न मम ॥८॥**

**ॐ वरुणोपामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा इदं वरुणाय, अपामधिपतये, इदन्न मम ।९॥**

**ॐ समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये; इदन्न मम ॥१०॥**

**ॐ अन्नँ साम्राज्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन० स्वाहा इदमन्नाय, साम्राज्यानाम धिपतये, इदन्न मम ॥११॥**

ॐ सोमऽ ओषधीनामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये; इदन्न मम ॥१२॥

ॐ सविता प्रसवानामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं सवित्रे, प्रसवानामधिपतये; इदन्न मम ॥१३॥

ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं रुद्राय, पशूनामधिपतये; इदन्न मम ॥१४॥

ॐ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः समावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं त्वष्ट्रे, रूपाणामधिपतये; इदन्न मम ॥१५॥

ॐ विष्णुः पर्वतानामधिपतिः समावत्वस्मिन्०स्वाहा—इदं विष्णवे, पर्वतानामधिपतये; इदन्न मम ॥१६॥

ॐ मरुतो गणानामधिपतयः तेमावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्य, इदन्न मम ॥१७॥

ॐ पितरः पितामहाः परेवरे ततास्ततामहाः । इहमावत्वस्मिन्० स्वाहा—इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च; इदन्न मम ॥१८॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ आहुतियां देने के पश्चात्,

ॐ अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳫ सोस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳫ राजा वरुणोनुमन्यतां यथेयᳬंस्त्री पौत्रमघन्न रोदात् स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥१॥

ॐ इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳫ स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥२॥

ॐ स्वस्ति नोऽअग्ने दिवा पृथिव्या विश्वा निधेह्ययथा यजत्र । यदस्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रᳫ स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥३॥

ओ३म् सुगन्नु पन्थाम्प्रदिशन्नऽएहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽआयुः। अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा—इदं वैवस्वताय, इदन्न मम ॥४॥

ओ३म् परं मृत्योऽअनु परेहि पन्थां यत्र नोऽ अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाँ रीरिषो मोतवीरान् स्वाहा—इदं मृत्यवे, इदन्न मम ॥५॥

ओ३म् द्यौस्ते पृष्ठँ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च। स्तनं धयंस्ते पुत्रान् सविताभिरक्षत्वा वाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वेदेवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा—इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, इदन्न मम॥६॥

ओ३म् मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः सविशन्तु। मा त्वँ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाँ सुमनस्यामानाँ स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥७॥

ओ३म् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघं। शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रति मुचामि पाशँ स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥८॥

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक अर्थात् कुल आठ आहुतियां दे।

अन्त में "ओ३म् भूरग्नये स्वाहा०" इत्यादि ४ व्याहृति मन्त्र जो ५८ वें पृष्ठ पर पूर्ण दिये हुए हैं, उनमें से प्रत्येक पूर्ण मन्त्र से एक-एक अर्थात् कुल चार आज्याहुतियां दे। इस प्रकार हवन करके आसन से उठकर पूर्वाभिमुख स्थित वधू के सामने जाकर पश्चिमाभिमुख खड़ा रहे। तदनन्तर अपने बायें हाथ से बैठी हुई वधू का दाहिना हाथ मणिबन्ध प्रदेश (कलाई) से पकड़ कर ऊपर उठाये। अब दाहिने हाथ से उठाये हुए हाथ की अंजली, अगूठे सहित चित करे। इस समय वर,

ओ३म् गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥

ओ३म् भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥२॥

ओ३म् ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतं ॥३॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया ॥४॥

इंद्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोमं इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५॥

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ॥६॥

ये पाणिग्रहण के ६ मंत्र बोले। तदन्तर वर वधू को उसकी दाहिनी हस्तांजलि पकड़कर उठाये तथा उसे साथ लेकर जलपूर्ण कलशसहित यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा करे। इस समय—

ओ३म् अमोहमस्मि सा त्वँसा त्वमस्यमोहं। सामाहमस्मिऽऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्। तावेव विवहावहै सहरेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियो रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शत जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतम् ॥

यह प्रतिज्ञा मन्त्र प्रथमतः वर तत्पश्चात् वधू बोले। अब वर

वधू के पीछे से चलकर, वधू की दाहिनी ओर निकट जाकर, उत्तराभिमुख होकर, वधू की दक्षिणांजली अपनी दक्षिणांजली से पकड़े। तदनन्तर वधू का भाई अथवा माता पहले तैयार करके रखा गया खीलों का सूप बायें हाथ में लेकर, दाहिने हाथ से वधू का दाहिना पैर पहले आगे करके पत्थर की शिला पर चढाये तथा इस समय वर,

**ओ३म् आरोहेममश्मानमश्मेव त्व१ँ स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोव बाधस्व पृतनायतः।**

यह मन्त्र बोले। अब दोनों वधू-वर कुंड के निकट पूर्व की ओर मुंह करके खड़े हों। इस समय वधू वर की दाहिनी ओर रहकर अपनी हस्तांजली वर की हस्तांजली में रखे। तदन्तर वधू की माता अथवा भ्राता—जो हो, वह खीलों का सूप भूमि पर रखकर अथवा अन्य किसी को देकर वरांजली में रखी हुई वधू की अंजली में थोड़ा घृत सिंचन करके उस पर दाहिनी हस्तांजली से दो बार उस सूप की खील लेकर डाले तथा पुनः उन खीलों पर भी घृत सिंचन करे। अब वधू अपनी अंजली अलग न करते हुए नीचे झुककर प्रज्वलित समिधा काष्ठों पर,

**ओ३म् अर्यमणं देवं कन्याऽ अग्निमयक्षत। सनोऽअर्यमा देवः प्रेतो मुंचतु मा पतेः स्वाहा—इदमर्यम्णे, अग्नये, इदन्न मम ॥१॥**

**ओ३म् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा—इदमग्नये, इदन्न मम ॥२॥**

**ओ३म् इमां लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणन्तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनमन्यतामिय१ँस्वाहा—इदमग्नये इदन्न मम ॥३॥**

इन तीन मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी खील से तीन अजलीस्थ सब खीलों की आहुतियां कुंड में प्रज्वलित समिधा काष्ठों पर दे। तत्पश्चात् वर,

**ओ३म् सरस्वती प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳसमभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥**

यह मन्त्र बोलकर अपने दाहिने हाथ की हस्तांजली से वधू की दाहिनी हस्तांजली पकड़ कर,

**ओ३म् तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह॥१॥**

**ओ३म् कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥२॥**

यह मन्त्र बोलकर यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् यज्ञ कुंड की ओर मुंह करके थोड़ा खड़ा रहे और फिर ऊपर कहे गये अनुसार कलश सहित यज्ञकुंड की प्रदक्षिणा करके यही क्रिया पुनः पुनः और दो बार करे। अब अन्त में यज्ञ कुंड के निकट वर-वधू पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख खड़े हों तथा वधू का भाई अथवा माता जो कोई उपस्थित हो सूप में शेष रही खील, सूप टेढा झुकाकर सूप के दाहिने कोने से वधू की हस्तांजली में डाले तथा वधू,

**ओ३म् भगाय स्वाहा—इदं भगाय, इदन्न मम॥**

यह मन्त्र बोलकर हस्तांजली में ली हुई सब खीलों की प्रज्वलित समिधा काष्ठों पर एक आहुति दे।

तदनन्तर वर, वधू को अपने दक्षिण भाग में लेकर कुंड के निकट पूर्वाभिमुख बैठे, और

**ओ३म् प्रजापतये स्वाहा—इदं प्रजापतये, इदन्न मम॥**

यह मन्त्र बोलकर स्रुवा से एक आज्याहुति दे। तदनन्तर वधू के केश बांधे हुए होने पर वर,

**प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबंध्नात्सविता सुशेवः ।**
**ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥१॥**

**प्रेतो मुंचामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करं ।**
**यथेयामिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२॥**

ये मन्त्र बोलकर उसके केश खोले तत्पश्चात् सप्तपदी विधि करे। यह इस प्रकार—

वर-वधू दोनों आसन से उठें। अब वर अपने दाहिने हाथ से वधू की दक्षिण हस्तांजली पकड़कर यज्ञकुंड के पश्चिम से यज्ञकुंड के उत्तर भाग में जायें तथा वहां वर अपना दाहिना हाथ वधू के दाहिने कन्धे पर रखकर दोनों पास-पास जोड़े के रूप में उत्तराभिमुख खड़े हों। तत्पश्चात् वर "मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम" इस प्रकार बोलकर वधू को दाहिना पैर प्रथम उठाकर चलने के लिए कहे तथा,

**ओ३म् इष एक पदी भव, सा मामनुव्रता भव, विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥**

यह मन्त्र बोलकर वधू को अपने साथ ईशान्य दिशा की ओर एक पग[1] चलाये। आगे इसी प्रकार

**ओ३म् उर्ज्जे द्विपदी भव०**[2] इस मन्त्र से दूसरा एक पग।

**ओ३म् रायस्पोषाय त्रिपदी भव०** इस मन्त्र से तीसरा एक पग,

---

१. वधू पहले दाहिना पैर उठाकर आगे रखे। इसके अनन्तर दूसरा पैर उठाकर दाहिने पैर के बराबर रखे। इसे एक पग समझे।

२. इस में से प्रत्येक मन्त्र के भव० पद के आगे पहले मन्त्र में दर्शाये गये अनुसार 'सा मामनुव्रता' इत्यादि पूर्ण पद लगाकर पूरा मन्त्र बोले।

ओ३म् **मायोभव्याय चतुष्पदी भव०** इस मन्त्र से चौथा एक पग

ओ३म् **प्रजाभ्यः पंचपदी भव०** इस मन्त्र से पांचवां एक पग,

ओ३म् **ऋतुभ्यः षट्पदी भव०** इस मन्त्र से छठा पग,

ओ३म् **सखा सप्तपदी भव०** इस मन्त्र से सातवां एक पग,

इस प्रकार सात मन्त्रों से सात पग अपने साथ ईशान्य दिशा में चलाये।

इस प्रकार वर वधू को सात पग चलाने के अनन्तर दोनों वर-वधू शुभासन पर एकत्र बैठें। अब पूर्वोक्त जलपूर्ण कलश निकट रखकर यज्ञकुंड के दक्षिण भाग में जो पुरुष बैठा हो, वह जलकुंभ वहां लेकर आये और उसमें से थोड़ा जल लेकर वर-वधू के मस्तक पर सिंचन करे। इस समय वर,

ओ३म् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥

ओ३म् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥२॥

ओ३म् तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥

ओ३म् आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते
कृण्वन्तु भेषजम् ॥४॥

ये चार मन्त्र बोले। तत्पश्चात् वर-वधू उठकर,

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतम्

जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

यह मन्त्र बोलकर सूर्य का अवलोकन करे। तदनन्तर वर अपना दाहिना हाथ वधू के दाहिने कन्धे से लेजाकर उसके हृदय का स्पर्श करके,

**ओ३म् मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु ।**
**मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम ॥**

यह मन्त्र पढे। इसी प्रकार वधू भी वर के हृदय को दाहिने हाथ से स्पर्श करके वही मन्त्र बोले।

अब वर वधू के मस्तक पर अपना दाहिना हाथ रखकर

**सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।**
**सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥**

यह मन्त्र बोलकर वहां कार्यार्थ आए हुए लोगों की ओर अवलोकन करे। इस अवसर पर ये लोग ओ३म् सौभाग्यमस्तु ॥ ओ३म् शुभं भवतु ॥ इस प्रकार आशीर्वाद के वचन बोलें। तदनन्तर वर-वधू यज्ञकुंड के निकट पूर्ववत् बैठकर "ओ३म् यदस्य कर्मणो०" इस स्विष्टकृद् होमाहुति मन्त्र (यह ५८ वें पृष्ठ पर लिखा हुआ है) से एक आज्याहुति; तथा "भूरग्नये स्वाहा०" इत्यादि ४ व्याहृति आहुति मन्त्रों में से (५८ वें पृष्ठ पर पूर्ण लिखे हुए) प्रत्येक पूर्ण मन्त्र से एक-एक अर्थात् कुल चार अन्य आज्याहुतियां दे। इस प्रकार विवाह संस्कार का पूर्व भाग संपूर्ण होने पर वर-वधू दोनों विश्राम करें। तदनन्तर उनके कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् विवाह की उत्तर विधि पूर्ण करने के लिए वधू-गृह की विशेषकर ईशान्य दिशा में पहले से ही जिस घर में व्यवस्था की गयी हो, वहां जाकर उत्तर विवाह को,

सामग्री की तैयारी करे। तत्पश्चात् सूर्यास्त होने पर आकाश में नक्षत्र दिखाई देने लगने पर, वर-वधू यज्ञकुंड के निकट पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके बैठें तथा पृष्ठ ५५ पर लिखे "**ओ३म् अयन्त इध्म०**" मन्त्र से समिधा काष्ठ से समिधाधान करके उन प्रज्वलित समिधा काष्ठों पर ५७-५८ पृष्ठ पर लिखे गये अनुसार आधारावाज्य-भागाहुतियां ४ और व्याहृति आहुतियां ४ कुल ८ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् मुख्य होम करे। वे होमाहुति मन्त्र—

**ओ३म् लेखा सन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते।**
**तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् स्वाहा[1] ॥**

**ओ३म् केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि० ॥**

**ओ३म् शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि० ॥**

**ओ३म् आरोकेषु च दंतेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि० ॥**

**ओ३म् ऊर्वोरुपस्थे जंघयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि० ॥**

**ओ३म् यानि कानि च घोराणि सर्वांगेषु तवाभवन्।**
**पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमम् स्वाहा ॥**

इन ६ मन्त्रों में से प्रत्येक से एक-एक अर्थात् कुल ६ आहुतियां दे। तदनन्तर ५८ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार ४ व्याहृति आहुतियां दे। तत्पश्चात् वर-वधू वहां से उठकर मंडप के बाहर उत्तर भाग में जायें तथा वर "**ध्रुवं पश्य**" इस प्रकार बोलकर वधू को ध्रुव तारा दिखाये। वधू ध्रुव तारा देखते ही शीघ्र "**पश्यामि**" इस प्रकार बोले तथा।

---

१. स्वाहा पद के पश्चात् "इदं कन्यायै" यह 'त्याग' संज्ञक पद प्रत्येक मन्त्र में लगायें तथा इस मन्त्र का उत्तरार्ध (तानि से स्वाहा तक) अगले चार मन्त्रों के उत्तरार्ध में बोलें।

**ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासं अमुष्य[1] - असौ ॥**

यह मन्त्र बोले । तत्पश्चात् "**अरुन्धति पश्य**" इस प्रकार बोलकर वर वधू को अरुन्धती तारा दिखाये और वधू पूर्ववत् "**पश्यामि**" बोले तथा,

**ओ३म् अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि (अमुष्य[1] - असौ) ॥**

यह मन्त्र बोले । अब वर वधू की ओर अवलोकन करके उसके मस्तक पर हाथ रखकर,

**ओ३म् ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा विश्वमिदं जगत् ।**
**ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पति कुले इयम् ॥**
**ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि । मह्यं त्वादात् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥**

यह मन्त्र बोले । तत्पश्चात् वर-वधू दोनों यज्ञकुंड के पश्चिम में पूर्वाभिमुख होकर कुंड के पास बैठें तथा पृष्ठ ५३ पर दिये मन्त्र बोल कर तीन आचमन करे । अब यज्ञीय काष्ठ से यज्ञकुंड में अग्नि जलाकर ५४-५५ वें पृष्ठों पर दर्शाये गये अनुसार घृत तथा स्थालीपाक[2] (भात) तैयार करके "ओ३म् अयन्त इध्म०" इस मन्त्र से

---

१. "अमुष्य" इस स्थान पर वर का नाम षष्ठ्यन्त (षष्ठी विभक्ति में) ले । (जैसे:—नारायण, हरि अथवा विष्णु नाम होने पर, नारायणस्य हरेः अथवा विष्णोः) तथा 'असौ' इस स्थान पर वधू अपना नाम प्रथमान्त (प्रथमा विभक्ति में) ले । इस प्रकार मन्त्र पूर्ण बोले ।

२. स्थालीपाक (भात) तैयार करने की विधि ५४-५५ वें पृष्ठ पर लिखी है । इसके अनुसार, "ओ३म् अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" "ओ३म् प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि, ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वा जुष्टं निर्वपामि" "ओ३म् अनुमतये त्वा जुष्टं निर्वपामि इन मन्त्रों से प्रथम चावल तैयार करे तदनन्तर इन मन्त्रों के अन्त में आये हुए 'निर्वपामि' पद के स्थान पर 'प्रोक्षामि' पद लगाकर इन मन्त्रों से चावल धोये तत्पश्चात् भात पकाये ।

समिधा काष्ठों द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर, उसमें ५७-५८ पृष्ठ पर लिखे गये अनुसार आधारावाज्यभागाहुतियां ४ तथा व्याहृति आहुतियां ४, कुल ८ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् तैयार किया हुआ स्थालीपाक (भात) एक पात्र में निकालकर, उस पर स्रुवा से घृत डालकर, उसमें से ५१ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार दाहिने हाथ से भात लेकर,

**ओ३म् अग्नये स्वाहा — इदमग्नये, इदन्न मम ॥**

**ओ३म् प्रजापतये स्वाहा — इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥**

**ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा — इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इद० ॥**

**ओ३म् अनुमतये स्वाहा — इदमनुमतये, इदन्न मम ॥**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक अर्थात् कुल चार स्थालीपाक की आहुतियां दे। अन्त में "**ओ३म् यदस्य कर्मणो**" यह 'स्विष्टकृद्' होमाहुति का पूर्णमन्त्र जो पृष्ठ ५८ पर लिखा हुआ है, बोलकर दूसरी एक स्थालीपाक की आहुति दे।

तत्पश्चात् पृष्ठ ५७ और ५८ पर लिखे अनुसार प्रत्येक पूर्ण मन्त्र से व्याहृति आहुतियां ४ तथा अष्टाज्याहुतियां ८ इस प्रकार १२ आज्याहुतिया दे। तदनन्तर शेष स्थालीपाक (शेष रहा हुआ भात) एक पात्र में निकालकर उस पर घृत सिञ्चन करे तथा उस पर दक्षिण हस्तांजली रखकर,

**ओ३म् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना।**
**बध्नामि सत्यग्रंथिना मनश्च हृदयं च ते ॥१॥**
**ओ३म् यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।**
**यदिदꣳहृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥२॥**
**ओ३म् अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ[1] ॥**

---

१. "असौ" पद के स्थान पर वधू का नाम सम्बोधन विभक्ति में रखें; जैसे:—यशोदा के स्थान पर यशोदे तथा वेदमति के स्थान वेदमते; गंगा—गंगे इत्यादि।

यह मन्त्र जपे। तत्पश्चात् वह हविष्य अन्न प्रथम थोड़ा वर भक्षण करके उच्छिष्ट (शेष) वधू को भक्षण करने के लिए दे। भक्षण करने के पश्चात् वधूवर मंडप में शुभ आसन पर एक साथ नियमानुसार पूर्वाभिमुख होकर बैठें और,

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र<br>
ओ३म् भूर्भुव स्व:। कया नश्चित्र०

१ २उ ३क २र १ २ ३ १र<br>
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो०

१ २उ ३क २र ३ २उ ३<br>
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः०

ये सामवेदोक्त तीन गान-मन्त्र पृष्ठ ६१ पर पूर्ण लिखे हुए हैं। इन्हें पूर्ण बोलकर दोनों वामदेव्य गान (पृष्ठ ६२) करें।

तत्पश्चात् पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे हुए मन्त्रों से ईश्वरोपासना करके क्षारलवण रहित यथोक्त भोजन वधूवर करें। अब पृष्ठ ६२ पर लिखे अनुसार पुरोहितादि सद्धार्मिक तथा कार्यार्थ एकत्र हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराये तथा योग्य आदर सत्कार करके उन्हें विदा करे। तदनन्तर १० घटिका रात्रि जाने के पश्चात वधूवर अधःस्थान में अर्थात् भूमि पर बिछौना बिछाकर शयन करें तथा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करें। इस प्रकार तीन रात्रि व्रतस्थ रहकर चौथे दिन गर्भाधान संस्कार करें। परन्तु चौथे दिन कोई अड़चन हो तो अधिक दिनों तक व्रतस्थ रहकर तत्पश्चात् गर्भाधान संस्कार करें। अर्थात् गर्भाधान संस्कार पर्यन्त वे व्रतस्थ रहें।

वर द्वारा वधू को लेकर स्वगृह (अपने घर) जाने की विधिः—

विवाह की उपर्युक्त समस्त क्रिया हो जाने के पश्चात् दूसरे अथवा तीसरे दिवस प्रातःकाल वर-पक्ष के लोग वधूवर को रथ में

बैठाकर बड़े सन्मान के साथ उसे अपने घर (वर के घर) ले जायें। इस समय वधू को रथ में अपने साथ दक्षिण ओर बठाते समय वर,

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥

ये मन्त्र बोले। तदन्तर वधूवर का रथ जब घर के निकट आ पहुंचे तब कुलीन, पुत्रवती, तथा सौभाग्यवती इस प्रकार की कुछ ब्राह्मण स्त्रियां वहां सामने आकर, वधू को उसका हाथ पकड़कर उसे वर के साथ नीचे उतारें तथा वर के साथ उसे मंडप ले जायें। मंडप द्वार पर आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों का अवलोकन करके,

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथ स्तं वि परेतन ॥

यह मन्त्र बोले। और वे आये हुए लोग । ओ३म् **सौभाग्यमस्तु** ओ३म् शुभं भवतु । इस प्रकार आशीर्वाद वचन कहें। इसके अनन्तर वर,

इह प्रियं प्रजयां ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वधा जिव्रीं विदथमा वदाथः ॥

यह मन्त्र बोलकर वधू को मंडप में ले जाये। तब वहां वध-वर पूर्व स्थापित यज्ञकुंड के पास जायें तथा वर,

**ओ३म् इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ॥**
**इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा निषीदतु ॥**

यह मन्त्र बोलकर यज्ञकुंड के पश्चिम भाग में पीठासन (पाटा) अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण में पूर्वाभिमुख बैठाये। तदनन्तर एक सौभाग्यवती तथा पुत्रवती स्त्री वधू की गोद में चौल संस्कार (मुंडन) न किया हुआ एक सुन्दर लड़का लाकर बैठाये। इस लड़के के हाथ में नालयुक्त (मृणालयुक्त) कमल पुष्प अथवा आम्रादि कोई फल दे। तत्पश्चात् उस लड़के को वधू की गोद से उठाकर वधू के के पास बैठाये। तदन्तर ५१ से ६० वें पृष्ठ तक लिखे अनुसार वधू-वर आचमन करके यज्ञकुंड में यथाविधि अग्नि की स्थापना करें और उसमें आहुति देने के लिए घृत तैयार करें। इसके अनन्तर समिधाधान करके उन जलते हुए समिधा काष्ठों पर **आधारवाज्याभागाहुतियां** ४; व्याहृति **आहुतियां** ४ और **अष्टाज्याहुतियां** ८ कुल १६ आज्याहुतियां दे। इसके अनन्तर प्रधान होम का प्रारम्भ करे। प्रधान होम की आहुतियों के मन्त्रः—

**ओ३म् इह धृतिः स्वाहा—इदमिह धृत्यं, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् इह स्वधृतिः स्वाहा—इदमिह स्वधृत्यै, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् इह रन्तिः स्वाहा—इदमिह रन्त्यै, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् इह रमस्व स्वाहा—इदमिह रमाय, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् मयि धृतिः स्वाहा—इदं मयि धृत्यै, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् मयि स्वधृतिः स्वाहा—इदं मयि स्वधृत्यं, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् मयि रमः स्वाहा—इदं मयि रमाय, इदन्न मम ॥**
**ओ३म् मयि रमस्व स्वाहा—इदं मयि रमाय, इदन्न मम ॥**

इन सूत्रोक्त मन्त्रों में से प्रत्येक से एक-एक इस प्रकार ८ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात—

ओ३म् आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥२॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥३॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४॥[1]

इन वेदमन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार कुल ४ आज्याहुतियां दे । तदनन्तर ५८ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार **स्विष्टकृद् होमाहुति** और **व्याहृति आहुतियां** ४ । इस प्रकार और ५ आज्याहुतियां अन्त में दे । तदनन्तर वधूवर,

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा संधाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥

यह मन्त्र बोलकर थोड़ा दधि प्राशन करें । इसके पश्चात् वर **अहं भो अभिवादयामि** यह वाक्य बोलकर माता पितादि वरिष्ठों को नमन करे । तत्पश्चात् वधू भी उसी भांति वन्दन करें । अब दोनों साथ-साथ शुभासन पर बैठकर पृ० ६१-६२पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान करें । तत्पश्चात् पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे हुए चतुर्वेदोक्त मन्त्रों

१. इसके आगे "स्वाहा" तथा "सूर्यासावित्र्या०" त्याग सर्वत्र लगायें-

से ईश्वरोपासना करे। इसके अनन्तर पुरोहितादि कार्यार्थ आए हुए सब लोगों से वर **ॐ स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु** इस प्रकार कहे। तथा वे लोग **ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति** इस प्रकार कहें। अन्त में कार्यकर्त्ता कार्यार्थ आये हुए लोगों का यथाचार आदर सत्कार करके उन्हें विदा करे। तत्पश्चात् वधू-वर क्षार आहार तथा विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ रहकर गर्भाधान संस्कार में लिखे अनुसार विवाह के चौथे दिन अथवा उस दिन यथोक्त ऋतुकाल न होने पर दूसरे यथोक्त ऋतुकाल के दिन गर्भाधान संस्कार विधि से गर्भस्थापना करे। यदि वर दूर देश से वहां विवाह के लिए आया हो तो वह गृह-प्रवेश तथा गर्भाधान-विधि वधू-ग्राम में अपने निवास स्थान=जनवासे में करने के पश्चात् वधू को अपने देश में ले जाये। अपने देश जाते हुए मार्ग में नौका में बैठना पड़े तो यह पूर्वार्ध मन्त्र बोलकर वधू को बैठाये।

**अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।**

तथा उतरते समय

**अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्।**

यह उत्तरार्ध मन्त्र बोलकर उतारे। मार्ग में जाते हुए माता, पिता, बन्धु आदि के वियोग से वधू खेदयुक्त होकर आंख में आंसू लाये, तो इस अवसर पर वर,

**जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।**
**वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥**

यह मन्त्र बोले। मार्ग में चतुष्पथ (चौराहा), नदी, व्याघ्र, चोरादि का भयंकर स्थान, ऊंची-नीच भूमि, बड़े-बड़े सघन वृक्ष अथवा श्मशान भूमि आये तो वर,

मा विदन्परिपंथिनो य आसीदंती दंपती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रांत्वरातयः ॥

यह मन्त्र बोले । यदि वधू-वर जिस रथ में बैठकर जा रहे हों, उस रथ का कोई भाग मार्ग में टूट जाय अथवा चोरादि से कोई उपद्रव हो अथवा अन्य कोई आकस्मिक संकट आ पड़े तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देखकर वहां ठहर जाय तथा साथ में ली हुई विवाह-होमाग्नि प्रज्वलित करके उसमें पृष्ठ ५८ पर लिखे अनुसार ४ व्याहृति मन्त्रों से ४ आज्याहुतियां दे तत्पश्चात् पृष्ठ ६१ पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान करे । तत्पश्चात् स्वदेश गमनार्थ अपने मार्ग पर पुनः चले ।

पति के घर आने के अनन्तर पति, सास ससुर-ननद, देवर, देवरानी जेठ, जेठानी इत्यादि कुटुम्बी जन वधू की पूजा अर्थात् उसका सत्कार सदैव प्रीति पूर्वक करें । उसे मधुर वाणी से और अन्न, वस्त्र आभूषणादि से सदा प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखें । पति उसके साथ सदा पत्नीव्रतादि का पालन करते हुए सद्धर्म-पूर्वक व्यवहार करे । इसी प्रकार पत्नी भी अपने पति के साथ पतिव्रतादि का पालन करते हुए सद्धर्मपूर्वक रहकर सदा उसकी आज्ञा तथा सेवा में तत्पर और उत्सुक रहे । मधुर वाणी, सन्तुष्ट मन तथा सदाचरण से पति को सदा प्रसन्न रखे । उसे अपने घर के कामों में तथा संसार व्यवहार में अत्यन्त दक्ष (चित्त लगाकर चलने वाली) होना चाहिए । शरीर और मन से सदा चपल तथा दक्ष रहनी चाहिए । कुटुंब के सभी लोगों के साथ यथायोग्य मर्यादा से तथा शान्त स्वभाव से रहकर उन्हें सदा प्रसन्न रखना चाहिए ।

**विवाह संस्कार-विधि समाप्त**

# गर्भाधान-संस्कार-विधि

**गर्भाधानः**—इस संसार में प्रमुख तथा श्रेष्ठ मानव प्राणी की उत्पत्ति सुदृढ़, सतेज तथा दीर्घायु होने के लिए यथाविधि तथा यथा-समय बीज स्थापन करना चाहिए। इसी का नाम गर्भाधान है। गर्भ = बीज और आधान = स्थापना।

**गर्भाधानकालः**—गर्भाधान के समय वधू १६ वर्ष से अधिक वय की तथा सज्ञान होनी चाहिए। वह प्रथम रजोदर्शन से तीन वर्षों तक (३६ बार) रजोदर्शन से शुद्ध हो चुकी होनी चाहिए। वर की आयु वधू की आयु से ड्योढ़ी से दो गुनी तक अधिक होनी चाहिए। चतुर्थी कर्म (गर्भाधान) विवाह के चौथे दिन करना चाहिए। परन्तु उस दिन यथोक्त ऋतुकाल न हो अथवा अन्य कोई अड़चन हो तो अन्य कोई ऋतुकाल का शुभ दिन देखकर, उस दिन गर्भाधान संस्कार करना चाहिए। स्त्रियों का यथोक्त ऋतुकाल अर्थात् गर्भा-धान करने का समय रजोदर्शन से १६ दिन तक की अवधि का होता है। इस ऋतुकाल के १६ दिनों में से प्रथम रजस्राव की निंद्य, दूषित रोगकारक तथा उष्ण ४ रातें तथा शरीरस्थ धातु को दूषित रखने वाली ११ वीं और १३ वीं रातें इस प्रकार कुल ६ रातें वर्ज्य करे। शेष १० रातों[1] को यथोक्त ऋतुकाल की समझना चाहिए। अर्थात् ५-६-७-८-९-१०-१२-१४-१५-१६ वीं रातें समझनी चाहिए।

---

१. इन दस रातों के दो भेद हैं। युग्म रात्रि तथा अयुग्म रात्रि। रजो-दर्शन से ६वीं, ८वीं, १०वीं, १२वीं, १४वीं, और १६वीं ये युग्म रात्रियां हैं। ५वीं, ७वीं, ९वीं, और १५वीं ये अयुग्म रात्रियां हैं। इन रातों की पहली दस घटिकाएं तथा अन्त की दस घटिकाएं रात छोड़कर मध्य की दस घटिकाओं

परन्तु इनमें अमावस्या अथवा पूर्णमासी हो, तो वह रात भी वर्ज्य करनी चाहिए। शेष ऋतुकाल की रातों में से किसी एक दिन गर्भाधान संस्कार करना चाहिए।

**विधिः**—उपर कहे गये अनुसार उचित गर्भाधान दिन की योजना करनी चाहिए। यह दिन आने तक विवाह संस्कार में कहे अनुसार यज्ञकुण्ड तथा वधू-वर को बैठने के लिए एक शुभ आसन ये दोनों तैयार होने चाहिए। पृष्ठ ४८-५१ पर लिखे अनुसार ईंधन द्रव्यादि सब होम सामग्री की तैयारी कर लेनी चाहिए। तत्पश्चात् सुनियोजित दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व वधू-वर शुद्ध अभ्यंग स्नान करके उत्तम वस्त्र परिधान करें। वे पूर्वोक्त शुभ आसन पर (वर की दक्षिण ओर वधू पूर्व की ओर मुंह करके बैठे। तदन्तर कार्यसिद्धि के लिए प्रारंभ में पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे हुए "अग्निमीळे०" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित सहित ईश्वरोपासना करे। कार्यार्थ आए हुए लोग भी इस उपासना पर एकाग्र चित्त होकर ध्यान दें।

---

में ऋतुदान करना चाहिए युग्म रात्रियों में यथोक्त समय ऋतुदान करने से पुत्रोत्पत्ति होती है तथा अयुग्म रातों में यथोक्त ऋतुदान करने से कन्या उत्पन्न होती है। क्योंकि ऋतुकाल की रातों के अतिरिक्त अन्य रातों अथवा दिन में अयोग्य समय में ऋतुदान करने से गर्भ नहीं रहता। प्रत्युत स्त्री-पुरुष का शरीरबल तथा बुद्धिबल घटकर वे निस्तेज, रोगी तथा अल्पायु होते हैं। ऐसे समय में यदि गर्भ रह गया और सन्तान उत्पन्न हुई तो वह सन्तान अशक्त, रोगी अतिमंद, नपुंसक और अल्पायु होती है। समवीर्य होने पर ऋतुदान करने से नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है। अतः अयोग्य काल अयोग्य दिन तथा अयोग्य समय में ऋतुदान करके, वीर्य की व्यर्थ हानि करके अपना जीवन भंग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार न अपनी शक्ति नष्ट करनी चाहिए और न अशक्त प्रजा उत्पन्न करनी चाहिए।

इस प्रकार ईश्वरोपासना के पश्चात् पृष्ठ ४९-५० पर कहे अनुसार ईंधन द्रव्य से अग्निकुण्ड में अग्नि तैयार करे। (यहां जो अग्नि ली जाय वह विशेषकर वधू के पिता के घर से लायी हुई विवाह-होमाग्नि होनी चाहिए)। तत्पश्चात् आहुति के लिए घी, आज्यास्थाली, स्रुवा, शुद्ध जल-पात्र, इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के पास तैयार करके रख दे। यज्ञकुण्ड के पास दक्षिण की ओर पीठासन पर पुरोहित की स्थापना कर वधू-वर कुण्ड के पश्चिम भाग में (वर की दक्षिण ओर वधू रहे) पूर्वाभिमुख बैठें। तत्पश्चात् पृ० ५३ पर कहे अनुसार प्रथम तीन आचमन करें। इसके अनन्तर वर यज्ञकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित कर आहुति के लिए घृत और स्थालीपाक[1] (भात), आहुति द्रव्य तैयार करे तथा आहुति देना प्रारम्भ करे। प्रथम ओ३म् अत्यन्त इध्म० (पृष्ठ ५५) मन्त्र से समिदाधान अर्थात् समिधा की आहुति दे। तदन्तर यज्ञकुण्ड के निकट जल सिंचन करे (पृष्ठ ५६) तत्पश्चात् यज्ञ की अग्नि में डाली गयी समिधाओं के जलने के अनन्तर प्रज्वलित समिधाओं पर प्रथम **आघारावाज्यभागाहुतियां ४ और व्याहृति आहुतियां ४,** कुल ८ आज्याहुतियां दे। (पृ० ५७-५८) इसके पश्चात् मुख्य[2] होमाहुतियों

---

१. यह स्थालीपाक (भात) तैयार करने की विधि ५४-५५ वें पृष्ठ पर लिखी हुई है। इसके अनुसार ओ३म् अग्नये पवमानाय त्वा जुष्ठं निर्वपामि। ओ३म् अग्नये पावकाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। ओ३म् अग्नये शुचये त्वा०। ओ३म् आदित्यै त्वा०। ओ३म् अग्नये स्विष्टकृते त्वा०। ओ३म् प्रजापतये त्वा०। इन मन्त्रों से प्रथम चावल तैयार करे और तत्पश्चात् इन मन्त्रों के अन्त में जो "निर्वपामि" पद है उसके स्थान पर "प्रोक्षामि" पद लगाकर उन मन्त्रों से चावल धोये। इसके अनन्तर पका कर भात बनाये।

२. ये मुख्य होम आहुतियां देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कंध का स्पर्श करे।

का प्रारम्भ करे। होमाहुतियों के मन्त्र—

**ओ३म् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः 'पापीलक्ष्मीस्तनू'स्तामस्या अपजहि स्वाहा—इदमग्नये, इद० ॥१॥**

**ओ३म् वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः 'पापीलक्ष्मीस्तनू'स्तामस्या अपजहि स्वाहा—इदं वायवे, इद० ॥२॥**

**ओ३म् चंद्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः 'पापीलक्ष्मीस्तनू'स्तामस्या अपजहि, स्वाहा—इदं चंद्राय, इदन्न० ॥३॥**

**ओ३म् सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः 'पापीलक्ष्मीस्तनू'स्तामस्या अपजहि स्वाहा—इदं सूर्याय इदन्न मम ॥४॥**

**ओ३म् अग्नि-वायु-चंद्र-सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि याऽस्याः 'पापीलक्ष्मीस्तनू'स्तामस्या अपहत स्वाहा—इदमग्नि, वायु-चंद्र-सूर्येभ्यः इदन्न मम ॥५॥**

इन पांच मन्त्रों की पंचिका में से प्रत्येक से एक-एक कुल पांच आज्याहुतियां प्रथम दे। तत्पश्चात् इन पांच मन्त्रों में आये हुए "**पापीलक्ष्मीस्तनू**" पद के स्थान पर "**पतिघ्नीतनू**" पद रखकर प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार दूसरी बार पांच अन्य आहुतियां दे। इसके अनन्तर इस "**पतिघ्नीतनू**" पद के स्थान पर "**अपुत्र्यातनू**" पद लगाकर पुनः एक-एक मन्त्र से तीसरी बार पांच आज्याहुतियां दे। तदनन्तर "**अपुत्र्यातनू**" पद के स्थान पर "**अपसव्यातनू**" यह चौथा पद रखकर उन्हीं मन्त्रों से पुनः एक-एक करके पांच आज्याहुतियां दे। इस प्रकार कुल बीस आज्याहुतियां दे। प्रत्येक आहुति

देने के पश्चात् स्रुवा में जो किंचित् घृत शेष रहे वह एक कांसे के जलपात्र में (कटोरे में) इकट्ठा करता जाय।

तत्पश्चात् भात की आहुतियां देने के लिए आहुतियां के प्रमाण में थोड़ा एक पात्र में निकालकर उसमें घृत, दूध, शक्कर इस प्रकार के पदार्थ मिलाकर इस भात की निम्नलिखित मन्त्रों से आहुतियां दे—

**ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा — इमग्नये पवमानाय, इद०।**

**ओं अग्नये पावकाय स्वाहा — इदमग्नये पावकाय, इद०।**

**ओं अग्नये शुचये स्वाहा — इदमग्नये शुचये, इदन्न मम।**

**ओं अदित्यै स्वाहा — इदमदित्यै, इदन्न मम।**

**ओं प्रजापतये स्वाहा — इदं प्रजापतये इदन्न मम।**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक तथा—"ओं यदस्य कर्मणो०" (पृष्ठ ५८) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से एक इस प्रकार कुल छह भात की आहुतियां दे। इसके पश्चात् अग्रलिखित १५ आज्याहुतियां दे—

ओं त्वं नो अग्ने० (पृ० ५९-६०) इत्यादि आज्याहुति मन्त्रों से ८;

"ओं भूरग्नये०" (पृ० ५८) इत्यादि व्याहृति मन्त्रों से ४; इस प्रकार कुल १२ आज्याहुतियां प्रथम दे। तत्पश्चात्

**ओं अयास्यग्नेर्वषट् कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवा गातु विदः स्वाहा—इदं देवेभ्यो गातुविदभ्यः, इदन्न मम॥**

**ओं प्रजापतये स्वाहा — इदं प्रजापतये इदन्न मम॥**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार कुल दो आज्याहुतियां दे। अन्त में स्विष्टकृत मन्त्र से एक आज्याहुति दे (पृ० ५८)।

इन पन्द्रह आहुतियों की प्रत्येक आहुति का भी स्रुवा में शेष रहा घृत पूर्व कहे अनुसार कांसे के उदक पात्र में इकट्ठा करे। यह एकत्र किया हुआ घृत लेकर वधू स्नान-गृह में जाय। वधू यह घी पैर के नख से सिर के बालों तक सभी अंगों में मलकर शुद्ध स्नान करे तथा शुद्ध वस्त्र पहनकर यज्ञकुण्ड के निकट आये। अब वधू-वर दोनों कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्यदर्शन करे तथा इस समय—

**ओ३म् आदित्यं भर्गं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपं। परिवृङ्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥**

**सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अंतरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥**

**ज्योषा सवितुर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति।**
**पाहिनो दिद्युतः पतन्त्याः॥**

**चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः।**
**चक्षुर्धाता दधातु नः॥**

**चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः।**
**सं चेदं वि च पश्येम॥**

**सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य।**
**वि पश्येम नृचक्षसः॥**

ये मन्त्र बोले।

इसके अनन्तर वधू **ओ३म् (अमुक[1]) गोत्रा, शुभदा (अमुक[2]) दा अहं भो अभिवादयामि ॥**

इस प्रकार बोलकर पति का वन्दन करे। इसी प्रकार पति-गोत्र के वरिष्ठ जनों तथा अन्य वरिष्ठ गृहस्थों को भी नमन करे।

इस प्रकार वधू, वर के गोत्र की होने के पश्चात् (अर्थात् वधू को पत्नित्व तथा वर को पतित्व प्राप्त होने के पश्चात्) पति-पत्नी शुभासन पर (पति की दाहिनी ओर पत्नी) की ओर मुख करके साथ साथ बैठें। अब पृष्ठ ६१ पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान करें। तत्पश्चात् यथोक्त[3] भोजन करे। पुरोहितादि सभी लोगों को सन्मानार्थ उतम भोजन करावे तथा आदर सत्कार करके उन्हें विदा करे।

---

१. इस स्थान पर वर के गोत्र अथवा कुल का नाम बोले।

२. इस स्थान पर वधू अपना नाम बोले।

३. उत्तम संतति उत्पन्न करने का मुख्य आधार माता पिता का उत्तम आहार ही वस्तुतः है। अतः आरोग्य, पुष्टि, बल तथा बुद्धि आदि बढ़ाने वाली सभी ओषधियों का (जैसे बच, आंबाहल्दी, हल्दी, चन्दन, मुरा, कुष्ट, जटामासी, मोरवेल, शिलाजीत, कपूर, नागरमोथा, भद्रमोथ इस प्रकार की ओषधियों का) चूर्ण समभाग लेकर गूलर काष्ठ के पात्र में गाय के दूध के साथ मिलाकर दही जमाये। तत्पश्चात् यह दही गूलर की लकड़ी की मथानी से मथकर उसमें से मक्खन निकाले। इस मक्खन का घी बनाकर उसमें केसर, कस्तूरी, जायफल, इलायची जैसे कुछ सुगन्धित द्रव्य मिलाये। इस घी में से प्रतिदिन प्रातःकाल थोड़ा घी लेकर दोनों नित्य होम करें। तत्पश्चात् दूध में चावल पकाकर खीर बनाकर अथवा दही या पानी में चावल पकाकर उसमें उपर्युक्त घी मिलाकर स्त्री-पुरुष दोनों खायें। इससे सुशील विद्वान्, दीर्घायु, सतेज, सुदृढ तथा नीरोग पुत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार तिल तथा चावल एकत्र पानी में पकाकर, पूर्वोक्त घी मिलाकर खाने से वैसी ही उत्तम

तदनन्तर सायंकाल संध्या होमादि सभी नित्य कर्म पूर्ण करके पति और पत्नी दोनों दश घटिका रात्रि के पश्चात् अपने एकान्त शयन गृह में जायें। शुभ शैया पर पत्नी उत्तराभिमुख तथा पति पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पति पत्नी के गर्भ स्थान का हाथ से स्पर्श करके,

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजा ॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मंथतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥

---

गुण की कन्या प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के उचित पदार्थ गर्भधारण करने वाली स्त्री और उसके पति के सेवन करने से उनकी सन्तति (प्रजा) शरीर बल तथा बुद्धि बल में सुदृढ होकर दीर्घायु होती है। पूर्वोक्त घृतयुक्त पदार्थ खाने का सामान्य नियम यह है कि ऋतुदान करने का पवित्र दिन शुक्ल पक्ष में निश्चित करके उससे पहले बारह दिन व्रतस्थ रहे और ऊपर लिखे अनुसार भोजन करे तथा मिताहारी रखकर ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे। तत्पश्चात् ऋतुदान विधि करे।

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥

इस मन्त्रों से पहले ईश्वर की आराधना करके तत्पश्चात् ऋतु-दान विधि करे। पति-पत्नी वीर्यदान होते समय प्रेमपूर्वक स्थिर हो जायें तथा मुखादि अवयव एक दूसरे के सामने सीधे रखकर ठीक ठीक अनुसन्धान देखकर पुरुष मुख से प्राण वायु का तथा स्त्री योनि द्वारा अपान वायु का आकर्षण करके वीर्य स्थिर करे। दोनों शारीरिक शान्ति होने के पश्चात् पृथक्-पृथक् होकर पांच-दस पल रुक कर स्नान करें। तत्पश्चात् पूर्ववत् बैठकर पति दाहिने हाथ से पत्नी के हृदय को स्पर्श करके,

**ओ३म् यत्ते सुशीमे हृदयं दिवि चंद्रमसि श्रितं। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतम् ॥**

इस मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् धातु-वर्धक और सुगन्ध-युक्त ओषधि ठंडे दूध के साथ यथारुचि खाकर, अपनी-अपनी अलग-अलग शैया में जाकर, दोनों निद्रा लें। इस प्रकार[1] ऋतुदान विधि सदैव ऋतुकाल में ही करे।

---

**१. परन्तु दो महीनों का ऋतुकाल, गर्भधारण न होकर व्यर्थ जाय, तो तीसरे मास में ऋतुकाल के समय पुष्य नक्षत्र युक्त ऋतुकाल के दिन प्रथम प्रातः काल भोजन के पहले बछड़े के समान रूप की गाय का दही दो माष (माशा) तथा भुने हुए जौ का आटा दो माष (माशा) लेकर दोनों को एकत्र करके**

गर्भिणी के हाथ में दे। अब उससे "किं पिबसि" इस प्रकार तीन बार पूछे। स्त्री पुंसवनं इस प्रकार तीन बार कहकर वह दही खाये। इसी प्रकार तीन बार पुनः पुनः करे तथा उस दिन रात्रि को भटकटैया नामक ओषधि पानी में बारीक पीसकर उसका रस कपड़े से छानकर वह रस पति पत्नी के दाहिने नासिका रन्ध्र में डाले इस अवसर पर पति,

ॐ इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

इस मन्त्र से जगन्नियंता परमात्मा की प्रार्थना करे तथा तत्पश्चात् यथोक्त ऋतुदान विधि करे।

गर्भाधान संस्कार-विधि समाप्त

# गृहस्थाश्रम संस्कार-विधि

**गृहाश्रमः**—ऐहिक तथा पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिए विवाह करके अपनी शक्ति के अनुसार परोपकार और नियमित समय पर यथाविधि ईश्वरोपासना करे तथा सद्धर्म का आचरण करते हुए जीवन यापन करे। धर्मयुक्त प्रजा उत्पन्न करे। इसी का नाम गृहस्थाश्रम है। स्त्री पुरुष को प्रातःकाल से रात को सोने तक नियमित क्रम से नित्य चलना चाहिए। यह विधि इस प्रकार है—

स्त्री-पुरुष प्रातःकाल चार घटिका रात रहे उठकर मन में प्रथम ईश्वर का चिन्तन करें। तत्पश्चात् उस दिन कौन-कौन तथा किस-किस प्रकार व्यावहारिक उद्योग किये जायें; शरीर रोगादि क्लेश से पीड़ित हो, तो औषध उपचार सम्बन्धी किस प्रकार उपाय किये जायें; स्वयं से स्व-शक्ति के अनुसार परोपकार किस प्रकार हो सकेंगे इत्यादि अपने व्यावहारिक तथा पारमार्थिक कर्त्तव्यों के विषय में विचार करके उनकी सिद्धि के लिए ईश्वरोपासना करनी चाहिए। ईश्वरोपासना सम्बन्धी मन्त्र,

**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना ।**
**प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥**

**प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।**
**आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥**

**भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳪ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।**
**नर्य प्रजां मे पाहि शᳪस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥३॥**

गृहा मा बिंभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रंतऽ एमंसि ।
ऊर्जं बिभ्रंहः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदंमानः ॥४॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुपं ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥५॥
उपंहूताऽ इह गावऽ उपंहूता अजावयः ।
अथोऽअन्नंस्य कीलालऽ उपंहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्र पंद्ये शिवं शग्मं शंय्योः शंय्योः ॥६॥

इस प्रकार ईश्वरोपासना करने के पश्चात् शौच कर्म से निवृत्त होकर उत्तम रीति से हस्त-पाद प्रक्षालन करे। दन्तधावन[1] तथा मुख प्रक्षालन करके पृष्ठ ५३ पर लिखे हुए मन्त्रों से तीन आचमन पूर्वाभिमुख होकर करे। तत्पश्चात् आधा या पाव कोस चलने का व्यायाम करके घर आये तथा सूर्योदय के पूर्व शुद्ध स्नान करे। शुद्ध धोये हुए वस्त्र पहनकर सन्धि[2] के समय सन्ध्योपासना अर्थात् सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना निम्नलिखित विधि से करे—

---

१. दन्तधावन के लिए नीचे लिखे हुए वृक्षों से दातुन लेनी चाहिए। गूलर, बिल्व, अपामार्ग, नीम, जामुन, सप्तपर्णी, कोहाटी, कदम्ब, करंज, बबूल, आक्क। इन वृक्षों की दातून दाँतों के लिए अत्यन्त लाभदायक होती है। इसके अतिरिक्त वैद्यक ग्रन्थों के आधार कोई मंजन बनाकर उससे दांत स्वच्छ करे तो भी उत्तम है।

२. रात्रि की समाप्ति और दिन का आरंभ प्रातःकाल की सन्धि तथा दिन की समाप्ति और रात्रि का आरंभ संध्याकाल की सन्धि। ये दो ही सन्धि काल है।

प्रथम शुद्ध स्नान तथा शुद्ध वस्त्र परिधान करने के पश्चात् एकांत स्थान में स्वच्छ आसन पर बैठकर,

**शन्नो॑ देवीर॒भिष्ट॑य॒ऽ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ ।**
**शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥**

यह मन्त्र एक वार बोलकर एक-एक करके तीन बार आचमन करे ।

इसके अनन्तर नीचे लिखे मन्त्रों से इन्द्रियों का स्पर्श करे ।

ओं **वाक् वाक्** । इस मन्त्र से मुख का ।

ओं **प्राणः प्राणः** । इस मन्त्र से नाक के छिद्रों का ।

ओं **चक्षुः चक्षुः** । इस मन्त्र से आंखों का ।

ओं **श्रोत्रं श्रोत्रम्** । इस मन्त्र से कानों का ।

ओं **नाभिः** । इस मन्त्र से नाभि का ।

ओं **हृदयम्** । इस मन्त्र से हृदय का ।

ओं **कण्ठः** । इस मन्त्र से कण्ठ का ।

ओं **शिरः** । इस मन्त्र से मस्तक का ।

ओं **बाहुभ्यां यशोबलम्** । इस मन्त्र से दोनों बाहुओं का ।

ओं **करतलकरपृष्ठे** । इस मन्त्र से दोनों हथेलियों का ।

इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र से प्रत्येक इन्द्रिय का स्पर्श करे । इसके अनन्तर निम्नलिखित मन्त्रों से मार्जन करे ।

**ॐ भूः पुनातु शिरसि ।** इस मन्त्र से शिर पर ।

**ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः ।** इस मन्त्र से आंखों पर ।

**ॐ स्वः पुनातु कण्ठे ।** इस मन्त्र से कण्ठ पर ।

**ॐ महः पुनातु हृदये ।** इस मन्त्र से हृदय पर ।

**ॐ जनः पुनातु नाभ्याम् ।** इस मन्त्र से नाभि पर ।

**ॐ तपः पुनातु पादयोः ।** इस मन्त्र से पैरों पर ।

**ॐ सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि ।** इस मन्त्र से पुनः मस्तक पर ।

**ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।** इस मन्त्र से सभी अंगों पर ।

इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र से प्रत्येक अवयव पर दाहिने हाथ की उंगलियों से अथवा दर्भ से जल छिड़के । इसके पश्चात् कम से कम तीन बार प्राणायाम करे। प्राणायाम की विधिः—नाभि के नीचे मूल इन्द्रिय में से अपान वायु बड़े धैर्य से नाभि में लाये । नाभि में से अपान वायु वहां के समान वायु के साथ हृदय में लाये । अब ये दो वायुएं तथा तीसरी हृदयस्थ प्राणवायु इन तीनों वायुओं को हृदय में से ऊपर चढ़ाकर नासिका द्वारा बाहर आकाश में बलपूर्वक फेंक दे । अर्थात् जैसे वमन करते समय मुंह से अन्न बाहर फेंका जाता है उसी भांति अन्दर की सब वायु बाहर फेंक दे । यह वायु अपनी सामर्थ्य के अनुसार जितना हो सके बाहर ही रोक रखे तथा,

**ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् ॥**

इस प्राणायाम मन्त्र का पाठ करे। जब चित्त में कुछ व्याकुलता होने लगे तब बाहर से वायु को धीरे-धीरे अन्दर ले'।

इस प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे।

इसके अनन्तर निम्नलिखित अघमर्षण मन्त्र (पापदूरीकरण मन्त्र) बोलने चाहिए:—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

इन मन्त्रों का पाठ करने के पश्चात् पूर्वोक्त **शन्नोदेवी०** मन्त्र से तीन बार पुनः आचमन करे। तत्पश्चात् परिक्रमण मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा का चिन्तन करे। ये मन्त्रः—

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम

---

१. इस प्रकार बीस बार नित्य प्राणायाम करने से प्राणवायु स्थिर होगी तथा उसके साथ चित्त भी स्थिर होगा। बुद्धि तथा ज्ञान की वृद्धि होकर कठिन विषय समझने में समर्थ होगा। शरीर में बल-पराक्रम की वृद्धि होगी। वीर्य स्थिर होगा। मानसिक शक्ति तीव्र तथा प्रफुल्लित रहकर स्मरण शक्ति बढ़ती है। अतः अधिक से अधिक बीस बार प्राणायाम करे तो अति उत्तम।

एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ॥२॥[1]

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः[1] ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।[1]

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः[1] ॥५॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः[1] ॥६॥

उपर्युक्त मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर नीचे और ऊपर (ऊर्ध्व) प्रत्येक दिशा का अनुक्रम से मन में चिन्तन करके परमात्मा की प्रार्थना करे। तत्पश्चात् उपस्थान मन्त्रों से परमात्मा की उपासना करे। वे मन्त्रः—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः ॥

चित्रन्देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

---

१. इन सब मन्त्रों के पूर्वार्ध भाग पर पहले मन्त्र के अनुसार ही तेभ्यो-नमो० इत्यादि उत्तरार्ध भाग के दो चरण लगाकर प्रत्येक मन्त्र पूर्ण बोलें ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ।
नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि ॥

इन सब मन्त्रों का पाठ करने के पश्चात् प्रणव तथा व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र से परमात्मा का ध्यान करे। वह मन्त्रः—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इस गायत्री मन्त्र से जितना हो सके उतना जप करने के पश्चात् अन्त में,

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शंकराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च ॥

इस मन्त्र से परमात्मा का अन्तःकरण पूर्वक नमस्कार करे। इस प्रकार सूर्योदय के पूर्व प्रातः सन्ध्योपासना विधि करे।

तत्पश्चात् तत्काल **अग्निहोत्र** विधि अग्रलिखित विधि से करे—

पृष्ठ ४८ लिखे अनुसार धातु अथवा मिट्टी का एक छोटा यज्ञ-कुण्ड तैयार करके रख दे। पृष्ठ ४९-५० पर लिखे अनुसार यज्ञीय वृक्षों का काष्ठ लेकर कुण्ड की माप के अनुसार उसके टुकड़े कर ले तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार घृत लेकर उसमें केसर कस्तूरी आदि द्रव्य डालकर घृत तैयार करे। तत्पश्चात् स्त्री-पुरुष[1] दोनों यज्ञकुण्ड के निकट पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर समिधाकाष्ठ से प्रथम अग्नि प्रज्वलित करे। तदनन्तर उसमें,

सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१॥
सूर्य्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥
ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥४॥[2]
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ॥५॥

---

१. स्त्री-पुरुष दोनों में से किसी कारण वश एक की अनुपस्थिति हो तो स्त्री अथवा पुरुष दोनों में से जो एक उपस्थित हो, वह ये आहुतियां दे।

२. ये चार मन्त्र संध्याकाल के होम में न प्रयुक्त किये जायें। इनके स्थान पर नीचे लिखे मन्त्रों का उपयोग किया जाय—

अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा ।
अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या ।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ॥

ये मन्त्र बोलकर प्रत्येक मन्त्र से एक-एक सिद्ध किये हुए घृत की आहुति दे।[1]

इस प्रकार स्नान, संध्या अग्निहोत्र विधि एक घटिका दिन चढ़ने तक पूर्ण करने के पश्चात् गृहस्थ अपने व्यावहारिक काम में तथा स्त्रियां भोजन बनाने आदि गृहकृत्य की व्यवस्था में लगें।

इसके पश्चात् भोजन तैयार होने पर **देवयज्ञ (वैश्वदेव)** करे। वह इस प्रकारः—

पूर्वोक्त भोजन तैयार की हुई अग्नि की स्थापना यज्ञकुण्ड से करके उसमें समिधाकाष्ठ रचकर अग्नि प्रदीप्त करे। उसमें,

**ओ३म् सूर्याय स्वाहा। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। ओ३म् सोमाय वनस्पतये स्वाहा। ओ३म् अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। ओ३म् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ओ३म् द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा। ओ३म् धन्वन्तरये स्वाहा। ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा॥**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र बोलकर घृत मिश्रित सिद्ध भात की एक-एक आहुति दे।

तत्पश्चात **भूतयज्ञ (बलिहरण)** करे। वह इस प्रकार—

**ओ३म् सूर्याय नमः। ओ३म् प्रजापतये नमः। ओ३म् सोमाय वनस्पतये नमः। ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां नमः। ओ३म् इन्द्राग्निभ्यां नमः। ओ३म् द्यावा पृथिवी-भ्यां नमः। ओ३म् धन्वन्तरये नमः। ओ३म् इन्द्राय नमः। ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओ३म् ब्रह्मणे नमः। ओ३म् अद्भ्यो नमः। ओ३म् ओषधिवन-स्पतिभ्यो नमः। ओ३म् गृहाय नमः। ओ३म् गृहदेवताभ्यो नमः। ओ३म् वास्तु-देवताभ्यो नमः।**

---

१. विशेष आहुति देने की सामर्थ्य हों तो गायत्री मन्त्र पर स्वाहा पद लगाकर उससे आहुतियां दे।

उपर्युक्त प्रत्येक मन्त्र से एक-एक बलि (थोड़ा थोड़ा भात) इस प्रकार एक के पश्चात् एक, एक पात्र में गोल आकार में रखे। तत्पश्चात्,

**ॐ इन्द्राय नमः। ॐ इन्द्र पुरुषेभ्यो नमः। ॐ यमाय नमः। ॐ यम पुरुषेभ्यो नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वरुण पुरुषेभ्यो नमः ॐ सोमाय नमः। ॐ सोम पुरुषेभ्यो नमः।**

इन आठ मन्त्रों में से प्रथम दो मन्त्रों से पूर्व में, दूसरे दो मन्त्रों से दक्षिण में तीसरे दो मन्त्रों से पश्चिम में और चौथे दो मन्त्रों से उत्तर दिशा में इस प्रकार दो दो बलि प्रत्येक दिशा में रखे। तदनन्तर,

**ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ ब्रह्म पुरुषेभ्यो नमः। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यो नमः। ॐ नक्तं चारिभ्यो नमः।**

उपर्युक्त प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार अन्य पांच बलि मध्यभाग में रखे। अन्त में **ॐ रक्षोभ्यो नमः** इस मन्त्र से उत्तर दिशा में एक तथा यज्ञोपवीत अपसव्य करके "**स्वधा पितृभ्यो नमः।**" इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में एक इस प्रकार दो बलि दे। इसके पश्चात् ये सब बलि भाग एकत्र करके किसी प्राणी को खिला दे।

तत्पश्चात् **नरयज्ञ** (अतिथि सत्कार) करे। वह इस प्रकार—

पूर्वोक्त भूतयज्ञ करने के पश्चात् गृहस्थ गृहद्वार पर ५-१० पलों तक किसी अतिथि के आने की राह देखे। इतने में कोई विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासी (परोपकारी सत्योपदेशक साधु सन्त), अथवा केवल निरपेक्ष भाव से लोककल्याण के लिए तथा देशसुधार के लिए श्रम करने वाला कोई सुपात्र[1] आये या अनाथ, लाचार, अन्धा,

---

**१. परन्तु कोई ठग ढोंगी झूठा हिंसक, पाखंडी इस प्रकार का कोई कुपात्र साधु सन्त का वेश धारण करके आये तो उसका सत्कार न करे। कुपात्र को दान मान देना व्यर्थ जाता है तथा दाता ईश्वर के यहां अपराधी होता है।**

पंगु इस प्रकार का कोई दुःखी मनुष्य आये तो उसे अत्यन्त प्रेम से आसन पर बैठाये। उसका अन्न-जल से सत्कार करके उसे प्रसन्न करे तत्पश्चात् गृहस्थ सह कुटुंब भोजन करे।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् पुनः अपने व्यावहारिक उद्योग में सायंकाल तक लगे। सूर्यास्त के पश्चात् घर में रहकर प्रातःकाल की भांति पुनः संध्या समय संध्योपासन तथा अग्निहोत्र विधि करे। तदनन्तर यथोक्त भोजन करके अपने काम में लगे। परन्तु १० घटिका रात्रि जाने के पश्चात् ईश्वर स्मरण करके सो जाये। इसे नित्य कर्त्तव्य समझना चाहिए।

**अब पक्षयज्ञ की विधिः**—पक्षयज्ञ पन्द्रह दिन के अन्तर से प्रति पूर्णिमा तथा अमावस्या को किया जाता है।

पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल नित्य की अग्निहोत्र की आहुति देने के पश्चात् नीचे लिखे हुए मन्त्रों के द्वारा विशेष आहुतियां दे—

**ओ३म् अग्नये स्वाहा। ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओ३म् विष्णवे स्वाहा॥**

इनमें से प्रत्येक मंत्र से एक-एक तथा पृष्ठ ५८ पर लिखे हुये स्विष्टकृत होमाहुति मंत्र से एक स्थालीपाक आहुति प्रथम दे। तत्पश्चात् अन्त में पृष्ठ ५८ पर लिखे अनुसार चार व्याहृति आज्याहुतियां दे तथा अमावस्या के दिन भी इसी प्रकार होम करे। परन्तु उसमें केवल इतना अन्तर है कि "ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा" मंत्र के स्थान पर "ओ३म् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा" मंत्र बोले। इस प्रकार पक्षयज्ञ-विधि समझनी चाहिए।

**वार्षिक धान्योत्पत्ति यज्ञविधिः**—यह यज्ञ प्रतिवर्ष नया अन्न उत्पन्न होने के पश्चात् किया जाता है। इसकी विधिः—नये अन्न की कटाई होने के पश्चात् पृष्ठ ६२ पर लिखे अनुसार शुभ दिन पर

खेत में[1] मण्डप बनाकर वहां यज्ञकुण्ड तैयार करे। तत्पश्चात् पृष्ठ ४२-४८ तक लिखे अनुसार सर्वप्रथम ईश्वरोपासना करके उसमें यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करे। तदनन्तर उसमें पृष्ठ ५७-६० तक लिखे अनुसार प्रथम आघारवाज्याभागाहुतियां ४, व्याहृति आहुतियां ४ और अष्टाज्याहुतियां ८ इस प्रकार १६ आहुतियां दे। इसके अनन्तर,

ओ३म् पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः।
तमिहेंद्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा ॥

ओ३म् यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्।
तन्मे सर्वꣳ समृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳ स्वाहा ॥

ओ३म् सम्पतिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा—इदमिंद्राय इदन्न मम ॥

ओ३म् यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताꣳ सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा—इदमिंद्रपत्न्यै, इदन्न मम ॥

ओ३म् अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतंद्रिता। खलामालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवाꣳ सा मे त्वनपायिनी भूयात्स्वाहा—इदं सीतायै० ॥

इन मन्त्रों में से प्रत्येक से एक-एक प्रधान होम की पांच आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् ओ३म् सीतायै स्वाहा। ओ३म् प्रजायै स्वाहा। ओ३म् शमायै स्वाहा। ओ३म्भूत्यै स्वाहा ॥ इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार कुल चार तथा स्विष्ट कृत होमाहुति मन्त्र से एक, इस प्रकार पांच स्थालीपाक आहुतियां दे। इसके पश्चात् अन्त में अष्टाज्या-

१. नगर निवासी जिनके पास खेत नहीं हो वे यह यज्ञ घर में करे।

हुतियां ८ तथा व्याहृति आहुतियां ४ कुल १२ आज्याहुतियां दे। यह विधि समाप्त होने पर पृष्ठ ६१-६२ पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान द्वारा ईश्वरोपासना करे।

**ब्रह्मयज्ञ तथा पितृयज्ञ विधिः**—प्रत्येक मनुष्य को इस जगत् में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसी को ब्रह्मयज्ञ तथा पितृयज्ञ कहते हैं। ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्योपासनादि कर्म निष्काम वृत्ति से नित्य करे तथा वेदादि सद्विद्या का पठन-पाठन निरपेक्ष बुद्धि से करे यही ब्रह्मयज्ञ है। पितृयज्ञ अर्थात् देव, ऋषि तथा पितर आदि लोगों का आदर सत्कार करके उनकी सेवा करे। अर्थात् उन्हें सदैव सन्तुष्ट रखे। देव का अर्थ यहां विद्वान्, निष्पक्ष और दिव्य कर्म तथा परोपकारी पुरुष है। ऋषि—वेदादि सद्विद्या का विवेचन सहित अध्ययन करने वाला पुरुष। पितर—अर्थात् माता-पितादि वरिष्ठ जन, वृद्ध पुरुष। जो सद्धार्मिक श्रेष्ठ, ज्ञानी, ईश्वर भक्त पुरुष हैं अर्थात् ये सभी पुरुष पूज्य होने से सदैव तथा सर्वत्र इनका सन्मान करे। प्रेमपूर्वक सेवा सत्कार करके जब तक वे जीवित रहें तब तक सदा प्रसन्न रखना ही पितर यज्ञ है। इस प्रकार सृष्टिक्रम के ये दो मुख्य यज्ञ हैं। जिनका प्रत्येक पुरुष प्रेमपूर्वक सदैव पालन करे।

इस प्रकार प्रत्येक गृहस्थ आचरण करके सद्धर्म पूर्वक तथा सुनीति से चले। सदैव जितेन्द्रिय तथा सुशिक्षित रहे। निर्वैर बुद्धि से सर्व प्राणिमात्र के साथ व्यवहार करे। परन्तु हिंसक, दुर्व्यसनी तथा कपटी इस प्रकार के दुष्ट पुरुषों से सदा दूर रहे।

**गृहस्थ-आश्रम संस्कारविधि समाप्त**

---

# पुंसवन-संस्कार-विधि

**पुंसवनः** —पुरुषत्व का अर्थात् गर्भ का योग्य धारण, संरक्षण और प्रसूत होने के पश्चात् उसकी प्राप्ति तथा शरीर में वीर्य उत्तमता पूर्वक एकत्र होकर उसमें सदैव स्थिरता दृढ़ता और नैरोग्य गुण विद्यमान रहें। इस उद्देश्य से की जाने वाली विधि ही पुंसवन है।

**कालः** —यह पुंसवन संस्कार गर्भ का स्पष्ट ज्ञान होने के पश्चात् अर्थात् गर्भधारण मास से दूसरे अथवा तीसरे महीने शुक्ल पक्ष में जिस दिन पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, अश्विनी, मृगशीर्ष, मूल, श्रवण, रेवती इस प्रकार कोई पुंलिङ्ग वाचक नक्षत्र युक्त चन्द्र हो उस दिन करे। इसका प्रारम्भ मध्याह्न काल के पूर्व अर्थात् प्रातःकाल में करे।

**विधिः**—ऊपर कहे गये अनुसार यथोक्त पुंसवन-संस्कार के दिन की पहले से योजना करे। वह दिन आने पर घर में पृष्ठ ४८-४९ पर कहे गये अनुसार एक यज्ञ कुण्ड तैयार करे तथा उसके निकट गर्भिणी स्त्री के बैठने के लिए एक शुभ आसन तैयार करे। पृष्ठ ४८-५१ पर लिखे अनुसार ईंधन द्रव्यादि सभी होम सामग्री की भी तैयारी कर रखे। निश्चित दिन पर प्रातःकाल सूर्योदय के समय गर्भिणी स्त्री तथा उसका पति शुद्ध स्नान करके उत्तम वस्त्र परिधान करे। तत्पश्चात् दोनों (पति के दक्षिण भाग में पत्नी रहे) पूर्वोक्त शुभासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। कार्य सिद्धि के लिए प्रारम्भ में (पृष्ठ ४२ ४८ तक) लिखे हुए **अग्निमीळे०** इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करे। इस अवसर पर कार्यार्थ आए हुये लोग भी इस उपासना पर एकाग्रचित्त होकर मन केन्द्रित करें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना होने के पश्चात् पृष्ठ ४९-५० पर कहे अनुसार ईंधन द्रव्य से यज्ञकुण्ड में अग्नि तैयार करके आहुतियों के लिए घृत आज्यस्थाली स्रुवा, शुद्धोदक, पात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के पास तैयार करके रख दें। तत्पश्चात् पुरोहित की स्थापना करके गर्भिणी स्त्री तथा उसका पति दोनों यज्ञकुण्ड के पास पूर्वाभिमुख होकर बैठें। पृष्ठ ५३ पर कहे अनुसार तीन आचमन करने के पश्चात् पति यज्ञकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके घृत तथा स्थालीपाक[1] सिद्ध (तैयार) करे (पृष्ठ ५४-५५) तत्पश्चात्—

"ओ३म् अयन्त इध्म" (पृष्ठ ५५) इस मन्त्र से समिदाधान करे। यज्ञ की अग्नि में वे समिधायें प्रज्वलित होने के पश्चात् उनपर प्रथम **आघारवाज्याभागाहुतियां** ४ (पृ० ५७) तथा **व्याहृति आहुतियां** ४ (पृष्ठ ५८) इस प्रकार कुल आठ **आज्याहुतियां** दे। तत्पश्चात् ओ३म् **प्रजापतये स्वाहा०** (पृ० ५९)। मन्त्र से एक और "**ओ३म् यदस्य कर्मणो०** (पृष्ठ ५८) मन्त्र से दूसरी एक स्थालीपाक आहुति दे। अन्त में **अष्टाज्याहुतियां** ८ (पृष्ठ ५९); **व्याहृति आहुतियां** ४ (पृ० ५८) इस प्रकार (कुल १२) आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् स्त्री पुरुष दोनों वहां से उठकर पूर्व स्थापित शुभासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठें। इसके अनन्तर पति पत्नी के पृष्ठ प्रदेश अर्थात् पीठ पीछे रहकर अपने दाहिने हाथ से प्रथम उसके दक्षिण स्कन्ध को स्पर्श करे तदन्तर वस्त्राच्छादित उसके नाभि प्रदेश का

---

१. यह स्थालीपाक (भात) तैयार करने की विधि पृष्ठ ५४ पर लिखी हुई है। उसके अनुसार ओ३म् प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ।। ओ३म् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं निर्वपामि ।। मन्त्रों से प्रथम चावल तैयार करके तत्पश्चात् इन्हीं मन्त्रों के अन्त में निर्वपामि पद के स्थान में प्रोक्षामि पद बोलकर उन्हीं मन्त्रों से चावल धोकर उनका भात तैयार करे।

**ओ३म् पुमाँ सौ मित्रावरुणौ पुमाँ सावश्विनावुभौ ।**
**पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥**

**ओ३म् पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ।**
**पुमाँ सं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम् ॥**

इन दो मन्त्रों से हस्त स्पर्श करे। तदनन्तर गर्भिणी स्त्री का जिस स्थान पर सूर्य की किरणें न आयें इस प्रकार के स्थान में बैठाकर उसकी नाक के दाहिने रंध्र में दूर्वा का रस बारीक कपड़े से छानकर डाले। इस समय

**ओ३म् आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।**
**आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥१॥**

**ओ३म् अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुंचतु मृत्युपाशात् ।**
**तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् ॥२॥**

यह मन्त्र बोले। तत्पश्चात् पत्नी के हृदय को स्पर्श करते हुए,

**ओ३म् यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ ।**
**मन्येऽहं मां तद्विद्वांसमाह पौत्रमघन्नियाम् ॥**

यह मन्त्र बोले। इसके अनन्तर पृष्ठ ६१-६२ पर लिखे अनुसार **वामदेव्य गान** करे तथा कार्यार्थ आये हुए लोगों को आदरपूर्वक विदा करे। रात्रि के समय वट वृक्ष के कोमल अंकुर अथवा सोमलता पीसकर उसका रस बारीक वस्त्र से छानकर गर्भिणी स्त्री के दाहिने नासिका रंध्र में डाले और उस समय,

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥**
**अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।**
**तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥२॥**

ये दो मन्त्र पति बोले। तत्पश्चात् गर्भिणी के गर्भ को स्पर्श करके,

**सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽ आत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत॥**

यह मन्त्र पति बोले। इस प्रकार यह पुंसवन-संस्कार करने के पश्चात् उस दिन से गर्भिणी स्त्री नियमित आचरण से चले। रात्रि की दस घटिका रात्रि जाने से अधिक न जगे। इसी प्रकार नियम से अधिक न सोये। अधिक बोले भी नहीं, न अधिक हंसे न अधिक रोये। मन को दुःख, शोक में न रखे। क्रोध न करे। तीव्र गति से न चले। भार न उठाये। विना समझे औषधि न खाये। खट्टा, नमकीन और तीखा न खाये। आहार हल्का हो तथा भूख से अधिक न खाये। सुगन्धित द्रव्य अंग में लगाये तथा गर्म जल से स्नान करे। मन सदा आनन्द से प्रफुल्लित रखे।

**पुंसवन-संस्कार-विधि समाप्त**

# सीमन्तोन्नयन संस्कार-विधिः

**सीमन्तोन्नयनः**—गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट कर और प्रफुल्लित तथा नीरोग रहकर गर्भ की स्थिति उत्कृष्ट रहे तथा उसकी दिन-दिन उन्नति होती जाय इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये ईश्वरोपासनादि नियमित विधि से करे। इस संस्कार का नाम सीमन्तोन्नयन है। सीमन्त - व्याप्ति, स्थिति। उन्नयन - उन्नति, उत्कृष्टता।

**कालः**—यह सीमान्तोन्नयन संस्कार गर्भधारण मास के चौथे, छठे अथवा आठवें महीने में शुक्ल पक्ष में जिस दिन पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, मूल, श्रवण, अश्विनी अथवा मृगशीर्ष इस प्रकार पुंलिंग वाचक नक्षत्र युक्त चन्द्र हो, उस दिन करे। इसका प्रारम्भ मध्याह्न काल के पहले प्रातःकाल में करना चाहिए।

**विधिः**—ऊपर कहे अनुसार यथोक्त सीमन्तोन्नयन के दिन की योजना करे। यह दिन अग्नि के पहले पृष्ठ ४८ में लिखे गये अनुसार एक यज्ञकुण्ड तैयार करे। उसके सन्निकट गर्भिणी स्त्री को बैठने के लिए एक शुभासन तैयार कर रखे। ईंधन इत्यादि सभी होम सामग्री की तैयारी कर रखे। निश्चित दिन आने पर उस दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय गर्भिणी स्त्री और उसका पति शुद्ध स्नान करके उत्तम वस्त्र परिधान करे। तत्पश्चात् दोनों (पति के दक्षिण भाग में पत्नी रहे) पूर्वोक्त शुभासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। कार्य सिद्धि के लिए प्रारम्भ में (पृष्ठ ४२ से ४८ तक) लिखे हुए **अग्निमीळे** इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करे। इस अवसर पर कार्यार्थ आये हुए लोग भी एकाग्रचित्त होकर उपासना की ओर अपना चित्त केन्द्रित करें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना होने जाने के पश्चात् पृष्ठ ४६-५० पर लिखे अनुसार ईंधन द्रव्य से यज्ञकुण्ड में अग्नि तैयार करने के पश्चात् आहुतियों के लिए घृत, समिधा, आज्यस्थाली, स्रुवा, शुद्धोदक पात्र, इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के पास तैयार करके रख दे। पुरोहित की स्थापना करने के पश्चात् गर्भिणी स्त्री और उसका पति दोनों यज्ञकुण्ड के निकट पूर्वाभिमुख होकर बैठें। पृष्ठ ५३ पर कहे अनुसार तीन आचमन करें। इसके अनन्तर पति यज्ञकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके घृत तथा स्थालीपाक[1] (भात) ये दोनों आहुतिद्रव्य प्रथम तैयार करे। (पृष्ठ ५४-५५)। इसके अनन्तर "**अयन्त इध्म०** (पृष्ठ ५५) मन्त्र से समिदाधान करे। तत्पश्चात् "**ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व**" (पृ० ५६) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की भुजाओं में तथा "**ओ३म् देवसवितः प्रसुव०**" (पूर्ण मन्त्र पृष्ठ ७५) मन्त्र से कुण्ड चारों ओर उदक (जल) सिंचन करे। यज्ञ में डाली गयी समिधाओं के प्रज्वलित होने पर उनपर प्रथम **आघारावाज्यभागाहुतियां** ४ और **व्याहृति आहुतियां** ४ कुल ८ आहुतियां दे। (पृष्ठ ५७-५८)। इसके अनन्तर प्रधान होम करे। इन होमाहुतियों के मन्त्रः—

**धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्।**
**वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवतः स्वाहा॥**[2]
**इदं धात्रे—इदन्न मम॥१॥**

---

१. इस संस्कार में "ओ३म् प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र बोल कर चावल और मूंग समभाग लेकर इन्हें कांड-पछोर कर स्वच्छ कर ले। तत्पश्चात् इन्हें "ओ३म् प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मन्त्र से धोकर इनकी खिचड़ी तैयार करे।

२. यहां लिखे हुए ७ मन्त्रों में प्रथम दो मन्त्रों के अन्त में "स्वाहा"

धाता प्रजानामुत राय ईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान ।
धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्र इद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा ॥
इदं धात्रे—इदन्न मम ॥२॥

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा
इदं राकायै—इदन्न मम ॥३॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा ॥
इदं राकायै—इदन्न मम ॥४॥

नेजमेष परा पत सुपुत्र पुनरा पत ।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्त्स्वाहा ॥५॥

यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमा दधे ।
एवं त गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥६॥

विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् ।
पुमांसं पुत्राना धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥७॥

---

पद के अन्त में) "इदं धात्रे इदन्न मम" पद, दूसरे दो मन्त्रों के अन्त में "इदं राकायै इदन्न मम" पद तथा शेष रहे अन्तिम तीन मन्त्रों के अन्त में "इदं विष्णवे, इदन्न मम" पद जिसकी "त्याग" संज्ञा है सर्वत्र लगाये ।

इन मन्त्रों में से प्रत्येक से एक-एक अर्थात् ७, और "**प्रजापते न त्व०**" (पृ० ५६) मन्त्र १ से कुल ८ **आज्याहुतियां** दे। तत्पश्चात् "**ॐ प्रजापतये०**" (पृ० ५६) मन्त्र से एक प्राजापत्य आहुति और "**ॐ यदस्य कर्मणो०**" (पृ० ५८) मन्त्र से १ स्विष्टकृत् आहुति इस प्रकार पूर्वोक्त खिचड़ी की दो आहुतियां दे। तत्पश्चात् ॐ त्वन्नो-अग्ने (पृ० ५६-६०) इत्यादि ८ मन्त्रों से **अष्टाज्याहुतियां** ८ और **ॐ भूरग्नये०** (पृ० ५८) इत्यादि चार मन्त्रों से **व्याहृति आहुतियां** ४ इस प्रकार बारह आज्याहुतियां दे।

तत्पश्चात् पति-पत्नी दोनों वहां से उठकर शुभासन पर पूर्वाभि-मुख बैठें। पति गर्भिणी पत्नी के पीछे रहकर,

**ॐ सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु।**
**दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१॥**
**मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽ आ जातमग्निम्।**
**कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥२॥**

**ओम् अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनो भव।**
**पर्णं वनस्पतेऽनु त्वाऽनु त्वा सूयताꣳ रयिः ॥३॥**
**ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।**
**तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥४॥**
**ॐ राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु।**
**उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥**[1]
**ॐ किं पत्मना सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरꣳ शत-दायमुक्थ्यम् ॥**

---

१. वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में इस मन्त्र का और इससे आगे के २ मन्त्रों का पाठ अशुद्ध है। वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में इस पाठ के दोष का कारण ऋ० द० की संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३२) में पृष्ठ २६ पर अशुद्ध छपना है। तत्पश्चात् संस्कारविधि में यह मन्त्र पाठ की अशुद्धि सं०

**ओ३म् यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।**
**ताभिर्नो अद्य सुमनाऽउपागहि सहस्रपोषꣳ सुभगे रराणा ॥**

ये मन्त्र बोलकर गूलर अथवा अर्जुन वृक्ष को कंघी से अथवा कुशतृण की कूंची से या साही प्राणी के काटों से सुगन्धित तेल लगाकर मस्तक के बाल ठीक करके स्वच्छ करे तथा जूड़ा बांधे । तदनन्तर वीणावादक तथा गायकों से गायन करने के लिए कहे । वे,

**ओ३म् सोम ऽएव नो राजे मा मानुषीः प्रजाः ।**
**अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ ॥**[1]

यह मन्त्र प्रारम्भ में गाकर तत्पश्चात् अन्य मनोरंजक गायन करें । गायन हो जाने के पश्चात् पूर्वोक्त आहुतियां देने से शेष रही खिचड़ी एक पात्र में निकालकर उसमें प्रतिविम्ब दिखाई पड़ने भरका घी मिलाये । तदनन्तर गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी की ओर देखे । देखते समय पति उससे **"किं पश्यसि"** इस प्रकार पूछे । वह उस स्त्री से **"प्रजां पश्यामि** कहलाये । तत्पश्चात् यह खिचड़ी गर्भिणी स्वयं खाये तथा खाते समय वृद्ध, कुलीन, सौभाग्यवती, पुत्रवती ब्राह्मण वर्ण की (गुण की) स्त्रियां,

**ओ३म् वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥**

इस प्रकार के शुभ, मांगलिक वचन बोलें । अन्त में कार्यार्थ आगत जनों को यथाचार सन्मानपूर्वक विदा करे ।

**सीमन्तोन्नयन संस्कार-विधि समाप्त ।**

---

२-१७ तक चलती रही । इस के विवेचन के लिये रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्कारविधि में हमारी टिप्पणी देखें । उक्त मन्त्रों का शुद्ध पाठ भी वहीं देखें । यु० मी०

**१. "असौ" इस स्थान पर यदि कोई निकट नदी हो तो उसका नाम सम्बोधन विभक्ति में बोले ।**

# जातकर्म संस्कार-विधि

**जातकर्म**—गर्भिणी स्त्री के प्रसव के समय अमंगल दूर होकर वह सुख से प्रसूता हो तथा सांगोपांग सन्तान की प्राप्ति हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा की यथाविधि आराधना करके जो नियमित विधि सम्पन्न की जाती है, उसका नाम जातकर्म है। जात=जन्म सम्बन्धी। कर्म=विधि।

**कालः**—गर्भिणी स्त्री को जब प्रसूति होने के कष्ट होने लगे अथवा प्रसूति के अन्य कोई चिह्न दृष्टिगोचर होने लगें, उस समय जातकर्म संस्कार का प्रारम्भ करना चाहिए।

**विधिः**—जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रसूति के चिह्न गर्भिणी स्त्री को प्रतीत होने लगे, तो प्रथम **सोष्यंती होम** करे—प्रसूति स्थान के बाहर कमरे के द्वार के निकट पृष्ठ ४८-४६ में कहे अनुसार एक यज्ञकुण्ड पहले से तैयार कर रखना चाहिए। जब प्रसूति के चिह्न प्रकट हों तब पति प्रारम्भ में (पृष्ठ ४२-४८ तक) कहे गये अनुसार ईश्वरोपासना करके उसमें यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करे। तत्पश्चात् आज्यस्थाली में घृत लेकर उसमें यथाशक्ति केसर, कस्तूरी आदि कुछ सुगन्धित द्रव्य मिलाकर सर्वप्रथम घृत तैयार करे। तदनन्तर "**ॐ अयन्त इध्म०**" (पृष्ठ ५५) मन्त्र से मुख्य रूप से चन्दन की समिधा से समिधाधान करे। इन प्रज्वलित समिधाओं पर पूर्वोक्त सुगन्धित द्रव्ययुक्त तैयार किये हुए घृत की प्रथम **आघारावाज्य-भागाहुतियां** ४ तथा **व्याहृति आहुतियां** ४ कुल ८ आज्याहुतियां दे (पृष्ठ ५७-५८)। पश्चात्,

ॐ या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति।
तां त्वा घृतस्य धारया यजे स॑ राधनीमहं।
स॑ राधन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा॥ इदं संराधन्यै -इदन्न मम॥

ॐ विपश्चित् पुच्छमभरत् तद्धाता पुनराहरत्।
परेहि त्वं विपश्चित् पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा॥
इदं धात्रे—इदन्न मम॥

इन दो मन्त्रों की अन्य दो आज्याहुतियां दे। अन्त में पृष्ठ ६१-६२ पर लिखे अनुसार **वामदेव्यगान** करके परमात्मा की आराधना करे। इस प्रकार **सोष्यन्ती होम** हो जाने के पश्चात्,

ओम् एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह॥

इस मन्त्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर थोड़ा जल छिड़के। तदनन्तर,

ॐ अवैतु पृश्नि शेवल॑ शुने जराय्वत्तवे।
नैव मा॑सेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम्॥

इस मन्त्र का जप करे। गर्भिणी स्त्री के प्रसूत होने के पश्चात् बालक के शरीर पर से सम्पूर्ण मल निकाल कर केवल बालिश्त भर नाल रखकर शेष नाल का छेदन करे। इसके अनन्तर बालक को ओषधियुक्त किञ्चित् गर्म जल से स्नान कराकर तथा नरम वस्त्र से उसका शरीर हल्के-हल्के हाथ से पोंछकर नरम बिछौने पर सुला दे। तत्पश्चात् घृत तथा मधु एकत्र करके सोने की सलाई से अथवा अन्य सोने की वस्तु द्वारा बालक के मुख में,

ओ३म् प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनां।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥

ओ३म् मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते।
मेधां ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजौ ॥

ओ३म् भूस्त्वयि दधामि। ओ३म् भुवस्त्वयि दधामि। ओ३म् स्वस्त्वयि दधामि।
ओ३म् भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि॥

ओ३म् सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषᳬं स्वाहा ॥

ये मन्त्र बोलकर डाले अर्थात् उसकी जीभ पर चटाये। इसके अनन्तर व्रीहि (चावल) तथा यव (जव) को पानी में पीसकर तथा यह रस कपड़े से छानकर एक पात्र में भरे। अब हाथ का अंगूठा तथा अनामिका ये दो उंगलियां इकट्ठी करके उनसे यह रस लेकर बालक के मुख में,

ओ३म् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्।

यह मन्त्र बोलकर बूंद गिराये[1] तत्पश्चात् बालक का पिता प्रथम बालक के दक्षिण कान के समीप मुख करके (धरके)

ओ३म् मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।
मेधान्ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजौ ॥

ओ३म् अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषायुष्मन्तं करोमि।

ओ३म् सोमऽ आयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन०।[1]

---

१. यह मात्र गोभिलीय सूत्र का ही मत है, अन्य का नहीं है।

१. "त्वायुषायुष्मन्तं करोमि" ये पद जैसे पहले मन्त्र में लगे हुए हैं वैसे ही नीचे के प्रत्येक मन्त्र पर लगावें।

ओ३म् ब्रह्म आयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत् तेन० ।

ओ३म् देवाऽ आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ।

ओ३म् ऋषयऽ आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ।

ओ३म् पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ।

ओ३म् यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन० ।

ओ३म् समुद्रऽ आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥

ये मन्त्र जपे । तत्पश्चात् बालक के बायें कान के आगे मुख करके (धरके) ये मन्त्र दूसरी बार जपे । इसके अनन्तर बालक का पिता दोनों कंधों पर कोमल हाथ से स्पर्श करके,

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥१॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥२॥

ओ३म् अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव ।
वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ॥३॥

ये मन्त्र बोले । तत्पश्चात्,

ओ३म् त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽ अस्तु त्र्यायुषम् ॥

इस मन्त्र का तीन बार जप करे । इसके अनन्तर जिस स्थान पर बालक का जन्म हुआ हो उस स्थान पर,

**ओ३म् वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितं ।**
**वेदाहं तन्मा तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ।**

इस मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् प्रसूता स्त्री के कल्याणार्थ,

**ओ३म् इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः ।**
**सा त्वं वीरवती भव यास्मान् वीरवतोकरत् ।**

इस मन्त्र से ईश्वर प्रार्थना करे। अब प्रसूता स्त्री के दोनों स्तनों का जल से प्रक्षालन कराकर,

**ओ३म् इमꣳ स्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये ।**
**उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥**

यह मन्त्र बोलकर दक्षिण स्तन बालक को प्रथम पिलाये तथा,

**ओ३म् यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।**
**येन विश्वा पुष्यसि वीर्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥**

यह मन्त्र बोलकर बायां स्तन पिलाये। तत्पश्चात्,

**ओ३म् आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ ।**
**एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सपुत्रिकायां जाग्रथ ॥**

इस मन्त्र से एक जल पूर्ण कलश तैयार करके प्रसूता स्त्री के बिछौने के निकट उसके मस्तक की ओर रखे। यह दस रातों तक वहां रहने दे। प्रसूता स्त्री वहां दस दिनों तक रहे। इस अवधि में नित्य प्रातः सायं दोनों सन्धिकालों में

**ओ३म् शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः । मलिम्लुचो द्रोणा-**

सश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदं शण्डा मर्का[1] उपपवीराय शौण्डिकेयाय उलूखलाय मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितेभ्यश्च[2] —इदन्न मम ॥१॥

ओ३म् आलिषन्ननिमिषः[3] किंवदन्त उपश्रुतिः । हर्यक्षः कुम्भी शत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदमालिषन्ननिमिषाय किंवद्भ्य[4] उपश्रुत हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय चवनाय च—इदन्न मम ॥२॥

इन दो मन्त्रों से पूर्वोक्त यज्ञकुण्ड में भात तथा सरसों मिलाकर उसकी दो-दो आहुतियां दे ।

जातकर्म संस्कार-विधि समाप्त ।

---

१. यहां शुद्ध पाठ 'इदं शण्डामर्काभ्याम्' होना चाहिये ।

२. यहां मुद्रित पाठ अशुद्ध है । शुद्ध पाठ 'उलूखलाय मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यश्च्यवनाय —इदन्न मम' होना चाहिये । यु० मी०

३. 'आलिखन्ननिमिषः' शुद्ध पाठ होना चाहिये । यु० मी०

४. 'इदमालिखतेऽनिमिषाय किंवदद्भ्य' ऐसा शुद्ध पाठ होना चाहिए । यु० मी०

# नामकरण संस्कार-विधि

**नामकरणः**—उत्पन्न हुए बालक का व्यक्ति दर्शक सुन्दर गम्भीर तथा सरल नाम रखे। उस नाम के अनुसार बालक में बुद्धि तथा शरीर बल की वृद्धि होकर वह विद्यादि सद्गुणों को प्राप्त हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए परमात्मा की उपासना यथाविधि करके इस संस्कार की योजना करे। इसका नाम नामकरण विधि है। नाम=नाम सम्बन्धी, करण=क्रिया अर्थात्, विधि।

**कालः**—बालक के जन्म-दिवस से दस रातें छोड़कर ११ वें दिन अथवा १०१ वें दिन या दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में अर्थात् जन्म-दिवस के दिन नामकरण संस्कार प्रातःकाल करे।

**विधिः**—ऊपर कहे गये अनुसार यथोक्त दिन की योजना करके पहले से ही पृष्ठ ४८-४९ में कहे गये अनुसार, एक यज्ञकुण्ड बनाकर तैयार कर रखे। उसकी उत्तर या दक्षिण भुजा के निकट बालक सहित माता के बैठने के लिए एक शुभासन भी तैयार कर रखे। ईंधन द्रव्यादि सब होम सामग्री की भी तैयारी कर रखे। निश्चित दिन पर कार्यकर्त्ता पिता प्रातःकाल शुद्ध स्नान करके, उत्तम वस्त्र परिधान करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त शुभासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। कार्यसिद्धि के लिए प्रारम्भ में (पृष्ठ ४२-४८ तक) लिखे हुए "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करे। कार्यार्थ आये हुए लोग उसपर एकाग्रचित हो कर ध्यान दें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना हो जाने के पश्चात् पृष्ठ ५१-५२ में कहे अनुसार यज्ञकुण्ड में अग्नि तैयार करे। आहुति देने के लिए घृत, समिधा, आज्यस्थाली, स्रुवा, शुद्धोदक पात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड

के निकट तैयार करके रख दे। पुरोहित की स्थापना करके कार्यकर्त्ता यज्ञकुण्ड के निकट पूर्वाभिमुख बैठे। पृष्ठ ५३ पर कहे अनुसार तीन आचमन करे। इसके अनन्तर पिता यज्ञकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके घृत तैयार करे (पृ० ५४), तत्पश्चात् "**ॐ अयन्त इध्म०**" (पृ० ५५) मन्त्र से समिधाधान करे। यज्ञकुण्ड में डाली गयी समिधाओं के प्रज्वलित होने पर ४ **आघारावाज्यभागाहुतियां ४ व्याहृति आहुतियां** (पृ० ५७-५८) और ८ **अष्टाज्याहुतियां** (पृ० ५९-६०) कुल १६ आज्याहुतियां दे।" तत्पश्चात् माता बालक को शुद्ध स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनाये। उसे हाथ में लेकर माता कुण्ड के निकट पिता के दक्षिण भाग में आये। अब बालक का मस्तक उत्तर दिशा की ओर रखकर पिता के हाथ में दे। स्त्री पिता के पीछे से होकर उत्तर भाग में जाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। तत्पश्चात् पिता वह बालक पुनः माता को दे। इसके अनन्तर प्रधान होम करे। प्रथम **ॐ प्रजापतये स्वाहा**" इस मन्त्र से एक आज्याहुति दे। तदनन्तर जिस तिथि तथा जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि का नाम देकर १, उस नक्षत्र के नाम से १, उस तिथि के देवता के नाम से, १ तथा उस नक्षत्र के देवता के नाम से, १, इस प्रकार चार आज्याहुतियां दे[1]।

इसके अनन्तर १ **स्विष्टकृत्** आहुति तथा ४ **व्याहृति आहुतियां** (पृष्ठ ५८) ये अन्य ५ **आज्याहुतियां** दे। तत्पश्चात् माता बालक को

---

**१. प्रतिपदा में जन्म हो तो** प्रतिपदे स्वाहा **बोलकर तिथि की आहुति दे। प्रतिपदा की देवता** ब्रह्मन् है, **अतः उसकी** आहुति ब्रह्मणे स्वाहा **इस प्रकार बोलकर दे। पुष्य नक्षत्र में जन्म हो, तो उस नक्षत्र की आहुति** पुष्याय स्वाहा **इस प्रकार बोलकर दे। पुष्य का देवता** बृहस्पति है, **इसकी आहुति** बृहस्पतये स्वाहा **इस प्रकार बोलकर दे। इस प्रकार जिस तिथि**

लेकर शुभ आसन पर बैठे तथा पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलती प्राणवायु को हाथ से स्पर्श करके,

**ओ३म् कोऽसि कतमोऽस्येषोस्यमृतोसि ।**
**आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥**

इस मन्त्र के अन्त में "असौ" पद के पश्चात् बालक निश्चित[1] नाम रखकर यह मन्त्र पूर्ण बोले। तत्पश्चात् इसी प्रकार निम्न

---

नक्षत्र में जन्म हो उस तिथि तथा नक्षत्र के नाम पर तथा उस देवता के नाम पर चतुर्थी का प्रत्यय लगाकर उस पर स्वाहा पद बढ़ाकर बोल कर उसकी आहुति देवें। तिथियों, नक्षत्रों तथा उनके देवताओं के नाम निम्नलिखित प्रमाण जानें—(१=प्रतिपदा। २=द्वितीया इत्यादि)

तिथि-देवता—१. ब्रह्मन्। २. त्वष्टृ। ३. विष्णु। ४. यम। ५. सोम। ६. कुमार। ७. मुनि। ८. वसु। ९. पिशाच। १०. धर्म। ११. रुद्र। १२. वायु। १३. मन्मथ। १४. यक्ष। १५. विश्वेदेवाः। ३०. पितरः। नक्षत्र देवता:—अश्विनी-अश्वि। भरणी-यम। कृतिका-अग्नि। रोहिणी-प्रजापति मृगशीर्ष-सोम। आर्द्रा-रुद्र। पुनर्वसु-अदिति। पुष्य-बृहस्पति। आश्लेषा-सर्प। मघा-पितृ। पूर्वाफाल्गुनी-भग। उत्तरा फाल्गुनी-अर्यमन्। हस्त-सवितृ। चित्र त्वष्टृ। स्वाति-वायु। विशाखा-इंद्राग्नि। अनुराधा-मित्र। ज्येष्ठा-इंद्र। मूल-निऋति। पूर्वाषाढा-अप्। उत्तराषाढा-विश्वेदेव। श्रवण-विष्णु। धनिष्ठा-वसु। शततारका-वरुण। पूर्वा भाद्रपदा-अजपाद। उत्तरा भाद्रपदा-अहिर्बुध्न्य। रेवती-पूषाणः।

१. बालक का जो नाम रखना हो वह निम्नलिखित नियमों के अनुसार हो:—

नाम का आदि अक्षर—घोष (मृदुवर्ण) अर्थात् ककारादि पंचवर्ग के प्रथम के प्रथम दो-दो अक्षर छोड़कर शेष ग, घ, ङ,ज,झ, ञ, ड, ढ,ण,द,ध, न,ब, भ,म और य,र,ल,व,ह इन वीस वर्णों में से होवें। नाम का मध्य अक्षर-य, र, ल, व

लिखित मन्त्र के अन्तिम "असौ" सर्वनाम के स्थान पर बालक का नाम रखकर वह दूसरा मन्त्र भी पूर्ण बोले। वे मन्त्रः—

**ओ३म् स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ॥**

इस प्रकार बालक का नाम रखकर कार्यार्थ आये हुए लोगों को बताकर वह नाम प्रसिद्ध करे। तत्पश्चात् पृ० २०-२२ पर लिखे अनुसार **वामदेव्यगान** करे। अन्त में आये हुए लोगों को यथाचार आदर सत्कारपूर्वक विदा करे।

**नामकरण संस्कार-विधि समाप्त**

---

इन चार वर्णों में से कोई होना चाहिए और अन्त्य अक्षर दीर्घ अथवा विसर्गयुक्त होना चाहिए। इस प्रकार का नाम दो या चार अक्षर का होना चाहिए। उदाहरणः--भद्रः, देवः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः, बलिध्वंशी विश्वंभरः, इत्यादि। स्त्री के नाम के लिए यही नियम होने पर भी इतना अन्तर है कि आदि अक्षर युग्म (संयुक्ताक्षर) न होना चाहिए। जैसे—त्र्यंबिका प्रियंवदा इत्यादि। स्त्री के नाम का अन्त्य अक्षर दीर्घ होना चाहिए। जैसे--वसुदा, यशोदा, भागीरथी, मधुरा, वेदमती, नर्मदा इत्यादि। पुरुष के नाम के प्रारम्भ में अथवा अन्यत्र संयुक्त अक्षर हो सकते हैं। जैसे—देवस्वामी, व्यंकटेशः, गोविन्दः, दयानन्द, विष्णुः[1] आत्मानन्दः इत्यादि। और दूसरा भेद यह है कि पुरुष का नाम तद्धितान्त (वृद्धि हुआ) न होना चाहिए। जैसे—ऐंद्रः, औपमन्युः इत्यादि। परन्तु स्त्री का नाम तद्धितान्त हो सकता है। जैसेः—गान्धारी, दैवदत्ती, द्रौपदी इत्यादि।

१. इसके आगे गुजराती अनुवाद में 'आत्मानन्द' नाम अधिक है। यु० मी०

# निष्क्रमण संस्कार-विधि

**निष्क्रमण:**—जन्म होने के पश्चात् अल्प वय के कोमल शरीर बालक को घर के बाहर शुद्ध वायु में प्रथम स्वच्छ तथा सुन्दर स्थान पर यथाविधि प्रथम घुमाने के लिए निकालना ही **निष्क्रमण है।** निः=बाहर, क्रमण=गमन।

**कालः**—निष्क्रमण संस्कार के काल के विषय में दो भेद हैं। एक प्रकार यह है कि बालक का जन्म होने के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के दिन यह संस्कार करना चाहिए। दूसरा प्रकार यह है कि बालक के जन्म के पश्चात् चौथे महीने में उसकी जन्म-तिथि के दिन यह संस्कार करे।

**विधिः**—पहले प्रकार के अनुसार काल की योजना की हो, तो उस दिन बालक को प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् प्रथम शुद्ध जल से स्नान कराये। शुद्ध तथा सुन्दर वस्त्र परिधान कराये। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र आदि नित्यकर्म करके पृष्ठ ४२-४८ तक कहे अनुसार पूर्वाभिमुख बैठकर **अग्निमीळे॰** इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से बालक को गोद में रखकर ईश्वरोपासना करे। समस्त दिन उत्साहपूर्वक व्यतीत करने के पश्चात् संध्या समय पुनः संध्याहोमादि नित्यकर्म करने के अनन्तर पिता घर के बाहर खुले स्वच्छ और सुन्दर स्थान में पश्चिमाभिमुख होकर चन्द्रमा के सम्मुख खड़े होकर ईश्वरोपासना करे। इतने में पत्नी बालक को सुन्दर तथा शुद्ध वस्त्र पहनाकर उसे अपने हाथों में लेकर उस स्थान पर आये। वह पति की दाहिनी ओर से पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर ओर रहे इस प्रकार उसे चित अवस्था में पति के हाथ में दे। तत्पश्चात्

पत्नी पति की दाहिनी ओर से उसके पीछे से घूमकर उसकी बायीं ओर आकर उसके साथ पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे। तत्पश्चात् बालक का पिता,

**ओं यत्ते सुसीमे हृदयँ हितमन्तः प्रजापतौ।**
**वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥१॥**

**ओं यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितं।**
**वेदामृतस्याह नाम माहं पौत्रमघँ रिषम् ॥२॥**

**ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै।**
**यथा यन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥३॥**

इन मन्त्रों से परमात्मा की आराधना करके बालक को चन्द्र-दर्शन कराये। इसके अनन्तर तुरन्त बालक को जिस प्रकार लिया था उसी भांति पुनः माता को दे। अब अञ्जलि में जल लेकर चन्द्र के सन्मुख ही खड़े रहकर,

**ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयँ श्रितम्।**
**तदहं विद्वाँस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघँरुदम् ॥**

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करके वह जल भूमि पर डाल दे। पश्चात् यही मन्त्र पुनः दो बार मन में बोलकर बालक को आशीर्वाद दे। तत्पश्चात् माता पिता बालक को लेकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर पृष्ठ ६१-६२ पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान करें। इसके अनन्तर बालक को लेकर इधर-उधर स्वच्छ तथा सुन्दर स्थान में घूमे।

**दूसरे भेद के अनुसार** इस संस्कार की काल योजना की हो तो उस दिन भी ऊपर कहे अनुसार कार्यकर्त्ता बालक को शुद्ध स्नान

तथा उत्तम वस्त्र परिधान कराकर अपना नित्यकर्म संध्योपासन अग्निहोत्र आदि पूर्ण करे तत्पश्चात् पृष्ठ ४२-४८ तक लिखे अनुसार "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से, बालक को लेकर ईश्वरोपासना करे। इसके पश्चात् बालक को लेकर घर के बाहर खुली वायु में स्वच्छ तथा सुन्दर स्थान पर आये। अब पूर्वाभिमुख सूर्य के सन्मुख खड़े रहकर "**तच्चक्षुर्देवहितं०**" (पृष्ठ ७४) **इस मन्त्र से** ईश्वर-आराधना करके बालक को सूर्यदर्शन कराये। इसके अनन्तर बालक को लेकर उत्साह पूर्वक स्वच्छ स्थान तथा स्वच्छ वायु में थोड़ा घूमे। तत्पश्चात् इस दिन से प्रतिदिन बालक को बाहर स्वच्छ वायु तथा सुन्दर स्थान में प्रात काल घुमाने ले जाये। इससे बालक का शरीर सुदृढ़ होगा और वह नीरोग रहेगा।

**निष्क्रमण संस्कार-विधि समाप्त।**

---

# अन्नप्राशन संस्कार-विधि

**अन्नप्राशन**—जन्मे हुए बालक की वय अन्न खाने योग्य होने अर्थात् उसमें अन्न पाचन शक्ति आने पर उत्तम दिवस निश्चित करके हल्का, पक्व तथा हितकारक अन्न यथाविधि उसे प्रथम खिलाना प्रारम्भ करे, यही अन्नप्राशन है। अन्न=खाने की वस्तु-धान्य; प्राशन खाना; अर्थात् अन्नभक्षण विधि।

**कालः**—बालक उत्पन्न होने के छठे महीने हल्का अन्न खाने तथा पाचन करने योग्य होता है। अतः छठे महीने में शुक्ल पक्ष के अमुक उत्तम तथा शुभ दिन की योजना करके मध्याह्न काल के पूर्व अर्थात् प्रातःकाल में अन्नप्राशन विधि करके बालक को अन्न देना प्रारम्भ करे।

**विधिः**—ऊपर कहे अनुसार यथोक्त अन्नप्राशन संस्कार के दिवस की प्रथम योजना करके वह दिन आने के पूर्व पृष्ठ ४८-४९ में कहे गये अनुसार एक यज्ञकुण्ड बनाकर तैयार करे। उसके निकट उत्तर या दक्षिण ओर एक शुभासन तैयार रखे। ईंधन द्रव्यादि सभी होम सामग्री भी पहले ही तैयार कर रखे। निश्चित दिन आने पर उस दिन प्रातःकाल बालक को शुद्ध स्नान कराकर, शुद्ध उत्तम वस्त्र परिधान कराये। उसे लेकर पूर्वोक्त शुभ आसन पर माता-पिता पूर्वाभिमुख बैठें। इनके अनन्तर कार्यसिद्धि के निमित्त प्रारम्भ में पृष्ठ ४२-४८ तक लिखे अनुसार "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करे। कार्य के निमित्त आये हुए लोग इस उपासना पर एकाग्र चित्त हो ध्यान केन्द्रित करें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना हो जाने के पश्चात् पृष्ठ ५१-५२ में कहे अनुसार यज्ञकुण्ड में अग्नि तैयार करके आहुति के लिए घृत, समिधा, आज्यस्थाली, स्रुवा शुद्धोदकपात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के पास तैयार करके रख दे। तत्पश्चात् पुरोहित की स्थापना करके कार्यकर्त्ता यज्ञकुण्ड के निकट पूर्वाभिमुख होकर बैठे। पृष्ठ ५३-५४ पर कहे अनुसार तीन आचमन करे। यजकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके घृत तथा स्थालीपाक[1] (भात) तैयार करे (पृ० ५४-५५)। तत्पश्चात् "ॐ **अयन्त इध्म०**" (पृष्ठ ५५) इस मन्त्र से समिधाधान करे। यज्ञ में डाली गयी समिधाएं भलीभांति प्रज्वलित होने पर उन पर ४ **आघारावाज्याभागाहुतियां** और ४ **व्याहृति आहुतियां** (पृष्ठ ५७-५८) कुल ८ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् प्रधान होम आहुतियां दे।

होमाहुतियों के मन्त्रः—

**देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।**
**सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा ।**
**इदं वाचे, इदन्न मम ॥**

---

१. स्थालीपाक (भात) बनाने की विधि पृष्ठ ५७-५८ पर लिखि हुई है। इसके अनुसार तीन वर्ष के पुराने शालि चावल का भात बनाये। परन्तु प्रथम धान में, ॐ प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि। ॐ अपानाय त्वा०। चक्षुषे त्वा०। ॐ श्रोत्राय त्वा०। ॐ अग्नये स्विष्टकृते त्वा०॥ इन पांच मन्त्रों द्वारा चावल तैयार करे। तत्पश्चात् प्रत्येक मन्त्र के अन्त में निर्वपामि पद के स्थान पर प्रोक्षामि पद लगाकर इन पांच मन्त्रों से चावल धोये। तत्पश्चात् इनका भात तैयार करे।

**वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँऽऋतुभिः कल्पयाति। व्वाजो हि मा सर्व व्वीरञ्जजान व्विश्वाऽआशा व्वाजपति र्जयेयᳬ स्वाहा। इदं वाचे वाजाय, इदन्न मम ॥**

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक इस प्रकार कुल दो आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् एक पात्र में भात निकाल कर उसमें घी मिलाकर,

**ओ३म् प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय, इदन्न मम।**

**ओ३म् अपानेन गन्धानमशीय स्वाहा। इदमपनाय, इद०।**

**ओ३म् चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे, इद०।**

**ओ३म् श्रोत्रेण यशो ऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय, इदं०।**

इन मन्त्रों में से प्रत्येक से एक-एक तथा **ओ३म् यदस्य कर्मणो०'** (पृष्ठ ५८) इस **स्विष्टकृत आहुति** मन्त्र से एक इस प्रकार पांच स्थालीपाक की (घृत युक्त भात की) आहुतियां दे। तत्पश्चात् ४ और भी **व्याहृति आहुतियां** (पृष्ठ ५८) तथा ८ **अष्टाज्याहुतियां** (पृष्ठ ५६-६०)।

इस प्रकार कुल १२ आज्याहुतियां दे। आहुतियों के पश्चात् शेष भात में दही, मधु, घी थोड़ा थोड़ा मिलाकर किंचित् यह भात और पायसादि अर्थात् क्षीर आदि (खीर) आदि मिष्ट तथा सुगन्धयुक्त अन्य पाक तैयार करके बालक को उसकी रुचि के अनुसार,

**अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।**
**प्रप्र दातारन्तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥**

यह मन्त्र बोलकर खिलाये। तत्पश्चात् वह बालक को लेकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर पृष्ठ ६१-६२ पर लिखे अनुसार **वामदेव्य गान** करे। अन्त में कार्य के निमित्त आये हुए लोगों को यथाचार आदर सत्कार करके विदा करे। इसके अनन्तर प्रतिदिन बालक को यथारुचि हलका पक्व अन्न खिलाये।

**अन्नप्राशनसंस्कार-विधि समाप्त**

---

# चूडाकरण संस्कार-विधि

**चूडाकरणः** –बालक के जन्म के अर्थात् माता के उदर में उत्पन्न हुए सिर के केश निकलवाकर उनके स्थान पर सुन्दर नये केश उत्पन्न करने के निमित्त अनुकूल योजनानुसार विधिपूर्वक प्रथम केश-छेदन करना ही चूडाकरण अथवा चौल है। चूडा = केश समूह और करण = करने की विधि।

**कालः**– यह संस्कार बालक के जन्म के तीसरे वर्ष (पृष्ठ ६२-६३ में लिखे अनुसार) उत्तरायण समय के शुक्ल पक्ष में शुभ नक्षत्र युक्त दिन में प्रातःकाल करे।

**विधिः**—ऊपर कहे अनुसार यथोक्त चूडाकरण संस्कार के दिन की योजना करके वह दिन आने के पूर्व पृष्ठ ४८-४९ के अनुसार एक यज्ञकुण्ड तैयार करे। उसके निकट (उत्तर अथवा दक्षिण में) एक शुभासन तैयार करे। ईंधन द्रव्यादि सभी होम सामग्री की तैयारी कर ले। निश्चित दिन आने पर बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान कराकर उसे उत्तम वस्त्र पहनाये। बालक को लेकर माता-पिता पूर्वोवत शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठें। कार्य सिद्धि के लिए प्रारम्भ में पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे अनुसार "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करें। इस अवसर पर कार्य के लिए आये हुए लोग इस उपासना पर एकाग्रचित्त से ध्यान दें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना होने के पश्चात् पृष्ठ ५१-५२ में कहे अनुसार यज्ञकुण्ड में अग्नि तैयार करने के पश्चात् आहुति के लिए घृत, समिधा, आज्यस्थाली, स्रुवा तथा शुद्धोदकपात्र इत्यादि सभी सामग्री यज्ञकुण्ड के निकट तैयार करके रख दे। इसके अतिरिक्त

भात, यव, उड़द और तिल एक-एक मिट्टी के कसोरे में अलग-अलग भरकर कुण्ड के उत्तर भाग में रखे। गाय का गोबर, भात और शमी वृक्ष के पत्ते भी कसोरे में अलग-अलग भर कर उनके पार्श्व में पश्चिम भाग में रख दे। २१ दर्भ अथवा अन्य यज्ञीय तृण उष्ण जल से भरा गूलर काष्ठ का एक पात्र, एक ठंडे जल का पात्र और मक्खन से भरा एक बर्तन अथवा दही से भरा एक पात्र ये सब दक्षिण भाग में रखे। नापित (नाई) को भी उस्तरा, कैंची, दर्पण इत्यादि सभी औजारों के साथ दक्षिण भाग में बैठाये। तत्पश्चात् पुरोहित की स्थापना करके कार्यकर्त्ता बालक को लेकर यज्ञकुण्ड के पास पूर्वाभिमुख बैठे। पृष्ठ ५३ से ५६ तक कहे अनुसार तीन आचमन करके यज्ञकुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रदीप्त करके घृत तैयार कर ले। **ॐ अयन्त इध्म०** इस मन्त्र से समिदाधान करे। "**ॐ अदितेऽनुमन्यस्व**" (पृ० ५६) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की भुजाओं में तथा "**ॐ देव सवितः प्रसुव०**" (पृष्ठ ७५) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सिंचन करे। तत्पश्चात् यज्ञ में डाली गयी समिधाएं भली-भांति प्रज्वलित होने पर उन जलती समिधाओं पर **आघारावाज्याभागाहुतियां** ४, **व्याहृति आहुतियां** ४ (पृ० ५७-५८) तथा **अष्टाज्याहुतियां** ८ (पृष्ठ ५९-६०) ये कुल १६ आज्याहुतियां दे। तत्पश्चात् पृष्ठ ५९ में लिखे अनुसार

**ॐ भूर्भुवः स्वः। अग्नआयूंषि पवस०**

इत्यादि ऋग्वेदोक्त चार मन्त्रों से प्रधान होम की ४ आज्याहुतियां दे। अन्त में ४ **व्याहृति आहुतियां** (पृष्ठ ५८) और १ **स्विष्टिकृत आहुति** (पृष्ठ ५८) इस प्रकार ५ आज्याहुतियां दे। इस प्रकार होमविधान समाप्त होने के पश्चात् कार्यकर्त्ता मन में परमात्मा का ध्यान करे। तत्पश्चात् नापित (नाई) की ओर प्रथम देखकर "**ॐ आयमगात् सविता क्षुरेण**" यह मन्त्र जपे। तदनन्तर उष्णोदक पात्र

की ओर देखकर "**ओ३म् उष्णेन वाय उदकेनैधि**" मन्त्र जपे। इसके अनन्तर पिता बालक के पीछे रहकर एक पात्र में उष्ण जल तथा ठंडा जल "**ओ३म् उष्णेन वाय उदकेनैधि**" मन्त्र बोलकर एकत्र करे। तत्पश्चात् थोड़ा पानी तथा मक्खन, अथवा दही के ऊपर की मलाई लेकर बालक के मस्तक पर (सिर पर)

**ओ३म् अदितिः केशान्वय त्वाप उन्दन्तु वर्चसे।**

**ओ३म् सवित्रा प्रसूता दैव्याऽआपऽउन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥**

यह मन्त्र बोलकर हाथ गोल घुमाते हुए तीन वार मले। तदनन्तर कंघे से सिर के केश ठीक करे। इसके पश्चात् "**ओ३म् ओषधे त्रायस्वैनम्**" यह मन्त्र बोलकर तीन दर्भ लेकर दाहिनी ओर के केश-समूह के साथ बायें हाथ से उन्हें पकड़ रखे। इसके पश्चात् "ओ३म् **विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि**" इस मन्त्र से छुरे की ओर देखकर,

**शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः॥**

यह मन्त्र बोलकर छुरा दाहिने हाथ में ले। तत्पश्चात् **ओ३म् स्वधिते मैनं हिं सीः॥** तथा

**निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥**

इस प्रकार ये दो मन्त्र बोलकर वह छुरा केश तथा दर्भ के निकट ले जाकर,

**ओ३म् येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञे वरुणस्य विद्वान्।**
**तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत्॥**

यह मन्त्र पढ़कर दर्भसहित वे केश काटे[1] और वे काटे हुए केश

---

१. काटने की विधि यह है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से दो ओर से

तथा दर्भ शमीपत्र सहित माता को दे और वह उन्हें एक कसोरे में भरकर रख दे। यदि कुछ केश उड़कर बाहर गिरे हों, तो उन्हें भी गोबर से उठाकर एकत्र कर ले। इस प्रकार एक वार केश काटने के पश्चात् पुनः,

**ओ३म् येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्।**
**तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥**

इस मन्त्र से अन्य केश दूसरी बार इसी प्रकार दर्भ सहित अन्य केश दूसरी बार काटकर उन्हें उस कसोरे में एकत्र करे। तत्पश्चात्

**ओ३म् येन भूयश्चरात्यं ज्योक् च पश्याति सूर्यम्।**
**तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥**

इस मन्त्र से तीसरी बार भी वैसा ही करे। अन्त में पूर्वोक्त तीन मन्त्र और

**ओ३म् येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिंद्रस्य चावपन्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वायाय ॥**

यह चौथा मन्त्र मिलकर ४ मन्त्रों से चौथी बार उसी भांति करे। इस प्रकार दाहिनी ओर के केश काटने की विधि पूर्ण होने के पश्चात् बायीं ओर के केश काटने की विधि भी इसी भांति इन्हीं मन्त्रों से ४ बार करे। परन्तु अन्तर इतना ही है कि "**ओ३म् येन पूषा०** इस मन्त्र के स्थान पर,

**ओ३म् येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥**

---

पकड़े। तत्पश्चात् बीच में से उन दोनों को छुरे से काटे। छुरे के स्थान पर कैंची से काटने में भी कोई दोष नहीं है। यहां केवल यही तात्पर्य है कि केश विधि पूर्वक काटे जायें।

यह मन्त्र प्रयुक्त करे। तत्पश्चात्,

**त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।**
**यद् देवेषु त्र्यायुषं तं नोऽ अस्तु त्र्यायुषम् ॥**

यह एक वेद मन्त्र बोलकर बालक के पृष्ठ भाग के केश एक बार काटे जायें। इसके अनन्तर बालक के मस्तक पर हाथ रखकर पूर्वोक्त मन्त्र पुनः जपे। इसके बाद उस्तरा नाई को देकर,

**ॐ यत् क्षुरेणमर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान्।**
**शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः ॥**

यह मन्त्र बोलकर उसके द्वारा उस्तरे की धार पैनी करवाये। इसके अनन्तर उससे कहे कि "शीतोष्ण जल से बालक का मस्तक भली-भांति मलकर मुंडन करे, उस्तरा उसके कहीं लगने न पाये।" नाई यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर जाकर पश्चिमाभिमुख बैठे। तथा बालक को उसके सामने पूर्वाभिमुख बैठाये। इसके अनन्तर मुण्डन करते समय कुलाचार के अनुसार बाल जैसे रखने हों वैसे नाई से रखवाकर शेष सब केश वपन करा दे। अन्त में कुण्ड के निकट रखे हुए अन्नादि सभी पदार्थ नाई को दे। वपन किये हुए केश (दर्भशमी पत्र और गोबर सहित) नाई को दे और वह इन्हें वन में या पशुओं के गोठे (=बाड़े) के निकट अथवा नदी-तालाब के निकट गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दे।

बालक के सिर पर मक्खन या दही पर की मलाई मलकर अभ्यंग स्नान कराये। तत्पश्चात् उसे उत्तम वस्त्र पहनाये। अब उसे अपने पास लेकर कार्यकर्त्ता शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तथा ६१-६२वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार **वामदेव्य गान** करे। अन्त में पुरोहितादि कार्यार्थ आये हुए लोगों को यथाचार आदर सत्कार पूर्वक विदा करे।

**चूडाकरण संस्कार-विधि समाप्त**

# कर्णवेध संस्कार-विधि

**कर्णवेधः**—अलंकार धारण करने के लिए कान में योग्यस्थान पर यथासमय तथा यथाविधि छिद्र करने का नाम कर्णवेध है।

**कर्ण**—कान। वेध—छेदना—बिंधन अर्थात् छिद्र।

**कालः**—बालक के जन्म के तीसरे या पांचवें वर्ष, उत्तरायण के अन्तर्गत शुक्ल पक्ष में, शुभ नक्षत्र युक्त दिन में, सूर्योदय के अनन्तर पहले प्रहर में यह कर्णवेध संस्कार करें।

**विधिः**—ऊपर कहे अनुसार यथोचित कर्णवेध संस्कार दिवस का निश्चय करके उस दिन प्रातःकाल बालक को शुद्ध स्नान कराने के पश्चात् उत्तम वस्त्र पहनाये। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता उस बालक सहित शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर प्रारम्भ में पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे हुए "**अग्निमीळे**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से ईश्वरोपासना करे। ईश्वरोपासना के पश्चात् बालक को खाने के लिए मधुर-मधुर पदार्थ देकर उसी आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाये। तदनन्तर,

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाꣳ संस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥**

यह मन्त्र बोलकर सुश्रुत नामक वैद्यक ग्रन्थानुसार तैयार किये हुए सुन्दर तीक्ष्ण शस्त्र से पहले उसका दाहिना कान शिरा (नाडी) बचाकर छेदन करे। तात्पर्य यह है कि नाड़ी परीक्षक के हाथ से छेदन कराये जिससे बालक की शिरा को क्षति न पहुंचे। इसके अनन्तर,

**वृक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णम्प्रियꣳ सखायम् परिषस्वजाना: । योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्याऽ इयꣳ समने पारयन्ती ॥**

यह मन्त्र बोलकर दूसरे (बायें) कान का छेदन करे। तत्पश्चात् छेदे हुए छिद्रों के पकने से दु:ख न हो तथा वे छिद्र बन्द न हो जायं इस दृष्टि से कुछ उपाय करे।

**कर्णवेध संस्कार-विधि समाप्त**

---

# उपनयन संस्कार-विधि

**उपनयनः**—एकान्त गुरुगृह में रहकर उत्तम वीर्य संरक्षण तथा विद्याभ्यास के द्वारा सन्तान का शरीरबल तथा बुद्धिबल सुदृढ़ करने के लिए यथासमय यथाविधि बालक को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने की तथा वेदशास्त्रादि विद्याभ्यास करने की दीक्षा[1] देने का नाम उपनयन है। उप=निकट। नयन=ले जाना। अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत और विद्याभ्यास की ओर ले जाना।

**कालः**—६२-६३ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार उत्तरायण के अन्तर्गत शुक्ल पक्ष में, किसी भी एक शुभ नक्षत्र युक्त दिवस की योजना करके उस दिन प्रातःकाल उपनयन संस्कार का प्रारम्भ करे।

---

१. ब्राह्मण वंश के बालक का उपनयन गर्भमास से ८ वें वर्ष में, क्षत्रिय कुल के बालक का ११ वें वर्ष में तथा वैश्यकुल के बालक का १२ वें वर्ष में करके दीक्षा दे इस प्रकार का सूत्रोक्त सामान्य नियम है। इसके अतिरिक्त एक विशेष नियम यह है कि यदि कोई बालक शरीर से उत्तम सुदृढ तथा नीरोग हो तो ब्राह्मण कुल के बालका का ५ वें वर्ष में, क्षत्रिय कुल के बालक का छठे वर्ष में तथा वैश्यकुल के बालक का ८ वें वर्ष में उपनयन करे। परन्तु यदि उस प्रकार उचित समय में बालक का शरीर स्वास्थ्य उत्तम न हो अथवा अन्य कारणों से अड़चन उत्पन्न हो गयी हो, तो सूत्रकार ने ब्राह्मण कुल के बालक को १६ वर्ष की, क्षत्रिय कुल के बालक को २२ वर्ष की और वैश्य कुल के बालक को २४ वर्ष की आयु उपनयन करने की अवधि दी है। यह अवधि समाप्त होने के अनन्तर पुरुष वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी तथा अयोग्य समझना चाहिए। ऐसे अयोग्य व्यक्ति से किसी प्रकार का व्यवहार सम्बन्ध न रखे।

**विधिः**—ऊपर कहे अनुसार उपनयन-दिवस का आयोजन करे। निश्चित दिन आने के पहले ही घर के निकट पूर्व (सामने) भाग में मण्डप बनाकर उसमें पृष्ठ ४८ से ४९ तक दर्शाये गये अनुसार एक यज्ञकुण्ड तैयार करे। उसके निकट ब्रह्मचारी को जिसका उपनयन करना है (उसे) बैठने के लिए एक शुभासन भूमि से किंचित् ऊंचा तैयार करे। ईंधन द्रव्यादि सभी होम सामग्री की तथा अन्य जो वस्तुएं संस्कार के लिए आवश्यक है उन सब की प्रथम तैयारी कर ले। उपनयन के निश्चित दिवस पर प्रातःकाल वटु का मुण्डन करवाकर उसे शुद्ध स्नान कराये तथा उत्तम शुद्ध वस्त्र पहनाकर मंडप में पूर्वोक्त शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाये। इसके अनन्तर कार्यकर्त्ता वटु के निकट पूर्वाभिमुख बैठकर कार्यसिद्धि के लिए प्रारम्भ में पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे अनुसार "**अग्निमीळे**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से पुरोहित के साथ ईश्वरोपासना करे। कार्यार्थ आये हुए लोग इस उपासना की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

इस प्रकार ईश्वरोपासना हो चुकने के अनन्तर वटु को भोजन दे तथा इतने समय में कार्यकर्त्ता पृष्ठ ४९ से ५१ तक लिखे अनुसार ईंधन द्रव्य से यज्ञकुण्ड में अग्नि सिद्ध करके, आहुति के लिए घृत, समिधा, आज्यास्थाली, स्रुवा, शुद्धोदक पात्र इत्यादि होम सामग्री यज्ञकुण्ड के निकट तैयार रखकर कुण्ड के दक्षिण भाग में पूर्व स्थापित पीठासन पर आचार्य[1] की उत्तराभिमुख स्थापना करे। वटु के भोजन करके तैयार हो जाने पर उसे कार्यकर्त्ता ले आये तथा यज्ञकुण्ड के निकट पश्चिम भाग में पूर्वस्थापित आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाये।

---

**१. आचार्य अर्थात् जो वटु को अत्यन्त प्रेम पूर्वक धर्मयुक्त व्यावहारिक शिक्षण देता है तथा वेदादि विद्या सम्पादन होने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न करता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे सद्गुणी को गुरु समझना चाहिए।**

अब कार्यकर्त्ता वटू से "**ब्रह्मचर्यमागाम्**" "**ब्रह्मचार्यसानि**" (मैं अब ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता हूं" मैं अब ब्रह्मचारी होता हूं)। इस प्रकार आचार्य से कहे । तत्पश्चात्

**ओ३म् येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् ।**
**तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥**

इस मन्त्र से वस्त्र उपवस्त्र धारण कराये तदनन्तर,

**ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।**

यह मन्त्र पढ़कर आचार्य वटु को यज्ञोपवीत धारण कराये । इसकी विधि यह है कि यज्ञोपवीत दाहिनी कांख (पार्श्व) से ऊपर बायें कन्धे पर रहे । तदन्तर कार्यकर्त्ता ५४ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार घृत तैयार करे तथा वटु को अपनी दाहिनी ओर बैठाकर होमाहुति देनी प्रारम्भ करे । प्रथमतः पृष्ठ ५५ में दर्शाये गये अनुसार **ओ३म् अयन्त इध्म०** इस मन्त्र से समिधाकाष्ठ से समिधाधान करे और "**ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व**" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के निकट तथा **ओ३म् देव सवित प्रसुवः**" (पृष्ठ ७५) से कुण्ड के चारों ओर दाहिनी हस्तांजलि से जल-सिंचन करे । तत्पश्चात् आज्याहुति प्रारम्भ करें:—यज्ञाग्नि में डाली गयीं समिधाओं के प्रज्वलित होने पर उन प्रज्वलित समिधाओं पर ५७-५८ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार **४ आघारावाज्यभागाहुतियां, ४ व्याहृति आहुतियां और** पृष्ठ ५९-६० पर लिखे अनुसार **८ अष्टाज्याहुतियां**, कुल १६ सामन्य आज्याहुतियां दे । तदनन्तर प्रधान होमाहुतियां वटु द्वारा दिलाये:—प्रथम ५९ वें पृष्ठ पर कहे अनुसार

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि० ।**

इत्यादि ऋग्वेदोक्त चार मन्त्रों से ४ **चतस्र आज्याहुतियाँ दे।** इसके अनन्तर,

**ॐ अग्ने व्रतपते 'व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनध्यी समिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा'—इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥**

**ॐ वायो व्रतपते॰' स्वाहा—इदं वायवे, इदन्न मम ॥२॥**

**ॐ सूर्य व्रतपते॰ स्वाहा—इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥३॥**

**ॐ चंद्र व्रतपते॰ स्वाहा—इदं चंद्राय, इदन्न मम ॥४॥**

**ॐ व्रतानां व्रतपते॰ स्वाहा—इदमिंद्राय, इदन्न मम ॥५॥**

इन सूत्रोक्त पांच मन्त्रों से अन्य पांच आज्याहुतियां दे। अन्त में ४ व्याहृति आहुतियां तथा १ स्विष्टकृत् आहुति (पृष्ठ ५८) इस प्रकार ५ आज्याहुतियां दे।

तदनन्तर आचार्य यज्ञकुण्ड की उत्तर ओर जाकर पूर्वाभिमुख बैठें। वटु को आचार्य के सामने बैठाये। अब आचार्य वटु की ओर देखकर,

**ॐ आगन्त्रा समगन्महि प्र सु मर्त्यं युयोतन।**
**अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम्॥**

यह मन्त्र जपे। तदनन्तर "**ॐ ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व**" इस प्रकार वटु आचार्य से कहे। अब आचार्य वटु से "**को नामासि**" (तुम्हारा नाम क्या हैं?) इस प्रकार पूछे तथा वटु "**अमुक नामास्मि**" (मैं अमुक नाम का हूं)। इस प्रकार कहे। इसके अनन्तर आचार्य "**आपो हिष्ठा**" (पृष्ठ ८८) इत्यादि तीन मन्त्र पढ़कर वटु की दक्षिण हस्तांजलि शुद्ध जल से भरे[2] तथा अपनी दक्षिण हस्तांजलि जल से भरकर,

---

१. इसके आगे उपर्युक्त पहले मन्त्र का "व्रतं चरिस्यामि॰" इत्यादि स्वाहान्त पद सर्वत्र प्रयुक्त करे।

२. असौ के स्थान पर वटु का नाम यहां तथा आगे भी सर्वत्र सम्बोधनान्त कहे।

**तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।**
**श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥**

यह मन्त्र पढ़कर अपनी अंजलि का जल वटु की हस्तांजलि के जल में डालें। तत्पश्चात् वटु के दक्षिण हस्तांजलि अंगूठे सहित,

**ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर् बाहुभ्यां ।**
**पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णामि असौ[1] ॥**

इस मन्त्र से पकड़कर हस्तांजलि का जल बाहर डाल दे। तत्पश्चात् दूसरी बार भी इसी प्रकार पूर्ववत् अपनी हस्तांजलि से वटु की हस्तांजलि भरकर पुनः दूसरी बार,

**ओ३म् सविता ते हस्तमग्रभीद् "असौ"**

यह दूसरा मन्त्र बोलकर, हस्तांजलि का उदक बाहर डाल दे। इसी प्रकार तीसरी बार उसकी हस्तांजलि भर कर,

**ओ३म् अग्निराचार्यस्तव 'असौ' ॥**

इस तीसरे मन्त्र से पुनः तीसरी बार भी उसी भांति जल बाहर डाले। तदनन्तर आचार्य वटु सहित बाहर जाकर,

**ओ३म् देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मामृत ॥**

यह एक मन्त्र तथा **"तच्चक्षुर्देव०"** (पृष्ठ ८८-८९) यह एक मन्त्र इस प्रकार दो मन्त्र पढ़कर वटु से सूर्यावलोकन करवाये। तदनन्तर आचार्य वटुसहित पूर्ववत् यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जायें तथा,

**युवा सुवासाः परिवीत आगात्**
**स उ श्रेयान् भवति जायमानः ॥**

---

१. वटु तथा आचार्य की हस्तांजलि में कोई अन्य ब्राह्मण जल भरे, यह केवल गोभिलीय सूत्र में है।

यह मन्त्र बोले और वटु द्वारा अपनी चारों ओर प्रदक्षिणा करवा-कर अपने सन्मुख बैठाये। तत्पश्चात् वटु के दाहिने कन्धे को अपने दाहिने हाथ से प्रथम स्पर्श करके वटु के वस्त्राच्छादित नाभि प्रदेश में **"ॐ प्राणानां ग्रंथिरसि मा विस्रसोंतक इदं ते परि ददामि असुं"**[1] यह मन्त्र पढ़कर स्पर्श करे। तत्पश्चात् **"ॐ अहुर इदं ते परि ददामि असुं"**[1] इससे उत्तर प्रदेश में, **"ॐ कृशन इदं ते परिददामि असुं"**[1] इससे हृदय प्रदेश में, **ॐ प्रजापतये त्वा परि ददामि असौ**[1]॥ यह मन्त्र पढ़कर दाहिने कन्धे की ओर **ॐ देवाय त्वा सवित्रे परिददामि असौ"**[1] यह मन्त्र पढ़कर सव्य (बायें) हाथ से दाहिने कन्धे को स्पर्श करे। तदनन्तर वटु की बायीं ओर रहकर उसके कन्धे पर से अपना दाहिना हाथ ले जाकर उसके हृदय को,

**तं धीरासः कवय उन्नयंति ।**
**स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥**

यह मन्त्र बोलकर उसी दाहिने हाथ से स्पर्श करे।

इसके अनन्तर आचार्य वटु के सन्मुख रहकर उसके दाहिने हृदय पर अपना दाहिना हाथ रखकर,

**ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।**
**मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥**

यह प्रतिज्ञा मन्त्र पहले स्वयं बोले और तत्पश्चात् वटु से बोलने के लिए कहें। वटु भी वही प्रतिज्ञामन्त्र बोलकर आचार्य के समक्ष अपनी प्रतिज्ञा करे। इस प्रकार परस्पर प्रतिज्ञा हो चुकने के पश्चात् आचार्य अपने दाहिने हाथ से वटु का दाहिना हाथ पकड़कर **"को नमासि"** (तुम्हारा नाम क्या हैं?) इस प्रकार पूछें। वटु **'अमुक**

---

१. **"असुं" इस पद के स्थान पर वटु का नाम द्वितीया विभक्ति में बोले।**

—अहं भो" (मेरा अमुक नाम है) इस प्रकार कहे। पश्चात् **"कस्य ब्रह्मचार्यसि"** (तू किसका ब्रह्मचारी है ?) इस प्रकार आचार्य पूछे तथा वह "भवतः" (आपका) इस प्रकार उत्तर दे। तदनन्तर आचार्य **इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यसि अग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव 'असौ'**[1] इस प्रकार बोले। अन्त में वटु के संरक्षणार्थ व कल्याणार्थ—

**ओ३म् कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि।**
**कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परि ददामि॥**

**ओ३म् प्रजापतये त्वा परिददामि, देवाय त्वा सवित्रे परि ददामि, अद्भ्य स्त्वौषधीभ्यः परिददामि, द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि ददामि, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परि ददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परि ददाम्य रिष्टयै॥**

ये दो मन्त्र आचार्य बोले। इस प्रकार उपनयन संस्कार पूर्ण होने के अनन्तर वेदारम्भ संस्कार उसी दिन करने का विचार यदि कार्य-कर्त्ता तथा आचार्य का हो, तो आगे लिखे गये अनुसार आरम्भ करे। परन्तु वह संस्कार आगे किसी निश्चित दिन करना हो, तो उस दिन अन्त में **वामदेव्य गान** करके कार्यार्थ आये हुए लोगों को यथाचार सम्मानपूर्वक विदा करे।

**उपनयन संस्कार-विधि समाप्त।**

---

१. 'असौ' के स्थान पर ब्रह्मचारी का नाम सम्बोधन विभक्ति में उच्चारण करे।

# वेदारम्भ संस्कार-विधि

**वेदारम्भः**—गायत्री मन्त्र से आरंभ करके व्याकरणादि सांगोपांग वेद तक सभी सत्य ग्रन्थों और शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए यथासमय यथाविधि नियम धारण करने का नाम वेदारम्भ है।

**कालः**—जिस दिन उपनयन संस्कार किया जाय उसी दिन उपनयन संस्कार समाप्त होने के अनन्तर वेदारम्भ संस्कार करे। अथवा उस दिन कार्यकर्त्ता तथा आचार्य का विचार न होने पर वह संस्कार उस दिन से तीसरे, छठे, बारहवें अथवा चौबीसवें दिन शुभ नक्षत्र युक्त दिवस, पृष्ठ ६३ के अनुसार देखकर, करे। तथापि ये दिन भी अनुकूल न हों तो छह महीने किंवा एक वर्ष के भीतर कोई भी शुभ नक्षत्र युक्त दिवस पृष्ठ ६३ के अनुसार देखकर उस दिन यह संस्कार करे।

**विधिः**—उपर कहे अनुसार वेदारम्भ का दिन निश्चित करके उस दिन प्रातःकाल वटु को शुद्ध स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहनाये। तदनन्तर कार्यकर्ता वटु को निकट लेकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे। अब आचार्य सहित प्रारम्भ में पृष्ठ १ से ८ तक लिखे अनुसार "**अग्निमीळे०**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से ईश्वरोपासना[1] करे। इस उपासना की ओर कार्यार्थ आये हुए लोग अपना ध्यान केन्द्रित करें।

उपनयन संस्कार में किए हुए होम विधान के अनुसार ही यज्ञ-कुण्ड आदि सर्व होम सामग्री की तैयारी कर लेनी चाहिए। पीठासन

१. यह वेदारम्भ संस्कार उपनयन संस्कार के ही दिन करने पर इस प्रकार दो बार ईश्वरोपासना करने की आवश्यकता नहीं।

पर आचार्य को समासीन करे। तत्पश्चात् वटु यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर के कुण्ड के निकट पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठे। उसके निकट बायीं ओर कार्यकर्त्ता बैठकर यज्ञीय काष्ठ से यज्ञकुण्ड में अग्नि जला कर, आहुति के लिए घृत तैयार करे (पृष्ठ ५४)। तत्पश्चात् "ओ३म् **अयन्त इध्म०**" (पृष्ठ ५५) इस मन्त्र से समिदाधान करे। तदनन्तर "ओ३म् **आदितेऽनुमन्यस्व**" (पृष्ठ ५६) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के निकट और "ओ३म् **देवः सवितः प्रसुव०:**" (पृष्ठ ३६) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर दाहिनी हस्तांजलि से जल सिंचन करे। अब यज्ञकुंड में प्रदीप्त हुई समिधाओं पर ४ **आघारावाज्यभागाहुतियां**। ४ **व्याहृति आहुतियां** (पृ० ५७) और ८ **अष्टाज्याहुतियां** (पृष्ठ ५९-६०) इस प्रकार १६ आज्याहुतियां प्रथम दे। तत्पश्चात् प्रधान होमाहुतियां वटु द्वारा जैसे उपनयन संस्कार में नौ आहुतियां दी थीं। उसी भांति यहां भी वे ९ आहुतियां उससे दिलवाये। तत्पश्चात् अन्त में ४ **व्याहृतियां १ स्विष्टकृत आहुति** और **१ प्राजापत्य आहुति** (पृष्ठ ५८-५९) इस प्रकार छह आज्याहुतियां दे। तदनन्तर—

**ओ३म् अग्ने सुश्रवः सुश्रव सं मा कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा। अस्येवं माँ सुश्रवः सौश्रव सं कुरु।**

**यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपाऽअस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्॥**

यह मन्त्र बोलकर कुण्ड की अग्नि एकत्र करे। अब वटु यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के चारों ओर पूर्ववत् जलसिंचन करे तथा कुंड के दक्षिण भाग में खड़े होकर—

**ओ३म् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य निराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासँ स्वाहा॥**

यह मन्त्र बोलकर प्रथम एक समिधा कुंड में डाले तत्पश्चात पुनः वही मन्त्र बोलकर दूसरी समिधा डाले तथा पुनः तीसरी बार यही मन्त्र बोलकर तीसरी समिधा कुंड में डाले। तदनन्तर पूर्ववत् "ॐ अग्ने सुश्रवः०" इस मन्त्र से पुनः अग्नि एकत्र करके पूर्ववत् पुनः कुण्ड के निकट जल सिंचन करे। इसके अनन्तर वटु पूर्ववत् बैठकर —

ॐ तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। १॥

ॐ आयुर्दाऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥

ॐ वर्च्चोदाऽ अग्नेऽसि व्वर्चो मे देहि ॥३॥

ॐ अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥४॥

ॐ मेधां मे देवः सविता ऽआ दधातु ॥५॥

ॐ मेधां मे देवी सरस्वती ऽआ दधातु ॥६॥

ॐ मेधामश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजौ ॥७॥

इस प्रत्येक मन्त्र से दक्षिण हस्तांजलि किंचित् उष्ण करके उस हस्तांजलि से मुख स्पर्श करे।

तदनन्तर नीचे लिखे अनुसार अंग स्पर्श करे—

ॐ वाक् च म ऽ आप्यायताम्। इस मन्त्र से मुख को
ॐ प्राणश्च म ऽ आप्यायताम्। इस मन्त्र से नासिका द्वार को
ॐ चक्षुश्च म ऽ आप्यायताम्। इस मन्त्र से आंखों को
ॐ श्रोत्रं च म ऽ आप्यायताम्। इस मन्त्र से दोनों कानों को
ॐ यशोबलं च म ऽ आप्यायताम्। इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को

इस प्रकार अंगस्पर्श करने के अनन्तर,

ओ३म् मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान (प्रार्थना) करके, यज्ञकुण्ड के उत्तर ओर जाकर, वटु नीचे घुटने टेककर पूर्वाभिमुख बैठे। तदनन्तर वटु आचार्य को दंडवत् नमस्कार करके "अधीहि भूः सावित्रीं भो अनुब्रूहि" (ओ३म्कार, तीन व्याहृति तथा सावित्री इन त्रिक का उच्चारण करके मुझे बतायें)। इस प्रकार कहे। तदनन्तर आचार्य अपना और वटु का मस्तक कन्धे तक एक वस्त्र से ढककर अपने हाथ से वटु का हाथ पकड़ कर गायत्री मन्त्र का उपदेश तीन भागों में करे—

'ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्'

इतना मन्त्र भाग धीरे धीरे प्रत्येक पद का स्पष्ट उच्चारण करते हुए वटु से कहलाये। तदनन्तर दूसरी बार

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'

इतना मन्त्र भाग वटु द्वारा धीरे धीरे प्रत्येक पद का स्पष्ट उच्चारण करते हुये कहलाये।

अब तीसरी बार,

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यह पूर्ण मन्त्र वटु से पूर्ववत् धीरे-धीरे प्रत्येक पद का स्पष्ट उच्चारण करते हुये कहलाये। तत्पश्चात् इस मन्त्र का उसे संक्षेप में

अर्थ समझा दे। इसके अनन्तर वटु (ब्रह्मचारी) के हृदय प्रदेश में ऊर्ध्वांगुली (उंगलियां ऊपर उठी हुई) हाथ रखकर,

**ॐ ममव्रते हृदयन्ते दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु मम वाचमेक व्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।**

यह प्रतिज्ञामन्त्र आचार्य बोले और फिर,

**ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात् ।**
**प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥**

**ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।**
**तं धीरासः कवय उन्नयति स्वाध्योमनसा देवयन्तः ॥**

ये मन्त्र बोलकर आचार्य ब्रह्मचारी के कटि भाग में (कमर में) मेखला[1] (मुंज) बांधे। तदनन्तर उसे दंड[2] दे। वह,

**ॐ यो मे दण्डः परा पतद्वैहायसोऽधि भूम्याम् ।**
**तमहं पुनराददऽआयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥**

यह मन्त्र बोलकर वह दंड ग्रहण करे। तदनन्तर कार्यकर्त्ता (पिता) ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का उपदेश करे—

**१. ब्रह्मचार्यसि असौ[3] । २. अपोऽशान । ३ कर्म कुरु । ४. दिवा मा स्वाप्सीः । ५. आचार्याधीनो वेदमधीष्व । ६. द्वादशवर्षाणि वेद**

---

१. ब्राह्मण को मुंज या दर्भतृण की मेखला, क्षत्रिय को धनुष तृण की मेखला तथा वैश्य को सन की मेखला दे।

२. ब्राह्मण को ललाट अर्थात् मस्तक के बालों तक ऊंचाई का ढाक का दंड दे। क्षत्रिय को भ्रकुटि पर्यन्त गूलर का तथा वैश्य को नासिका छिद्र तक बेल वृक्ष का दंड दे। परन्तु इस प्रकार दंड न मिलने पर, इन तीन वृक्षों में जो वृक्ष जिसे मिले उस वृक्ष का दंड वह ग्रहण करे।

३. "असौ" के स्थान पर ब्रह्मचारी का नाम सम्बोधन विभक्ति में ले।

ग्रहणांतं वा ब्रह्मचर्यं चर। ७. आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्मचरणात्। ८. क्रोधाऽनृते वर्जय।। ९. मैथुनं वर्जय। १०. उपरिशय्यां वर्जय। ११. कौशीलवगन्धांजनानि वर्जय। १२. अत्यन्तं स्नानं वर्जय। १३. अवलेखनदन्तप्रक्षालनपादप्रक्षालनानि वर्जय। १४. क्षुरकृत्यं वर्जय। १५. मधु मांसं वर्ज्जय। १६. गोयुक्तारोहणं वर्जय। १७. अन्तर्ग्राम उपानहोर्धारिणं वर्ज्जय। १८. स्वयमिन्द्रियमोचनं वर्ज्जय। १९. मेखलाधारणभैक्षचर्यदंडधारणसमिदाधानोदको पस्पर्शन प्रातरभिवादा इत्येते नित्यधर्माः।

**भाषार्थः**—१. आज से तू ब्रह्मचारी है। २. जल से आचमन कर। ३. दुष्ट कर्म न करके सत्कर्म का आचरण कर। ४. दिन में मत सो। ५ गुरु की आज्ञा में रहकर वेद का अध्ययन कर। ६. बारह वर्षों तक अथवा वेदाभ्यास पूरा होने तक ब्रह्मचर्य धारण कर। ७. आचार्य के अधीन रह। ८. परन्तु आचार्य अधर्म करे तो तू मत कर और अधर्म की बात कहे तो मत सुन। ९. क्रोध और मिथ्या भाषण न कर। १०. मैथुन अर्थात् विषय वर्जित कर। ११. नृत्य, गीत, वाद्य सुगन्धित पदार्थ तथा नेत्र अंजन ये सब वर्जित कर। १३. हाथ से भूमि न खोद और अत्यन्त दन्तधावन तथा पाद प्रक्षालन न कर। १४. क्षौर अर्थात् वपन (मुण्डन) न कर। १५. मद्य-मांस का कभी भक्षण न कर। १६. गाड़ी, घोड़े पर न बैठ। १७. गांव में पादुका का उपयोग न कर। १८. हाथ से वीर्य पात न कर। १९. मेखला तथा दंड धारण कर, भिक्षाचरण; स्नान, संध्या, समिदाधान कर। माता पिता आदि बड़ों के और आचार्य तथा अतिथि के समक्ष सदा अत्यन्त नम्रतापूर्वक रह। इस प्रकार कार्यकर्त्ता (पिता) ब्रह्मचारी सार्थक उपदेश करे। ब्रह्मचारी प्रत्येक बोध के अन्त में **"ॐ बाढम्"** (हां महाराज) इस प्रकार उत्तर दे।

तदनन्तर ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख रहकर—मां, बाप, बहिन, भाई, मामा, मौसी, काका, चाचा इत्यादि कोई जो भिक्षा के लिए नकार नहीं करेंगे उन से भिक्षा[1] मांगे। वह प्राप्त हुई सब भिक्षा आचार्य को दे। आचार्य उसमें से कुछ स्वयं लेकर शेष ब्रह्मचारी को दे। वह उसे अपने भोजन के लिए रखे। तदनन्तर ब्रह्मचारी को शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठाकर ६१ वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार कार्यकर्त्ता वामदेव्य गान करे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पूर्वोक्त रखी हुई भिक्षा लेकर उसका भक्षण करे तथा सायङ्काल तक विश्राम करे।

अब सूर्यास्तानन्तर ब्रह्मचारी द्वारा गृहाश्रम में लिखी हुई सन्ध्या करवाये। तत्पश्चात् आचार्य ब्रह्मचारी सहित यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठें तथा कुण्ड में यज्ञीय काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित

---

१- भिक्षा मांगते समय भवत् (आप) शब्द का प्रयोग ब्राह्मण भिक्षा माँगने के लिए प्रयुक्त वाक्य में प्रथम स्थान पर, क्षत्रिय मध्य स्थान पर और वैश्य अन्त्य स्थान पर करे। पुरुष से भिक्षा मांगते समय 'भवत्' रूप 'भवान्' करे तथा स्त्री से मांगते समय 'भवत्' शब्द का रूप 'भवती' करे। उदाहरण—

पुरुष से भिक्षा मांगने के वचन।

ब्राह्मणः—ओ३म् भवान् भिक्षां ददातु।
क्षत्रियः—ओ३म् भिक्षां भवान् ददातु।
वैश्यः—ओ३म् भिक्षां ददातु भवान्।

स्त्री से भिक्षा मांगने के वचन।

ब्राह्मणः—ओ३म् भवती भिक्षां ददातु।
क्षत्रियः—ओ३म् भिक्षां भवती ददातु।
वैश्यः—ओ३म् भिक्षां ददातु भवती।

करके घृत तथा स्थालीपाक[1] आहुतिद्रव्य तैयार करे (पृष्ठ ५४)। इसके पश्चात् "**अयन्त इध्म०**" (पृष्ठ ५५) मन्त्र से कुण्ड में समिदाधान करे। अव समिधा प्रज्वलित होने के अनन्तर उन पर प्रथम "४ आधारवाज्यभागाहुतियां तथा ४ व्याहृति आहुतियां कुल ८ आहुतियां दे। तदनन्तर पूर्वोक्त पृ० १६३ विधि के अनुसार ब्रह्मचारी खड़े रहकर '**ओ३म् अग्ने सुश्रव:** इस मन्त्र से समिधा होम में डाले। तत्पश्चात् बैठकर उस कुण्डस्थ अग्नि पर अपना हाथ किञ्चित् उष्ण करके उससे पूर्ववत् मुख स्पर्श करके अंग स्पर्श करे। तदनन्तर पूर्व तैयार करके रखा हुआ भात ब्रह्मचारी आचार्य को होमार्थ तथा भोजनार्थ दे। आचार्य उस भात से थोड़ा भात एक पात्र में निकाल कर उसमें घी मिश्रित करें। तदनन्तर उस घृत मिश्रित भात की,

**सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।**
**सनिं मेधामयासिषं स्वाहा—सदसस्पतये इदं०॥**

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा—इदं सवित्रे, इदन्न मम॥**

**ओ३म् ऋषिभ्यः स्वाहा—इदं ऋषिभ्यः, इदन्न मम।**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक एक इस प्रकार तीन आहुतियां तथा

---

१. स्थालीपाक बनाने की विधि ५४ वें पृष्ठ पर लिखी हुई है, उसके अनुसार "ओ३म् सदसस्पतये त्वा जुष्टं निर्वपामि" ओ३म् सवित्रे त्वा०" "ओ३म् ऋषिभ्यस्त्वा०" तथा ओ३म् अग्नये स्विष्टकृते त्वा०" मन्त्र पढकर प्रथम चावल तैयार करे, तत्पश्चात् उसी मन्त्र के अन्त में "निर्वपामि" पद के स्थान पर "प्रोक्षामि" पद लगाकर उन मन्त्रों से चावल प्रक्षालन करे। तत्पश्चात् उनका भात करे।

**ओ३म् यदस्य कर्मणो०** (पृ० ५८) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से एक इस प्रकार कुल ४ आहुतियां दे। तदनन्तर ४ **व्याहृति आहुतियां** तथा ८ **अष्टाज्याहुतियां,** कुल १२ आज्याहुतियां अन्त में दे। अब ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर ६१वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार वामदेव्य गान आचार्य सहित करे। तदन्तर अमुक "—**गोत्रोत्पन्न अहं भो भवंतमभिवादयामि**" इस प्रकार बोलकर आचार्य को वन्दन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त आहुतियों के पश्चात् शेष हविष्यान्न तथा अन्य भोजन ब्रह्मचारी आचार्य सहित भक्षण करे। तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए लोगों को भोजन कराकर यथाचार उनको विदा करे। अब १० घटिका रात बीतने पर ब्रह्मचारी अधः स्थान पर (भूमि पर) बिछौना बिछा कर शयन करे।

इसके अनन्तर ब्रह्मचारी कम से कम तीन दिन तक **सावित्री व्रत** का पालन करे; अर्थात् पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्रतिदिन प्रातः सन्ध्या समय संध्योपासना, यज्ञकुण्ड में समिधा होम तथा मुख,अंगादि स्पर्श ब्रह्मचारी करे। **सदसस्पति०** इत्यादि ३ मन्त्रों से स्थालीपाक आहुति दे। क्षार तथा लवण रहित भोजन करे। अधः स्थान में—भूमि पर बिछौना बिछा कर शयन करे।

तदनन्तर, ब्रह्मचारी पाठशाला में जाकर गुरु से विद्याभ्यास आरम्भ करे। प्रथम गृहाश्रम संस्कार में दर्शाये गये अनुसार संध्योपासना तथा अग्निहोत्रविधि आदि नित्यकर्म सीखकर प्रतिदिन सन्ध्योपासना करे। अब गुरु की आज्ञानुसार नित्य सतत विद्याभ्यास करे।

**विद्याभ्यास की विधि**[1]—

प्रथम—प्रारम्भ में ब्रह्मचारी पाणिनि मुनिकृत **अष्टाध्यायी**

१. आगे लिखी गई 'विद्याभ्यास की विधि' लेखक ने ऋ० द० कृत सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण, सन् १८७५) के तृतीय समुल्लास के अनुसार संक्षेप से लिखी है। यु० मी०

कण्ठाग्र करते हुए अध्ययन करे। तत्पश्चात् धातुपाठ, गणपाठ तथा लिंगानुशासन का अध्ययन करे। तदनन्तर अष्टाध्यायी—**धातुपाठादि सहित** द्वितीय वार सीखकर पक्की करे। तत्पश्चात् पतंजलिकृत **महाभाष्य**, जिसमें अष्टाध्यायी आदि चारों ग्रन्थों की यथावत् व्याख्या दी हुई है, का उत्तम अध्ययन करे। इस पद्धति से व्याकरण का अध्ययन पूर्ण होने में उत्तम बुद्धिमान् विद्यार्थी को केवल तीन वर्ष लगेंगे। यह विद्यार्थी सभी विषयों को समझने अर्थात् अध्ययन करने योग्य होगा। इसके आगे कात्यायनादि मुनिकृत **कोश**, यास्क मुनिकृत **निघंटु** तथा **निरुक्त** ग्रन्थ पढ़े=जिनमें अव्ययार्थ, एकार्थ तथा अनेकार्थ कोश का निर्विवाद स्पष्टीकरण किया हुआ है। इसका अध्ययन डेढ़ वर्ष में हो सकेगा। इसके अनन्तर पिंगल मुनिकृत **छन्द सूत्र**, भाष्य सहित पढ़कर यास्क मुनिकृत **काव्यालंकार सूत्र** तथा उस पर किया हुआ वात्स्यायन मुनि का भाष्य पढ़े जिससे गायत्री आदि छन्द सम्बन्धी काव्यालङ्कार तथा श्लोक रचना का यथावत् ज्ञान छह महीने में होगा। तदनन्तर जैमिनि मुनिकृत सूत्र—

**पूर्वमीमांसा शास्त्र**—व्यासमुनिकृत **अधिकरण माला**[1] व्याख्या-सहित अध्ययन करके उसके साथ ही **मनुस्मृति** का अध्ययन करे। इसमें ५।६ महीने लगेंगे। तदनन्तर कणाद मुनिकृत सूत्र—**वैशेषिक दर्शन** तथा उस पर गोतम मुनिकृत प्रशस्त पाद **भाष्य** तथा भारद्वाज मुनिकृत **सूत्रवृत्ति** ये ग्रन्थ पढ़े। इसमें २।३ महीने लगेंगे। तदनन्तर गोतम मुनिकृत सूत्र—**न्यायदर्शन** और उस पर वात्स्यायन मुनि का **भाष्य** पढ़े इसमें ४।५ महीने लगेंगे। तदनन्तर पतंजलि मुनि कृत

---

१. व्यासमुनिकृत अधिकरणमाला का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता है। 'न्यायाधिकरणमाला' नाम से माधवाचार्य कृत एक ग्रन्थ है। उस पर लेखक की व्याख्या भी है। इसका पूरा नाम है 'जैमिनी न्यायाधिकरणमाला-विस्तर'। यु० मी०

सूत्र—**योगशास्त्र** तथा उस पर व्यास मुनिकृत भाष्य पढ़े। इसमें १।२ महीने लगेंगे। तत्पश्चात् कपिल मुनिकृत सूत्र **सांख्य दर्शन** तथा उस पर भागुरि मुनिकृत भाष्य पढ़े। इसमें १।२ महीने लगेंगे। तदनन्तर **ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, छान्दोग्य, ब्रह्मविद्या**[1], **ऐतरेय,** और **बृहदारण्यक** उपनिषदों का अध्ययन करे। यह ५।६ महीने में हो सकेगा। इसके अनन्तर व्यास मुनिकृत सूत्र—**वेदान्तदर्शन** तथा उस पर वात्स्यायन और बौधायन मुनिकृत भाष्य इन ग्रन्थों का अध्ययन करे। यह छः महीने में पूर्ण होगा। इस प्रकार ६ शास्त्रों तथा १० उपनिषदों का अध्ययन हो जाने पर, अर्थ तथा स्वरसहित **ऋग्वेद** पढ़कर, उसके साथ आश्वलायन मुनिकृत **श्रौत** तथा **गृह्यसूत्र बह्वृच** जो ऋग्वेद का ब्राह्मण है और **कल्पसूत्र** ग्रन्थ पढ़े। इसमें प्रायः २ वर्ष लगेंगे। इसी प्रकार **यजुर्वेद** तथा उसके साथ कात्यायन (पारस्कर) **श्रौत** तथा **गृह्यसूत्र** और **शतपथ ब्राह्मण** ये ग्रन्थ पढ़े। इसमें प्रायः १॥ वर्ष का समय लगेगा। तत्पश्चात् **सामवेद** तथा उसके साथ **गोभिलीय** और **राणायन श्रौतसूत्र, कल्पसूत्र, सामब्राह्मण,** गोभिलीय तथा राणायन गृह्यसूत्र ये ग्रन्थ अध्ययन करे। ये दो वर्षों में पूर्ण होंगे। आगे इसी प्रकार **अथर्ववेद** तथा उसके साथ **शौनक श्रौत और गृह्यसूत्र, अथर्व ब्राह्मण** तथा **कल्पसूत्र** इन ग्रन्थों का अध्ययन करे। इसके लिए लगभग एक वर्ष लगेगा। इस प्रकार ६।७ वर्षों में चारों वेदों का अध्ययन हो जायगा। इसके अनन्तर ऋग्वेद के उपवेद **आयुर्वेद** का अध्ययन करे और उसमें धन्वन्तरिकृत **निघंटु चरक** तथा **सुश्रुत** इन ग्रन्थों में वर्णित शस्त्र क्रिया, हस्त क्रिया तथा निदानादिक विषयों का यथार्थ ज्ञान संपादन करे। इसमें **प्रायः** ३ वर्ष

---

१. उपनिषदों की गणना में 'ब्रह्मविद्या' नाम का निर्देश व्यर्थ है। प्रकृत गणना में 'तैत्तिरीय' नाम के स्थान पर 'ब्रह्मविद्या' का निर्देश भूल से हुआ है। सत्यार्थप्रकाश (सन् १८७५) में 'ऐतरेय' नाम छूटा है। यु० मी०

लगेंगे। इसके अनन्तर यजुर्वेद का उपवेद **धनुर्वेद** पढ़े। उसमें वर्णित शस्त्र अस्त्र विद्या तथा शकट व्यूह, मकर व्यूह, गरुड़ व्यूह इत्यादि सैन्य रचना अध्ययन करने में २।३ वर्ष लगेंगे। तदनन्तर सामवेद का उपवेद **गान्धर्ववेद** पढ़े। उसमें वर्णित वाद्य, राग, रागिणी, काल ताल, स्वरपूर्वक गायन विद्या का अभ्यास दो वर्षों में होगा। इसके पश्चात् अथर्ववेद का उपवेद **अर्थवेद** (शिल्प शास्त्र) पढ़े। उसमें वर्णित कला यन्त्रों का; पदार्थों के अनुकूल तथा विरुद्ध गुणों का; उनके रसायन प्रयोगों का; दूर वीक्षण अण्वीक्षण, पृथ्वी यान, जल-यान, आकाशयान इत्यादि पदार्थ निर्माण करने का ज्ञान प्रायः ३ वर्षों में हो सकेगा। इसके पश्चात् गणित विद्या, ज्योतिः शास्त्र—भृग्वादिमुनिकृत सूत्र तथा भाष्य का अभ्यास करे। इसमें प्रायः ३ वर्ष लगेंगे।

इस प्रकार सब विद्याओं का परिपूर्ण अध्ययन करने के लिए प्रायः २५-३० वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत प्रत्येक पुरुष को पालना चाहिए। वही उत्तम पुरुष होगा। इस प्रकार पूर्ण अध्ययन करने के लिए किसी व्यक्ति को तन, मन धनादि की अनुकूलता न हो, तो कम से कम २४-२५ वर्ष की आयु होने तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए जितना अध्ययन सम्भव हो, उतना करे। इसी प्रकार स्त्रियां भी २३-२४ वर्ष की आयु होने तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके व्याकरण, धर्मशास्त्र वैद्यक शास्त्र, गानविद्या, शिल्पशास्त्र और अग्निहोत्र आदि यज्ञ कार्य तथा गृहकार्य जानने के लिए वेदाभ्यास अवश्य करें। परन्तु इस प्रकार सभी अध्ययन पूर्ण करने के लिए किसी स्त्री का तन, मन, धनादि की अनुकूलता न हो तो वह कम से कम १६।१७ वर्ष की आयु होने तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जितना सम्भव हो उतना अध्ययन करे। इस प्रकार पुरुषों की पाठशाला में पुरुष तथा

स्त्रियों की पाठशाला में स्त्रियां अध्ययन करें ये वैदिक धर्मानुयायी आर्यों के पूर्वापर नियम हैं। इसके अनुसार ब्रह्मचारी स्त्री-पुरुष गुरु-गृह में अध्ययन करने के अनन्तर, गृहाश्रम स्वीकार करने की इच्छा होने पर[1] गुरु की तथा माता पितादि वरिष्ठों की सम्मति और अनु-मोदन से विवाह संस्कार में दर्शाये गये अनुमार स्व प्रतिमानुरूप, समान और योग्य लक्षण युक्त स्त्री वर की और पुरुष वधू की योजना करे। तदनन्तर आगे लिखे अनुसार समावर्तन संस्कार प्रथम करके विवाह संस्कार करे। परन्तु किसी ब्रह्मचारी स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पूर्ण विद्याभ्यास करके जितेन्द्रियता और वैराग्य शक्ति प्राप्त हुई हो तथा उसका मन वासना, विषय भोग की ओर न हो अर्थात् उसकी मनोवृत्ति गृहाश्रम स्वीकार करने की न हो तो वह केवल परोपकारार्थ तथा परमार्थार्थ सीधे संन्यासाश्रम स्वीकार करे। वह केवल निरपेक्ष तथा निष्काम बुद्धि से आगे संन्यासाश्रम संस्कार में लिखे हुए अनुसार जीवन यापन करे।

**वेदारम्भ संस्कार-विधि समाप्त।**

---

१. इस समय पृष्ठ ६५-६५ पर दर्शाये गये गुण कर्म के अनुसार गुरु विद्यार्थी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की पदवियां दे। इसी के अनुसार वे अपने-अपने नाम के आगे शर्मन्, वर्मन्, गुप्त और दास उस प्रकार अनुक्रम से संज्ञा लगायें। जैसे—बालाजी शर्मा, भद्रवर्मा, विष्णुगुप्त, हरिदास। स्त्रियों को भी इसी प्रकार पदवियाँ दी जायें। उनके नाम के आगे 'दा' संज्ञार्थ पद लगावें। जैसे—मथुरादा, गंगादा, वेदमतीदा इ०।

# समावर्तन संस्कार-विधि

**समावर्तन**—ब्रह्मचर्य व्रत और सांगोपांग वेद विद्या, सुशिक्षा तथा पदार्थ विज्ञान इन सब का संपादन करके, विवाह विधानपूर्वक गृहाश्रम स्वीकार करने के लिए विद्यालय से निवृत्त होने का नाम समावर्तन है। सम=पूर्ण, उत्तम आवर्तन निवृत्त होना अर्थात् समाप्त करना।

**कालः**—वेदारंभ संस्कार की विधि में कहे गये अनुसार ब्रह्मचारी स्त्री-पुरुष यथोचित विद्याभ्यास यथावत् काल संपूर्ण होने पर, गुरु और माता-पितादि बड़ों की सम्मति तथा अनुमोदन से गृहाश्रम स्वीकार करे प्रशस्त, स्व प्रतिमानुरूप और सवर्ण लक्षणयुक्त पुरुष वधू की तथा स्त्री वर की योजना करे। तदनन्तर गुरुगृह में विवाह का वाग् निश्चय होने के पश्चात् समावर्तन संस्कार विधि, ६३वें पृष्ठ पर लिखे अनुसार, शुभ नक्षत्रयुक्त दिन में करे।

**विधिः**—ऊपर लिखे अनुसार यथोक्त समावर्तन संस्कार दिन की योजना करे। यह दिन आने के पूर्व आचार्य के घर में पृष्ठ ४८ से ५१ तक कहे अनुसार एक यज्ञकुण्ड तथा ईंधन द्रव्यादि सर्व होम सामग्री की तैयारी करे। निश्चित दिन पर ब्रह्मचारी शुद्धस्नान तथा उत्तम वस्त्र पहनकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर प्रारम्भ में पृष्ठ ४२ से ४८ तक लिखे गये **अग्निमीळे०** इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से आचार्य सहित ईश्वरोपासना करे। इस उपासना की ओर कार्यार्थ आये हुए लोग अपना ध्यान केन्द्रित करें।

ईश्वरोपासना करने के पश्चात् ४९-५० पृष्ठों पर कहे अनुसार

ईंधन द्रव्य से कुण्ड में अग्नि तैयार करके आहुति के लिए घृत, समिधा, आज्यस्थाली, स्रुवा, शुद्धोदक पात्र इत्यादि होम सामग्री कुण्ड के निकट तैयार रखे। तत्पश्चात् आचार्य कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख बैठे तथा ब्रह्मचारी कुण्ड के निकट पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठे। अब कुण्ड में यज्ञीय काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित करके घृत तैयार करे (पृष्ठ ५४)। तत्पश्चात् समिधाओं से समिदाधान करके कुण्ड के निकट चारों ओर जल सिंचन करे (पृष्ठ ५६)। अब यज्ञाग्नि में डाली गयी समिधाओं के प्रज्वलित होने पर उन प्रज्वलित समिधाओं पर, प्रथम ४ **आघारवाज्यभागाहुतियां, ४ व्याहृति आहुतियां, १ स्विष्टकृत् आहुति** (पृष्ठ ५७-५८), **अष्टाज्याहुतियां १ प्राजापत्याहुति** (पृष्ठ ५९) इस प्रकार कुल १८ आज्याहुतियां दे और वेदारम्भ संस्कार में लिखे अनुसार **ओ३म् अग्ने सुश्रवः०** ॥ मन्त्र से कुण्ड की अग्नि एकत्र करके, **ओ३म् अग्नि समिध०** ॥ मन्त्र से कुण्ड में समिधा डाले। अब **ओ३म् तनूपा०** ॥ इत्यादि ७ मन्त्रों से मुख स्पर्श तथा **ओ३म् वाक् च म०** ॥ इत्यादि मन्त्रों से अंग स्पर्श करे। सुगंध्यादि ओषधियों से युक्त जल से भरे हुए ८ घड़े कुण्ड की उत्तर ओर तैयार रखे। उनमें से एक घट,

**ओ३म् येप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य ऽ उप गोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदुषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥**

यह मन्त्र पढ़कर ग्रहण करे। अब उस घड़े के जल से,

**ओ३म् तेन मामाभिषिंचामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे वर्चसाय ।**

इस मन्त्र से स्नान करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् उपर्युक्त, "**ओ३म् येप्स्वन्तर०**" इस मन्त्र से दूसरा घट लेकर उसके जल से,

**ओ३म् येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता॑ँ सुरान् ।**
**येनाक्ष्यावभ्यसिचतां यद्वां तदश्विना यशः ॥**

इस मन्त्र से स्नान करे। तदन्तर पूर्ववत् **ओ३म् येप्स्वन्तर०** इस मन्त्र पाठ से तीन घट ग्रहण करके उसके जल से "**आपो हि ष्ठा०**" (पृष्ठ ८८) इत्यादि ३ मन्त्रों से स्नान करे। शेष ३ घट रहे। उनके जल से पूर्वोक्त "**आपो हि ष्ठा**" इत्यादि तीन मन्त्र बोलकर स्नान करे। तत्पश्चात्,

**उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय ।**
**अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽ अदितये स्याम ॥**

इस मन्त्र से अपनी मेखला (मुंज) तथा दंड का त्याग करे।

अब स्नातक सूर्याभिमुख होकर --

**ओ३म् उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद् दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमयोद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमयोद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥**

इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान (स्तवन) करे। तदनन्तर थोड़ा दही किंवा तिल खाकर वपन (मुंडन) कराये। तत्पश्चात्,

**ओ३म् अन्नाद्याय व्यूहध्व॑ँ सोमो राजाय मा गमत् ।**
**स मे मुखं प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेन च ॥**

इस मन्त्रपाठ से गूलरकाष्ठ से दन्तधावन करे। तदनन्तर सुगन्धित द्रव्य शरीर में लगाकर पुनः शुद्ध जल से स्नान करे तथा उत्तम वस्त्र परिधान करके शरीर में चन्दनादि सुगन्ध-युक्त अनुलेपन करे। तत्पश्चात्, चक्षु, मुख और नासिका द्वार का,

**ओ३म् प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ।।**

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल लेकर अपसव्य तथा दक्षिणाभिमुख होकर "**ओ३म् पितरः शुन्धध्वम्**" इस मन्त्र से यह जल भूमि पर डाले तथा यज्ञोपवीती होकर, **ओ३म् सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳ सुवर्चा मुखेन । सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ।।** इस मन्त्र का जप करे । अब

**ओ३म् परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।**
**शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ।।**

इस मन्त्र से सुन्दर तथा उत्तम वस्त्र पहने । तदनन्तर,

**ओ३म् यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।**
**यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रति पद्यताम् ।।**

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करे । तदनन्तर

**ओ३म् या ऽ आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियाय ।**
**ता ऽ अहं प्रति गृह्णामि यशसा च भगेन च ।।**

इस मन्त्र से सुगन्धित सुन्दर पुष्पमाला लेकर,

**ओ३म् यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु ।**
**तेन संग्रथिताः सुमनस ऽ आबध्नामि यशो मयि ।।**

इस मन्त्र से धारण करे । तत्पश्चात् सुन्दर शिरोवेष्टन (टोपी, पगड़ी ) लेकर, "**युवा सुवासाः०**" (पृष्ठ १५६) इस मन्त्र से धारण करे । तदनन्तर कर्णालंकार लेकर

**ओ३म् अलंकरणमसि भूयोलंकरणं भूयात् ।**

इस मन्त्र से धारण करे । तत्पश्चात्

**ओ३म् वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ।**

इस मन्त्र से आंखों में अंजन लगायें। इसके अनन्तर **ॐ रोचिष्णुरसि।** इस मन्त्र से दर्पण में मुख देखें। तदनन्तर,

**ॐ बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्द्धेहि तेजसो यशसो मा मन्तर्द्धेहि ॥**

इस मन्त्र से छत्री धारण करे। तत्पश्चात् **ॐ प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।** इस मन्त्र से उपानह पादत्रेष्टन (पादुका, जूता) पहने। अब अन्त में,

**ॐ विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः ॥**

इस मन्त्र से बांस इत्यादि की सुन्दर लाठी हाथ में धारण करे। इसके अनन्तर उस स्नातक को उसके माता पितादि बड़े लोग देशाचार के अनुसार बड़े सामंरम्भ पूर्वक अपने घर लाये और स्नातक तथा आचार्य को विवाह संस्कार में दर्शाये गये अनुसार मधुपर्क रीति से आदर सत्कार करके अन्त में आचार्यादि कार्यार्थ आये हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन देकर यथाचार उन्हें विदा करे। तत्पश्चात् स्नातक आचार्य को यथाशक्ति दक्षिणा (विद्याध्ययन के उपलक्ष्य में गुरुदक्षिणा) देकर उन्हें प्रसन्न करे। इस दिन से यह पुरुष उत्तम शिक्षण तथा उत्तम दीक्षा लोगों को देकर संसार में सत्यधर्म, सद्विद्या, ईश्वरभक्ति, सज्जनता, सद्नीति, सद्विचार इत्यादि श्रेष्ठ गुणों की प्रवृत्ति करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। लोगों के सुख में अपना सुख रहता है यह समझकर सब पर दयाभूत होकर यथाशक्ति परोपकार करता रहे। इस प्रकार की मनोवृत्ति, दृढ़ रखकर विवाह-संस्कार में दर्शाये गये अनुसार विवाह करके गृहाश्रम स्वीकार करे।

**समावर्तन संस्कार-विधि समाप्त**

---

# वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कार-विधि

**वानप्रस्थ**– वन में अर्थात् अरण्य में एकान्त स्थान पर जहां कामिनी काञ्चनादि संसारसम्बन्धी मोहकारक वस्तुएं दृष्टि में न पड़े, रहकर परमात्मा का सदैव चिन्तन करना; सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म इत्यादि विषयों पर विचार करके इससे सम्बन्धित गुण-दोषों का निर्णय करके उत्तम गुणों को लोगों के हृदय में प्रविष्ट कराने के लिए और उन्हें सत्य की ओर मोड़ने के लिए, काया, वाचा तथा मनसा एकान्त स्थल पर रहकर सतत प्रयत्नशील रहना; इसीका नाम वानप्रस्थ है।

**संन्यास**—सर्वसंग तथा सर्वसांसारिक मोहकारक पदार्थ त्याग कर, वैराग्यशील और जितेन्द्रिय वृत्ति में दृढ़ होकर, निर्लोभ तथा निर्भय होकर, देश-देशान्तरों में भ्रमण करके, लोगों को सत्य का बोध कराकर, उन्हें सद्धर्म और सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए काया वाचा और मनसा निष्पक्षता पूर्वक सदैव परिश्रम करने का नाम संन्यासाश्रम है।

**काल**– ब्रह्मचर्याश्रम में वेदादि विद्याभ्यास पूर्ण करके यथोक्त गृहस्थाश्रम पूर्णरूप से भोगने के पश्चात् अर्थात् लड़कों के लड़के होने के पश्चात् अथवा पक्व वय होने से इन्द्रियों के शिथिल होने पर गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करे।

**संन्यासाश्रम**—इसके तीन काल हैं—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम तथा वानप्रस्थाश्रम ये तीन आश्रम अनुक्रम से भोगने के पश्चात् संन्यासाश्रम ग्रहण करना एक काल; गृहस्थाश्रम से ही पूर्णज्ञान प्राप्त कर मनोवृत्ति दृढ़ होने पर संन्यास ग्रहण करना द्वितीय काल और ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण पालन करके सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया हो; जितेन्द्रियता तथा वैराग्य आदि गुण उत्पन्न हो गये हों तथा मनोवृत्ति दृढ़ हो गयी हो और इनके कारण मनःकामना सांसारिक सुखोपभोग

से विरक्त होकर लोककल्याणार्थ जीवन व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय हो गया हो, तो ऐसा ब्रह्मचारी विना अन्य आश्रमों में प्रवेश किये सीधा संन्यास ले। यह संन्यास ग्रहण का तृतीय काल है।

**विधिः** तथा **कर्त्तव्यकर्म**—गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने का समय आने पर, ६३वें पृष्ठ पर कहे अनुसार, शुभ नक्षत्रयुक्त दिन का निश्चय करे। उस दिन स्नान-संध्यादि नित्यकर्म पूर्ण करके, स्त्री पुत्रादि कुटुंब सहित प्रेमपूर्वक भोजन करे तदनन्तर कुटुम्बी जनों को धैर्य देकर,

उन्हें उत्तमतापूर्वक समझाये कि संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। इसके अनन्तर प्रारम्भ में पृ० ४२ से ४८ तक लिखे हुए "**अग्निमीळे**" इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से ईश्वरोपासना करके घर से बाहर निकले और वन में जाकर एकान्त स्थान पर रहे। इस समय अपनी पत्नी केवल साध्वी वृत्ति से सेवा करने की इच्छा से साथ आना चाहे तो उसे भी साथ ले जाये। वन में एकान्त में फल, मूल, कंद, पुष्प, शाक तथा सावां इत्यादि विना हल चलाये उत्पन्न हुए पदार्थों—जिन्हें मुनि अन्न कहते हैं,—से नित्य पंच महायज्ञ तथा उदर पोषण करे। वल्कल अर्थात् सन आदि वृक्षों की छाल के वस्त्र धारण करे तथा प्रातः और सायंकाल दो वार शीतल जल से स्नान करे। जटादि पंचकेश रखे। स्वाध्याय अर्थात् परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना नियमपूर्वक निरन्तर करे। पठन-पाठन, वेदादि सत्य तथा ज्ञानविधायक शास्त्रों के तत्त्वज्ञान-विचार में सदा निमग्न तथा तत्पर रहे। सभी प्राणिमात्र से प्रेमपूर्वक व्यवहार करे। कोई अतिथि आये तो उसका यथोचित सत्कार करे। वनवासी लोगों को सत्य, धर्म का निरन्तर ज्ञान कराये। ज्ञान तथा विद्या के अतिरिक्त अन्य कुछ भी लोगों से स्वीकार न करे। परन्तु कदाचित् किसी कारण से पूर्वोक्त मुनि अन्न वन में न मिले, तो गांव से भिक्षा मांग कर उसमें से केवल आठ ग्रास (कौर) अन्न भक्षण करे। यह वानप्रस्थ का धर्म है।

**संन्यास ग्रहण विधि और कर्त्तव्य** कर्म में विशेष प्रकार यह है कि ब्रह्मचारी,गृहस्थ किंवा वानप्रस्थ आश्रम के पुरुष का संन्यास लेने का समय आने पर पृष्ठ ६३ पर लिखे अनुसार शुभ नक्षत्र युक्त दिन का निश्चय करके,उस दिन प्रातःकाल प्रथमशिखादि केश मुंडन करवाकर, स्नान, संध्या तथा अग्निहोत्रादि नित्यकर्म पूरे करने के पश्चात् अपना यज्ञोपवीत त्याग दे। अग्निहोत्र में "**ॐ प्रजापतये स्वाहा**" इस मन्त्र से उसकी आहुति दे। तत्पश्चात् ४२ से ४८ पृष्ठ तक लिखे अनुसार **अग्निमीळे०** इत्यादि चतुर्वेदोक्त मन्त्रों से ईश्वरोपासना करके परि-व्राट् अर्थात् संन्यासी होकर लोक-कल्याणार्थ सत्य का बोध करने के लिए देश-देश तथा ग्राम-ग्राम सभी स्थानों पर भ्रमण करे। भिक्षाटन से उदर-पोषण करके लोगों को सत्य-धर्म का बोध कराये। स्वयं सत्य-मार्ग का आचरण करते हुए निराकार परमात्मा का सदैव चिंतन करे। अद्वितीय निराकार परमात्मा का तथा सत्य धर्म का लोगों को बोध कराकर, सद्धर्म में चलाने का सदैव प्रयत्न करे। इसी प्रकार **स्त्रियां** भी संन्यास लें तथा कन्या पाठशाला इत्यादि स्त्री संस्थाओं में घूमकर उन्हें ज्ञान दें। लोग भी इस प्रकार के संन्यासियों से ज्ञान प्राप्त करें। क्योंकि ऐसे संन्यासी को **पुत्रैषणा**—पुत्रकामना, **वित्तैषणा**-द्रव्यकामना तथा **लोकैषणा**-प्रतिष्ठा की कामना न होने से वे निर्लोभी और निर्भय होकर लोगों का लेश मात्र भी पक्षपात् नहीं करते। ऐसे संन्यासी राजा से रंक तक सबको समान मानकर उन्हें धर्म व्यवस्था के लिए एक समान उपदेश करते हैं। इसलिए ऐसे सत्यवादी, सद्धार्मिक तथा सदाचारी संन्यासी से अत्यन्त प्रेमपूर्वक सदुपदेश लेना चाहिए तथा ज्ञान-प्राप्ति और सन्देह-निवृत्ति करनी चाहिए। ऐसे संन्यासी का लोग अत्यन्त, प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करें।

**वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कार विधि समाप्त।**

---

# संस्कार-विषयक-प्रमाण

## पूर्वोक्त विवाहादि संस्कारों के प्रमाणार्थ वेदोक्त व शतपथब्राह्मण आश्वलायनसूत्रादि आर्ष ग्रन्थोक्त मूल वचन—

**सामान्य संस्कार** —उदगयने पूर्वपक्षे पुण्येहनि प्रागावर्तनाद् अह्नः कालं विद्यात् । अपवर्गोभिरूपभोजनं यथाशक्ति । ब्रह्मचारी वेदमधीत्य अन्त्यां समिधम् अभ्याधास्यन् जायाया वा पाणि जिघृक्षन् । भूर्भुवः स्वरिति अभिमुखम् अग्निं प्रणयन्ति । अग्निम् आधृत्य अभ्यादध्यात् । बहुयाजिन एव अगाराद् ब्राह्मणस्य अथवा राजन्यस्य अथवा वैश्यस्य वा । अपि वा अन्यं मथित्वाभ्यादध्यात् । तेन चैव अस्य प्रातराहुतिः हुता भवतीति । सायम् आहुत्य अपक्रम एव ।

ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ होमो विधीयते । पुरोदयात् प्रातः प्रादुष्कृत्य उदितेऽनुदिते वा प्रातराहुतिं जुहुयात् ॥

यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वस्त्रं वा अपि वा कुशरज्जुमेव । दक्षिणं बाहुम् उद्धृत्य शिरोऽवधाय सव्येंसे प्रतिष्ठापयति दक्षिणं कक्षम् अन्ववलम्बं भवति एवं यज्ञोपवतीति भवति । सव्यं बाहुम् उद्धृत्य शिरोवधाय दक्षिणेंसे प्रतिष्ठापयति सव्यं कक्षम् अन्ववलम्बं भवति एवं प्राचीनावीती भवति । पितृयज्ञ इत्वा एव प्राचीनावीति भवति ।

उदक् अग्नेरुत्सृप्य प्रक्षाल्य पाणी पादौ चोपविश्य त्रिराचामेत् । पादौ अभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत् । इन्द्रियाणि अद्भिः संस्पृशेत्—अक्षिणी नासिके कर्णौ इति । तत्र एतद् आहुः—नोपस्पृशेद् व्रजन् न तिष्ठन् न हसन् न विलोकयन् न अप्रणतः, न अङ्गुलिभिः न अतीर्थेन न

नसशब्दम्। नानेवक्षितं न बाह्यांसः, नान्तरीयैकदेशस्यं कल्पयित्वा उत्तरीयताम् नोष्णाभिः न सफेनाभिः, न च सोपानत्कः क्वचित् कासक्तिकः, गलेबद्धः, चरणौ न प्रसार्य च । हृदयस्पृशस्त्वेवाप आचामेत् । सुप्त्वा स्नात्वा पुनः आचामेत् ।

अग्निम् उपसमाधाय परिसमूहच दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निम् अदितेत्युदकाजलिं प्रसिंचेत् । अनुमत इति पश्चात् । सरस्वत्युत्तरतः । देव सवित इति प्रदक्षिणम् अग्निं पर्युक्षेत् सकृद् वा त्रिर्वा । पर्युक्षणान्तान् व्यतिहरन्नभिपर्युक्षन् होमीयम् ।

अथ यदि दधि पयो यवागूं वा, कंसेन वा चरुस्थाल्या वा स्रुवेण वै वा । कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होमौ गृहाः पत्नी गृह्यः एषोऽग्निः भवतीति ।

अथ इध्मान् उपकल्पयते, खादिरान् वा, पालाशान् वा । खादिरपालाशालाभे विभीतकतिल्वकबाधकनीवनिम्बराजवृक्षशाल्मल्यऽरलुदधित्थकोविदारश्लेष्मातकवर्जं सर्ववनस्पतीनाम् इध्मो यथार्थं स्यात् ।

विशाखानि प्रतिलूनाः कुशा बर्हिः । तेषाम् अलाभे शूकतृण शरीशीर्य्यवल्बजमुतवनललुण्ठवर्जं सर्वतृणानि ।

आज्यं, स्थालीपाकीयान् व्रीहीन् वा यवान् वा, चरुस्थालीं मेक्षणं अनुगुप्ता अप इति । अप उपस्पृश्य अथ ब्रह्मासन उपविशति— आ वसोः सदने सीदामि इति । अग्निम् अभिमुखो वाग्यतः प्रांजलिः आस्त आकर्मणः पर्य्यवसानात् । भाषेत यज्ञसंसिद्धिम् । नायज्ञीयां वाचं वदेत् । यद्यायज्ञीयां वाचं वदेत् वैष्णवीमृचं यजुर्वा जपेत । वा नमो विष्णवे इति ब्रूयात् ।

अथ हविर्निर्वपति व्रीहीन् वा यवान् वा कंसेन वा चरुस्थाल्या वा अमुष्मै त्वा इति सकृत् द्विस्तूष्णीम् । गोभिलीय गृह्यसूत्र ।। तस्यै तस्यै

देवतायै चतुरश्चतुरो मुष्टीन् निर्वपति देवतानामादेशम् । आश्वलायन गृह्यसूत्र ॥ अथ पश्चात् प्राङ्‌मुखोऽवहन्तुमुपक्रमते दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्याम् । त्रिःफलीकृताँस्तण्डुलान् त्रिः देवेभ्यः प्रक्षालयेत्— अमुष्मै त्वा इति । शृतमभिघार्य्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत् ।

अग्निम् उपसमाधाय कुशैः समन्त्रं परिस्तृणुयात् पुरस्ताद् दक्षिणत उत्तरतः पश्चादिति । बहुलम् अयुग्मसंहतम् । एष परिस्तरण न्यायः सर्वेषु आहुतिमत्सु । परिधीनमपि एके कुर्वन्ति शामीलान् पार्णान् वा । बर्हिः प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते । ओषधिम् अन्तर्धाय छिनत्ति न नखेन पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ इति । अथ एने अद्‌भिरनुमार्ष्टि, विष्णोः मनसा पूते स्थ इति । अंगुष्ठाभ्यां च उपकनिष्ठिकाभ्यां च अंगुलिभ्याम् अभिसंगृह्य प्राकशस्त्रिरुत्पुनाति देवस्त्वा इति । गो० ॥ हवींषि अभिघार्य उदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्येध्ममभिघार्य अयंत इध्म इति । आ०॥ पूर्वम् आज्यम् अपरः स्थालीपाकः । पर्युक्ष्य स्थालीपाक आज्यम् आनीय मेक्षणेनोपधाताँ होतुमेव उपक्रमते ।

महाव्याहृतिभिराज्येनाभिजुहुयात् । प्राक् स्विष्टकृत आवापः । मन्त्रान्ते स्वाहाकारः । आज्याहुतिषु अनादेशे पुरस्ताच्च उपरिष्टाच्च महाव्याहृतिभिर्होमः । यथा पाणिग्रहणे, तथा चूडाकर्मणि उपनयने गोदाने च । अपवृत्ते कर्मणि वामदेव्यगानँशान्त्यर्थँ शान्त्यर्थम् गो०। तूष्णीम् आघारावाज्यभागौ जुहुयाद् अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इति । उत्तरम् आग्नेयं दक्षिणं सौम्यम् । आ० ॥

**विवाहः**—उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे[1] चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः । कुलम् अग्रे परीक्षेत ये मातृतः पितृतश्चेति

---

१. त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा । पञ्चसु बहिः —शालायां विवाहे चूडाकरणे उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयने । षडर्घ्या भवन्ति आचार्यः ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति । आसनमाहार्याह साधु

यथोक्तं पुरस्तात् । बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत् । बुद्धिरूपशीललक्षण[1]—सम्पन्नाम् अरोगाम् उपयच्छेत् । आ० ॥ क्लीतकैर्यवैर्माषैर्वा प्लुतांᳵ

---

भवानिति, आहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकम् अर्घ्यम् आचमनीयमधुपर्कंदधिमधुघृतम् अपिहितं कांᳵस्ये कांᳵस्येन अन्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि विष्टरं प्रतिगृह्णाति वर्ष्मोस्मीति । ब्राह्मणश्चेद दक्षिणं प्रथमं विराजो दोहोसीति । अर्घ्यं प्रतिगृह्णाति आपस्थ इति । अभिमन्त्रयते समुद्रमिति आचामति आमागन्य इति । पारास्कर गृ० ॥ मधुपर्कम् अह्रियमाणम् ईक्षेत मित्रस्य त्वेति । देवस्य त्वेति तद् अंजलिना प्रतिगृह्य मधुवाता इति तृचेनावेक्ष्यानामिकया चाङ्गुष्ठेन च त्रिः प्रदक्षिणम् आलोड्य वसवस्त्वा इति पुरस्तात् निर्माष्टि । रुद्रास्त्वा इति दक्षिणतः, आदित्यास्त्वा इति मध्यात् त्रिरुद्गृह्य । न तृप्तिं गच्छेत् । ब्राह्मणायोदङुच्छिष्टं प्रयच्छेत् अलाभेप्सु । अथ आचमनीयेनान्वाचामति अमृता इति । सत्यमिति द्वितीयम् । आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते ॥

१. [2]दुर्विज्ञेयानि लक्षणानि इति । अष्टौ पिण्डान् कृत्वा ऋतम् अग्र इति पिण्डान् अभिमन्त्र्य कुमारीं ब्रूयाद् एषाम् एकं ग्रहाण इति । पूर्वेषां चतुर्णां गृह्णन्तीमुपयच्छेत् । क्षेत्रात् चेद् उभयतः सस्याद् गृह्णीयाद् अन्नवत्यस्याः प्रजाः भविष्यतीति विद्याद् । गोष्ठात् पशुमती वेदिपुरीषाद् ब्रह्मवर्चस्विनी । अविदासिनो ह्रदात् सर्वसम्पन्ना । देवनात् कितवी । चतुष्पथाद् विप्रव्राजिनी इरिणादधन्या । श्मशानात् पतिघ्नी । आ० ।

उद्वहेत् द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् । असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने । महान्त्यपि

---

२. इन लक्षणों की भाषा पूर्व पृष्ठ ६६ पर नीचे टिप्पणी में ग्रन्थकार ने दी है । इस कन्या परीक्षा का खण्डन ग्रन्थकार ने स्वयं द्वितीय भाग के उपोद्घात में कर दिया है । द्र० पूर्व पृष्ठ ३१, टिप्पणी १ । यु० मी०

सुहृत् सुरोत्तमेन सशरीरां त्रिर्मूर्द्धन्यभिषिञ्चेत् काम वेद त इति पतीनाम् गृह्णीयात् । पाणिग्रहणे पुरस्ताच्छालायाम् अग्निरुप-समाहितो भवति । अथ जन्यानामेको ध्रुवाणाम् अपां कलशं पूरयित्वा सहोदकुम्भः प्रावृतो वाग्यतोऽग्रेणाग्निं परिक्रम्य दक्षिणत उदङ्मुखो-ऽवतिष्ठते । प्राजनेन अन्यः । शमीपलाशमिश्रांश्च लाजांश्चतुरञ्जलि-मात्रान् सूर्पेण उपसादयन्ति पश्चाद् अग्नेः । दृशत् पुत्रं च । अथ यस्या पाणिं ग्रहीष्यन् भवति सशिरस्का साप्लुता भवति । अहतेन वसनेन पतिः परिदध्यात् । गो० ॥

अथैतां वासः परिधापयति जरां गच्छेति । अथोत्तरीयं या अकृतन्तन्न वयमिति । अथ एनो समंजयति समञ्जन्तु इति । पित्रा प्रत्ताम् आदाय गृहीत्वा निष्क्रामति यदैषीत्यथै नौ समीक्षयत्यघोर इति । पा० ॥ प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम् अभ्युदानयन्

---

समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठि-कुलानि च । न उद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गी न रोगिणीम् । नालो-मिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम् । अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत् स्त्रियम् । उत्कृष्टाया-भिरूपाय वराय सदृशाय चेति । मनु ॥ दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति । निरुक्त ॥ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवितो वा मृतस्य वा । पतिलोकम-भीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम् ॥ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैव पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः । वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारे वैदिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया । मनु । पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् । सुश्रुतः ॥ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत । यजुर्वेदः ॥ ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्ववेदः ॥

जपेत् सोमोऽददिति पश्चाद् अग्नेः संवेष्टितं कटम् एवं जातीयं वाऽन्यत् पदा प्रवर्तयन्तीं वाचयेत् --प्र मे पतियान इति । गो० ।। पश्चाद् अग्नेस्तेजनीं कटं वा दक्षिणपादेन प्रहृत्य उपविशति अन्वारब्ध आघाराज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वं प्रायश्चित्तं प्राजापत्यँ स्विष्टकृच्चैतन्नित्यं सर्वत्र प्राङ् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेद् आज्याद्धविः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यान्तरमेतदावापस्थानं विवाहे । पा० ।।

तेषां पुरस्तात् चतस्र आज्याहुतीः जुहुयात् । अग्न आयूंषि पवस इति तिसृभिः प्रजापतेन इति च व्याहृतिर्भिर्वा । समुच्चयमेके । त्वम् अर्यमा भवसि इति विवाहे चतुर्थी । आ० ।। राष्ट्रभृत इच्छन् जयाभ्यातानांश्च जानन्येन कर्मणेच्छेदिति वचनात् चित्तं चेति । पा० ।। दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमँसमन्वारब्धायाः षड् आज्याहुतीर्जुहोति अग्निरेतु प्रथम इत्येतत् प्रभृतिभिः । महाव्याहृतिभिश्च पृथक् । समस्ताभिश्चतुर्थी । गो० ।।

पश्चाद् अग्नेर्दृषदम् अश्मानं प्रतिष्ठाप्य उत्तरपुरस्ताद् उदकुम्भं समन्वाब्धायां हुत्वा तिष्ठन् प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुख्या आसीनाया ।। आ० ।। अवसिक्तायाः सव्येन पाणिनाञ्जलिम् उपोद्गृह्य दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पाणिं साङ्गुष्ठम् उत्तानं गृहीत्वा एताः षट् पाणिग्रहणीया जपति गृभ्णामि इति । गो० ।। प्रदक्षिणम् अग्निम् उदकुम्भं च त्रिःपरिणयन् जपति—अमोहमस्मीति । आ० ।। अनुपृष्ठं पतिः परिक्रम्य दक्षिणतः उदङ्मुखोऽवतिष्ठते वध्वञ्जलिं गृहीत्वा । पूर्वा माता लाजान् आदाय भ्राता वा वधूम् आक्रामयेद् अश्मानं दक्षिणेन प्रपदेन । पाणिग्रहो जपति आरोह इति । सकृत् संगृहीतं लाजानाम् अञ्जलिं भ्राता वध्वञ्जलीं वा वपति । तँ सोपस्तीर्णाभिधारितम् अग्नौ जुहोति अविच्छिन्दति अञ्जलिम्—इयं नारी उपब्रूते—इति । अर्यमणमित्युत्तरयोः । गो० ।।

अथ गाथां गायति सरस्वतीत्यथ परिक्रामतस्तुभ्यम् अग्र इत्येवं द्विपरं लाजादि चतुर्थं शूर्पकुष्टया सर्वान् लाजान् आवपति भगाय स्वाहा इति त्रिः परिणीतां प्राजापत्यं हुत्वा। पा० ॥ हुते पतिर्यथैतं परिव्रज्य प्रदक्षिणम् अग्निं परिणयति मन्त्रवान् कन्यला इति। गो० ॥

अथास्यै शिखे विमुञ्चति यदि कृते भवतः। ऊर्णास्तुके केशपक्षयोर्बद्धे भवतः। प्र त्वा मुंचामीति। उत्तरामुत्तरया।

अथैनामपराजितायां दिशि सप्तपदानि अभ्युत्क्रामयति इष एक पद्यूर्जे इति। उभयोः सन्निधाय शिरसि उदकुम्भेन अवसिच्य। आ० ॥ दक्षिणेन प्रक्रम्य सव्येन अनुक्रामेत्। मा सव्येन दक्षिणम् अतिक्राम इति ब्रूयात्। गो० ॥ अथ एनाम् उदीचीं सप्तपदानि क्रामयति। निष्क्रमणं प्रभृति उदकुम्भं स्कन्धे कृत्वा दक्षिणातोऽग्नेर्वाग्यतः स्थितो भवति उत्तरत एकेषां तत एनां मूर्धनि अभिषिञ्चति आपः शिवा इति आपो हि ष्ठा इति च तिसृभिः। अथ एनां सूर्यम् उदीक्षयति तच्चक्षुरिति। अथ अस्यै दक्षिणां समधिहृदयम् आलभेत मम व्रते इति अथैनाम् अभिमन्त्रयते सुमंगली इयम् इति। पा० ॥

ब्राह्मण्याश्च वृद्धाया जीवपत्न्या जीवप्रजाया अगार एतां रात्रीं वसेत्। आ० ॥ प्राग् उदीच्यां दिशि यद् ब्राह्मणकुलम् अभिरूपम्। तत्राग्निरूपसमाहितो भवति। प्रोक्ते नक्षत्रे षडाज्याहुतीः जुहोति— लेखासन्धिषु इत्येतत् प्रभृतिभिः। हुत्वा उपोत्थाय उपनिष्क्रम्य ध्रुवं दर्शयति। ध्रुवमसि इति पतिनाम गृह्णीयाद् आत्मनश्च। अरून्धतीश्च। रुद्धाहमस्मीति। अथ एनाम् अनुमन्त्रयते ध्रुवा द्यौरित्येतयर्चा। हविष्यम् अन्नं प्रथमं परिजपितं भुञ्जीत। तस्य देवता अग्निः प्रजापतिर्विश्वेदेवा अनुमतिः इति। उद्धृत्य स्थालीपाकं व्यूह्य क-देशं पाणिना अभिमृशेद् अन्नपाशेन मणिना इति। भुक्त्वा उच्छिष्टं वध्वै प्रदाय यथार्थम्।

यानम् आरोहन्त्यां सुकिं सुकं शाल्मलिम् इति एताम् ऋचं जपेत्। अध्वनि चतुष्पथान् प्रतिमन्त्रयेत नदीश्च विषमाणि च महा-वृक्षान् श्मशानं च—मा विदन्निति। अक्षभंगे० व्याहृतिभिः जुहोति वामदेव्यं गीत्वा आरोहेत्। गो०॥ प्रमाण उपपद्यमाने पूषा त्वेता इति यानम् आरोहयेत्। उत्तरेण उत्क्रमयेत्। जीवं रुदन्ति इति रुदत्याम् विवाहाग्निम् अग्रतोऽजस्रं नयन्ति। वासे वासे सुमङ्गलीः इयं वधूरिती-क्षकान् ईक्षेत। इह प्रियम् इति गृहं प्रवेशयेत्। आ नः प्रजामिति चत-सृभिः प्रत्यृचं हुत्वा समञ्जन्तु इति दध्नः प्राशयेत्। अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनौ स्याताम्। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वैक ऋषिजयित इति। अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत। आ०॥

गृहागताः पतिपुत्रशीलसम्पन्ना ब्राह्मण्यो वरोप्योपवेशयन्ति इह गाव प्रजायध्वमिति तस्याः कुमारमुपस्थ आदध्युः। शकलोटानञ्जला-वावपेयुः फलानि वा। उत्थाप्य कुमारं ध्रुवा आज्याहुतीर्जुहोत्यष्टौ इह धृतिरिति। समाप्तासु यथावयसं गुरून् गोत्रेण अभिवाद्य यथार्थम् गो०॥

**अथ गर्भाधानम्**—स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वं स्नात्वा वि-रुजायाः तस्मिन्नेव दिवा आदित्यमिति आदित्यमवेक्षते गृहे वा स्नाप-यित्वा ताम् अभिगच्छेदिति श्रुतेः[1] तस्मिन् प्रजायाः सम्भवकाले निशायां कुर्याद् यदि दिवा मैथुनं व्रजेत् क्लिबा अल्पवीर्या अल्पायुषश्च

१. स य कामयेत महत्प्राप्नुयामिति उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे द्वादशाहम् उपवसद् व्रती भूत्वा औदुम्बरेकंसे चमसे वा सर्वौषधं फलानि इति संभृत्य इत्यादि। अथ याम् इच्छेत्। गर्भं दधीत इति तस्यामर्थं निष्ठाप्य मुखेन मुखं सन्धायपान्याभिप्राण्याद् इन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति। स य इच्छेत् पुत्रो मे गौरो जायेत वेदमनुब्रुवीत सर्वम् आयुरियादिति क्षीरौ-दनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तम् अश्नीयाताम् ईश्वरौ जनयितवै। अथ य इच्छेत्—

प्रसूयन्ते तस्माद् एतत् वर्जयेत् प्रजाकामो गृही श्रुतिस्मृतिविरोधाभ्याम् दक्षिणेन पाणिना ऊरू प्रसार्य प्रजास्थानम् अभिमृशति पूषा भगं सविता मे ददातु रुद्रः कल्पयति ललामङ्गुविष्णोर्योनिर्मिति प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविष्टो मन्थेद् रेतो मूत्रमिति चैके श्रावणं कुर्यात् । पा० ॥ अथात-श्चतुर्थी कर्म । अग्निम् उपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति अग्ने

---

पुत्रो मे कपिलः पिंगलो जायेत द्वौ वेदौ अनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा० अथ य इच्छेत्—पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन् वेदान् ब्रुवीत सर्वमायुरियादिति उदौदनं पाचयित्वा० । अथ य इच्छेत्—दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा० । (श० ब्रा०)

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा । पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्-व्रतो रतिकाम्यया ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतु-र्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ तासाम् आद्याश्चतस्रस्तु निन्दिता एकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेद् आर्त्तवे स्त्रियम् । पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः । मनु० ॥ उपनिषदि गर्भालम्भनं पुंसवनम् अनवलोभनं च । यदि नाधीयात् तृतीये गर्भमासे तिष्येण उपोषितायाः सरूप-वत्सायाः गोर्दधनि द्वौ द्वौ मासौ यवं च दधि प्रसृतेन प्राशयेत् । किं पिबसि किं पिबसीति । पृष्ट्वा पुंसवनं पुंसवनमिति त्रिः प्रतिजानीयात् । एवं त्रीन् प्रसृ-तान् । आ० ॥ सा यदि गर्भं न दधीत सौँहचाः श्वेतपुष्प्या उपोष्य पुष्येण मूलमुत्थाप्य चतुर्थे अहनि स्नातायां निशायाम् उदपेषं पिष्ट्वास्या नासिकाया दक्षिणम् आसिञ्चति इयमोषधीति । पा० ॥ नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रिय-मार्तवदर्शने । समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ स्नानं मैथुनि न स्मृतम् । त्रिणि वर्षाणि उदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती । ऊर्ध्वं तु कालाद् एतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम् ॥ मनु० ॥

प्रायश्चित्त इति चतुः । अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्याः । समस्य पञ्चमीं बहुवद् ऊह्य । आहुतेराहुतेस्तु सम्पातम् उदपात्रेऽवनयेत् । तेनैनां सकेशनखाम् अभ्यज्य ह्रासयित्वा प्लावयन्ति । यदा ऋतुमती भवति उपरतशोणिता तदा संभवः कालः । दक्षिणेन पाणिना उपस्थम् अभिमृशेद् विष्णुर्योनिमिति ।

**गृहाश्रम**—ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ मनु० ।

अहरहः सन्ध्यामुपासीत अहरहर् अग्निहोत्रं जुहुयात् । तस्मादहोसंयोगे ब्राह्मणः रात्रस्य सन्ध्यामुपासीत् । साम० ब्रा० ॥ प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । योगसूत्र ॥ प्रातः सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् । म० ॥ सायं सायम् इति प्रातः प्रातर० इति—अथर्ववेद काण्ड १६ अनुवाक ७ मन्त्र ३-४ । ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा । नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ भोजनं हि गृहास्थानां सायं प्रातर्विधीयते । मनु० ॥

अग्नये स्वाहा इति सायं जुहुयात् सूर्याय स्वाहा इति प्रातस्तूष्णीं द्वितीये उभयत्र । अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् अग्निहोत्रदेवताभ्यः सोमाय इति । अथ बलिहरणम् एताभ्यश्चैव देवताभ्यो अद्भ्य इति । स्वधापितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणा निनयेत् अथ पार्वणः स्थालीपाकः । तस्य दर्शपूर्णमासाभ्यामुपवासः । आ० ॥ अथ सीतायज्ञो व्रीहियवानां यत्र यत्र यजेत तन्मयँ स्थालीपाकं श्रपयेत्—क्षेत्रस्य पुरस्ताद् यद् उत्तरो वा शुचौ देशे अग्निमुपसमाधाय आज्यभागौ इष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति पृथिवीति । पा०॥

**पुंसवनः**—प्रातः सशिरस्काप्लुता पश्चादग्ने प्राचिः उपविशति । पश्चात् पतिरवस्थाय दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमँ समन्ववमृश्यानन्तर्हितं नाभिदेशम् अभिमृशेद् पुमाँ सौ मित्रावरुणावित्येतयर्च्चा पश्चात्

पतिरवस्थाय दक्षिणस्य पाणेरङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठकया चाङ्गुल्याभि-संगृह्य दक्षिणे नासिकाश्रोतस्यवनयेत्—पुमानग्नि इत्येतयर्चा। गो० ॥ अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायाम् अजीतामोषधीं नस्तः करोति—आ ते गर्भो योनिमिति। प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा हृदयदेशम् अस्या आलभेत—यत्ते सुसीम इति। आ० ॥ अथ पुंसवनं पुरा स्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा यदहः पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युज्येत् तदरुपवास्याप्लाव्याहते वाससी परिधाय न्यग्रोधावरोहां छुगां निशायामुदपेषं पिष्ट्वा पूर्ववद् आसेचनँ हिरण्यगर्भोद्भ्यः सम्भृत इत्येताभ्यां कुशकंटँ सोमाँशुं विकृत्यैनम् अभिमन्त्रयते—सुपर्णोऽसीति प्राग् विष्णुक्रमेभ्यः ॥ पा० ॥

**सीमन्तोन्नयनः**— अथ सीमन्तकरणं प्रथमगर्भे। चतुर्थेमासि षष्ठे-अष्टमे वा। गो० ॥ आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्। अथाग्निमुपसमाधाय समन्वारब्धायां—धाता ददातु इति द्वाभ्यां—राकामहमिति द्वाभ्यां—नेजमेष इति तिसृभिः प्रजापतेन इति च। आ० ॥ पुंसवनवत्—तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकँ श्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चाद् अग्नेर्भद्रपीठ उपविष्टायां युग्मेन शलाटुग्रप्सेनौ-दुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जुलैस्त्रेण्याशलल्या वीरतरशंकुना पूर्णं चात्रेण सीमन्तमूद्ध्वं विनयति—भूर्भुवः स्वरिति प्रति महाव्याहृतिभिर्वा त्रिवृत्तमाबध्नात्ययम् ऊर्जावतो वृक्ष इति—। पा० ॥ कृसरः स्थाली-पाकः उत्तरघृतस्तमवेक्षयेत्। किं पश्यसि इति उक्त्वा प्रजामिति वाचयेत्। तं सा स्वयं भुञ्जीत। वीरसूरिति ब्राह्मण्यो मङ्गल्याभिर्वा-ग्भिरुपासीरन्। गो० ॥ वीणागाथिनौ संशास्ति सोमं राजानं संगायेतामिति सोमो नो राजावतु इति। आ० ॥

**अथ जातकर्म**—अथ सोष्यन्तीहोम। प्रतिष्ठिते वस्तौ परिस्ती-र्याग्निमाज्याहुतीर्जुहोति—या तिरश्चीत्येतर्चा विपश्चित् पुच्छ-मभबदिति च। गो० ॥ सोष्यन्तीम् अद्भिरभ्युक्षयति—ऐजतु

दशमास्य इति प्राग् यस्यैत इत्यथावरावपतनमवैत्विति। जातस्य कुमारस्यावच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति अनामिकया सुवर्णान्तर्हितया मधुघृते प्राशयति घृतं वा भूस्त्वयि दधामि इत्यथा अस्यायुष्यं करोति नाभ्यां दक्षिणे वा कर्णे जपति अग्निरायुष्मानिति त्रिस्त्र्यायुषमिति। पा० ॥ कुमारं जातं पुरान्यैरालम्भात्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत् प्र ते ददामीति। कर्णयोरुपनिधाय मेधाजननं जपति मेघां ते देव इति। असौ अभिमृशति अश्मा भव इति इन्द्रं श्रेष्ठानि इति च। आ० ॥ व्रीहियवौ पेषेयत्तयैवावृता यथाशुंगां कुमारस्य जिह्वायां निमार्ष्टीयमज्ञेति। तथैव मेधाजननं सर्पिः प्राशयेत् मेधान्त इति सदसस्पतिमिति च। स यस्मिन्देशे जातो भवति तम् अभिमन्त्रयते वेदत इत्यथैनम् अभिमृश्यति—अश्मा भव इत्यथास्य मातरम् अभिमन्त्रयत इडासि इत्यथास्य दक्षिणं स्तनं प्रक्षाल्य प्रयच्छति इमꣳ स्तनमिति यस्तेस्तन इत्युत्तरमेताभ्याम् उदपात्रं शिरसो निदधाति आपो देवेश्विति द्वारदेशे पूतिकामग्निमुपसमाधाय उत्थानान् सन्धिवेलयोः फलीकरणमिश्रान् सर्षपान् अग्नावावपति शं डा इति। अत ऊद्ध्वंमसमालभनमादशरात्रात् गो० ॥

**नामकरणः**—जननाद् दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामधेयकरणम्। अथ माता शुचिना वसनेन कुमारम् आच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चं पित्रे प्रयच्छत्युदकाशिरसम्। अनुपृष्ठं परिक्रम्योत्तरत उप विशत्युदगग्रेषु। अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताय इति। तस्य मुख्यान् प्राणान् संमृशन् कोऽसीति एतं मन्त्रं जपति। आहस्पत्यमित्यन्ते च मन्त्रस्य घोषवदाद्यन्तरन्तस्थंदीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं नामदध्यात्। एतद् अतद्धितम्। अयुग्दान्तं स्त्रीणाम्। गो० ॥ द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा। द्वयक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चस्कामः।

युग्मावित्वेवा पुंसाम् । अयुजानि स्त्रीणाम् । आवृत्तैव कुमार्यै । आ०॥ न तद्धितम् अयुजाक्षरम् आकारान्तं स्त्रियै तद्धितं, शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य । पा० ॥

**निष्क्रमण:**—जननाद् यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायां प्रातः सशिरष्कं कुमारम् आप्लाव्य अस्तमिते वीते लोहितिम्नि अञ्जलिकृतः पितोपतिष्ठते । अथ माता शुचिना वसनेन कुमारम् आच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चं पित्रे प्रयच्छति उदक्शिरसम् । अनुपृष्ठं परिक्रम्य उत्तरतोऽवतिष्ठते । अथ जपति यत्त इति । उदञ्चं मात्रे प्रदाय यथार्थम् । गो० ॥ चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यम् उदीक्षयति तच्चक्षुरिति । पा० ॥

**अन्नप्राशन:**—षष्ठेमास्यन्नप्राशनम् । आजमन्नाद्यकामः । घृतौदनं तेजस्कामः । दधिमधुघृतमिश्रम् अन्नं प्राशयेत् - अन्नपत इति । आवृतैव कुमार्यै । आ० ॥ षष्ठे मासे ऽन्नप्राशनं स्थालीपाकं श्रपयित्वा आज्यभागौ इष्ट्वा आज्याहुतीर्जुहोति देवीं वाचमिति वाजोनो अद्य- इति च द्वितीयायां स्थालीपाकस्य जुहोति प्राणेनान्नमशीय स्वाहेति सर्वान् रसान्त्सर्वमन्तम् एकत उद्घृत्याथैनं प्राशयेत् तूष्णीम् । पा० ॥

**चूडाकरण:**—अथातस्तृतीये वर्षे चूडाकरणम् । पुरस्ताच्छालायाम् उपलिप्तेऽग्निरुपसमाहितो भवति । एकविंशतिर्दर्भपिंजल्य उष्णोदक- कंसे औदुम्बरः क्षुर आदर्शो वा क्षुरपाणिर्नापित इति दक्षिणतः आनडुहो गोमयः कृशरः स्थालीपाको वृथा पक्व इति उत्तरतः । व्रीहियवैः तिलै माषैरिति पृथक् पात्राणि पूरयित्वा पुरस्ताद् उपनिदध्युः । कृसरो नापिताय सर्वबीजानि चेति । गो० ॥ माता कुमारम् आदाय आप्लाव्य व्याहते वाससी परिधायाङ्क आधाय पश्चाद् अग्नेरुपविशति अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा शीतास्वप्सूष्णो आसिञ्चत्युष्णेन इति अदिते केशान्वपेति केशश्मश्रिवति च केशान्तेऽथात्र नवनीतपिंडं घत-

निमार्ष्टि त्रिः तेजसेति । मयि मेधामिति इत्युपस्थायं जान्वाच्योप-संगृह्य ब्रूयात् अधीहि इति । तस्य वाससा पाणिभ्यां च पाणी संगृह्य सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वा । यथाशक्ति वाचयीत । हृदयदेश-स्योर्ध्वाङ्गुलि पाणिमुपदधाति मम व्रत इति । आ० ।। पाणिना अग्निं परिसमूहति अग्ने सुश्रव इति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्तिष्ठन् समिधमादधाति अग्नय इत्येवं द्वितीयां तथा तृतीयामेषात इति वा समुच्चयो वा पूर्ववत् परिसमूहनपर्युक्षणे पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे तनूपा इति । अथास्यै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टा-योपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय दक्षिणतस्तिष्ठतः आसीनाय वैकेपच्छोऽर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीयेन सहानुवर्तयन् सम्वत्सरे षाण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा । पा० ।। मेखलाम् बध्य दण्डं प्रदाय ब्रह्मचर्यमादिशेत् । ब्रह्मचार्यसीति । अस्तमिते ब्रह्मौदनमनु-प्रवचनीयं श्रपयित्वा आचार्याय वेदयति । आचार्यः समन्वारब्धे जुहुयात् सदसस्पतीति । सावित्र्या द्वितीयम् ऋषिभ्यस्तृतीयं सौविष्टकृतं चतुर्थम् । आ० ।। अत्र भिक्षाचर्यचरणं भवत्पूर्वां ब्राह्मणोभिक्षेत भव-न्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां वैश्यस्तिस्रोऽप्रत्याख्यापिन्यः मातारं प्रथममिकं आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतोहः शेषं तिष्ठेत् । पा० ।।

**समावर्तनः**—वेदं समाप्य स्नायाद् ब्रह्मचर्यं वा अष्टचत्वारिंशकं द्वादशकेऽप्येके गुरुणाऽनुज्ञातो विधिविधेयस्तर्कश्च वेदः षाङ्गमेकेन कल्प-मात्रे कामं तु याज्ञिकस्योपसंगृह्य गुरुं समिधोऽभ्याधाय परिश्रितस्यो-त्तरतः पुरस्तात् स्थित्वा अष्टानामुदकुम्भानां येऽप्स्वन्तरित्येक स्माद् अपो गृहीत्वा तेनापोभिषिञ्चते तेन मामिति येन श्रियम् इत्यापो हि ष्ठा इति च प्रत्यृचं त्रिभिस्तूष्णीमितरैरुदत्तममिति मेखला उन्मुच्य दण्डं निधाय वासोऽन्यत् परिधाय आदित्यमुपतिष्ठेत उद्यन्भ्राजभृष्णु-रिति दधितिलान् वा प्राश्य जटालोमनखान् संहृत्यौदुम्बरेण

दन्तान्धावेनान्नाद्यावेत्युच्छाद्य पुनः स्नात्वा अनुलेपनं नासिकयो-मुर्खस्य चोपगृह्णीते प्राणापानौ इति पितरः शुन्धध्वमिति पाण्योरवने-जनं दक्षिणानुषिच्यानुलिप्य जपेत् सुचक्ष इत्यहतं वासो धौतं वा मौत्रेण आच्छादयीत परिधास्यै इति अथोत्तरीयं यशसामित्येकं चेत् पूर्व-स्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत सुमनसः प्रतिगृह्णाति या आहरेत्यथावब-ध्नीते यद्यशोऽप्सरसामिति उष्णीषेण शिरो वेष्टयते युवा इति अलंक-रणमसि इति कर्णवेष्टकौ वृत्रस्येत्यङ्क्ष्येऽक्षिणी रोचिष्णूरसीत्यात्मानमा दर्शे प्रेक्षते छत्रं प्रतिगृह्णाति बृहस्पत इति प्रतिष्ठ इत्युपानहौ प्रतिमुञ्चेति विश्वाभ्यो इति वैणवं दण्डमादत्ते । पा० ।। गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः । म० ।।

**वानप्रस्थ-संन्यासाश्रमः**—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृहीभवेद् गृहीभूत्वा वनी भवेद् वनीभूत्वा प्रव्रजेद् इति । श०ब्रा० ।। प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।। एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवद् स्नातको द्विजः । वने वसेत् तु नियतो यथावद् विजितेन्द्रियः ।। गृहस्थस्तु यदा पश्येत् वलीपलित-मात्मनः । अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।। संत्यज्य ग्राम्य-माहारं सर्वं चैव परिच्छदम् । पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा ।। मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा । एतान्येव महायज्ञान् निर्वपेद् विधिपूर्वकम् ।। वसीत चर्मचीरं वा सायं स्नायात् प्रगे तथा । जटाश्च विभृयान् नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ।। स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहित । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।। ग्रामाद् आहृत्य वाश्नीयाद् अष्टौ ग्रासान् वने वसन् । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ।। एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चोपनिषदीत्यात्मसंसिद्धये श्रुतीः । म० ।। यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रवजेद् वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् इति । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत् । श० ब्रा० ।। तपः

श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्त्या विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमयान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ मुडकोपनिषद् ॥

नाविरतो दुश्चरितान् नाशान्तो ना समाहितः। नाशान्तमानसो नापि प्रज्ञानेनैनम् आप्नुयात् ॥ कठ० उप० ॥ तमेतं वेदानुवचनेन विदिषन्ति। ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनाशकेन चैतमेव विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव प्रव्राजिनो लोकमीप्सन्तः प्रव्रजन्ति। एतद्धस्मवैतत्पूर्वे ब्राह्मणाः। अनूचाना विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति याह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः इति। श० ब्रा० ॥ तस्मादात्मज्ञं हि अर्चयेद् भूतिकामः इति। मु उ० ॥

---

## पूर्वोक्त संस्कारों में आये हुए मन्त्रों तथा उनके कठिन शब्दों के अर्थ

ईश्वरोपासना के मन्त्र सरल होने से उनका भाषार्थ देने की अपेक्षा, कठिन शब्दों के अर्थ समझने पर, मूल मन्त्र का अर्थ सुगमता से समझ में आ जायेगा। तथा वह कानों को भी प्रिय लगेगा। इसी लिए यहां कठिन शब्दों के अर्थ मात्र दिये हैं। शेष प्रतिज्ञा इत्यादि मन्त्रों का भाषार्थ दिया है।

**शब्दार्थ**—ॐ शब्द अ, उ, म्, इन तीन वर्णों के मिलने से बना है। यह परमेश्वर का मुख्य तथा सर्वोत्तम वाचक नाम है। सकल सृष्टि के भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश इस प्रकार तीन भाग माने

गये हैं। प्रत्येक भाग में व्याप्त जगन्नियन्ता की विभूति की अ, उ, म् अनुक्रम से संज्ञा है (अ—विराट्, अग्नि तथा विश्व; उ—हिरण्यगर्भ वायु तथा तेज; म्—ईश्वर, आदित्य तथा प्राज्ञ), अर्थात् सकल गुणसम्पन्न, सर्वव्यापक, जगदुत्पादक परमात्मा। भूः—(भूरिति वै प्राणः) जीवित्व उत्पादक सर्वप्रिय। भुवः—(भुवरित्यपानः) दुःख निवारक, आनन्ददायक। स्वः—(स्वरितिव्यानः) विविध सुखास्पद, अनेक स्वरूपाधार। अग्नि (अंचु गतिपूजनयोः)—सर्वज्ञ सर्वपूज्य को। ईळे (ईडे) भजता हूं। पुरोहितं—(पुरः—प्रारम्भ में, हितं—धारण किये हुए को) पृथिवी आदि तत्त्व आकर्षणादि गुणों से धारण करने वाले को। यज्ञस्य देवं=(यज्ञस्य—वेदादि सत्य विद्या के, देवं—प्रकाशक को) सत्य विद्या प्रकाशक को। ऋत्विजं—वसंतादि ऋतु रचयिता को। होतारं=जगत् उत्पत्ति और प्रलय काल में होम-कर्त्ता को। रत्नधातमं—रमणीय पृथिव्यादि धारण कर्त्ता को। तं—उसको। ईशानं - सर्वजगत् के स्वामी को। जगतः—जंगम वस्तु मात्र का। और तस्थुषः—स्थावर वस्तुमात्र का। पतिं—स्वामी को। धियं—विज्ञानस्वरूप को। जिन्वं—तृप्तिदायक को। अवसे—संरक्षणार्थ। वयं—हम। हूमहे—आह्वान करते हैं। पूषा—सर्वपोषक। नो—(नः) हमारा। यथा जिस प्रकार। वेदसां—विद्यादि धन की। असत्—हो। वृधे—वृद्धि के लिए। रक्षिता—रक्षक। स्वस्तये—शान्ति के लिए। पायुः—पालक। अदब्ध—विनाशक, निवारक। बृहते दिवे—महाप्रकाशक को। रोदसीभ्यां—सर्वव्यापक तथा सर्व प्रकाशक को। वोचं—कहता हूं। नमो—स्तोत्र। मीळ्हुषे—दानशील को। सुमृळीकाय—उत्तम सुखदायक को। द्युक्षं—प्रकाशक को। अर्य-मणं—सर्वज्ञ को। उपस्तुहि—स्तुति करे। ज्योक्—चिरकाल। प्रजया सचेमहि—पुत्र पौत्र सहित रहे। ऊती=प्रसाद से। गणानां—देवादि गणों का। त्वा—तुझ को। गणपतिं—स्वामी को। कवीनां-

कविं --श्रेष्ठ विद्वानों को। उपमश्रवस्तमं —कीर्तिमान को। ज्येष्ठराजं —श्रेष्ठों में श्रेष्ठ शोभायमान को। ब्रह्मणस्पते—हे वेद स्वामी। हवामहे—आह्वान करते हैं। शृण्वन्—सुनते हुए। सीद—प्रवेश कर। सादनं -घर में। स्वस्ति—कल्याण। मिमीतां—करे। भगः—ऐश्वर्यवान्। देव्यदिति—दीप्तिमान्। अनर्वणः—अपराजित। असुरः—प्राणिमात्र का। द्यावा—देदीप्यमान् पृथिवी—सर्वव्यापक। सुचेतुना—शोभायमान करके। पथ्ये—हे सत्यमार्ग मित्र। रेवति—लक्ष्मीवान्। अदिते—अविनाशक। कृधि—कर। स्वस्तये—क्षेमार्थ। वायुं (वा गतिगंधयोः) सर्वज्ञ जगच्चालक को। उपब्रवामहे—स्तुति करते हैं। भुवनस्य पति—सर्वलोकस्वामी। बृहस्पति—सर्वपालक को। आदित्यासः—अविनाश। भवंतु—हो। शं—शान्त्यर्थ, सुखकारक। चक्षसा—तेज से। अह्ना—दिवस से। भानुना—किरणों से हिमा—शीतलता से। घृणेन—उष्णता से। अध्वन्—मार्ग में। दुरोणे—घर में। असत्—हो। चित्रं—पूजनीय को। द्रविणं—धन। धेहि—दे। पूर्वहूतौ—पहली ही मांग से। दृश्ये दर्शनार्थ। वनिनो—वृक्ष। जिष्णु—जयशील। रजसस्पतिः—लोकपति, हे जन! वः—तुम्हारा। आकूतिः—मन, संकल्प। समान—भेद रहित। सुसह—शोभायुक्त। असति—हो।। इषे—अन्नादि उत्तम पदार्थ प्राप्ति के लिए। ऊर्जे—पराक्रमार्थ। स्थ—तू है। सविता—सर्वजगदुत्पादक। प्रार्पयतु—प्राप्त करो। श्रेष्ठतमायकर्मणे—अत्युत्तम कर्म अर्थात् परोपकारार्थ। आप्यायध्वं—उन्नत स्थिति को प्राप्त हो। अघ्न्याः—गाय इत्यादि पशु मारने के लिए अयोग्य। इन्द्राय—ऐश्वर्यार्थ। भागं—पूजनीय। प्रजावतीः—बहुत सन्तान युक्त। अनमीवाः—व्याधिरहित। अयक्ष्माः—प्रबल रोगरहित। मा—नहीं। ईशत—समर्थ हो। स्तेनः—चोर, ठग। अघशंसः—पापी। ध्रुवा—निश्चल सुख हेतु। अस्मिन्—इसमें। गोपतौ—पृथिव्यादि पदार्थों के रक्षण

करने वाले सज्जन लोगों में। स्यात्—हो। बह्वीः—बहुविधि पदार्थ। यजमानस्य—ईश्वर-भक्त तथा परोपकारी मनुष्य को। पशून्—गाय, घोड़े तथा सम्पत्ति, सन्तति। पाहि—संरक्षण करे। हिरण्यबाहवे—सर्वशक्तिमान को। सेनान्ये—न्यायकारी जगच्चालक को। तस्मै—उसको। पशूनां—जीवों का। वृक्षेभ्यो—शत्रुविनाशक को। शष्पिञ्जराय—अनाथरक्षक को। त्विषीमते—सन्मार्ग रक्षक को। उपवीतिने—ज्ञानदायक को। पुष्टानां सद्गुणी मनुष्य को। पतये—पालक को। व्रातपतिभ्यः—चराचर स्वामी को। गृत्सपतिभ्यः—पूर्ण ज्ञानी को। विरूपेभ्यो,विश्वरूपेभ्यः-नाना प्रकार के रूप धारक को। कराय, भवाय कर्त्ता को। मयः सुख। शिवाय—कल्याणस्वरूप को। ऋचं वाचं ऋग्रूप वाचा को। यजुः मने—यजुरूप मन को। साम प्राणं—सामरूप प्राण को। वागोजः—वाचिक तथा मानसिक तेज को। ओजः—तेज। मयि—मुझ में। प्राणापानौ—उच्छ्वास निःश्वास वायु। प्रपद्ये—प्राप्त हो। द्यौः—आकाश। आपः—जल। विश्वेदेवाः—सर्वत्र विद्वान् लोग। मा—मुझ को। एधि—हो। अहानि—दिवस। प्रतिधीयतां—प्राप्त हो। इन्द्राग्नी—सकल ऐश्वर्ययुक्त, पूज्यमान। अवोभिः—पालन करके। रातहव्या—यज्ञ, पूज्य। वाजसातौ—अन्नदायक। सुविताय—उत्तम स्थिति के लिए। शंयोः—रोगभय शमनार्थ। दृते—हे शत्रु विदारक। दृंह=दृढ़ कर। मित्रस्य चक्षुषा—मित्र दृष्टि से। समीक्षंतां—समान दृष्टि हो। समीक्षे—देखता हूं। समीक्षामहे परस्पर द्रोह रहित रहें। यतो यतः—जिस जिससे। समीहसे—अपकार होता है। कुरु—कर। हिरण्मयेन—प्रकाश से। सत्यस्य—अविनाश पुरुष का। मुखं—शरीर को। अपिहितं—आच्छादित, व्याप्त। खं—परब्रह्म॥ आयाहि—आओ। वीतये—उत्तम धर्म की प्रवृत्ति के लिए। गृणानः—स्तवन किया हुआ। होता—आह्वान किया हुआ। निसत्सि—प्रवेश करे। बर्हिषि—बुद्धि

में। राजन्—हे दीप्यमान। पवस्व—प्राप्त कर। गवे—गाय आदि पशु को। अर्वते-अश्व को। स्वायुधः—सुन्दर, मनोहर। अशस्तिह—अनिष्ट चिन्तक को मारने वाला। वृजना—उपद्रव। पिता—पालक। जनिता—उत्पादक। सुदक्ष—शोभनीय। विष्टंभ—स्तंभन कर्त्ता। धरुणः—धारक को। पृथिव्याः—पृथ्वी का। मघवंनिंद्र—हे उत्तम ऐश्वर्यवान्। न—नहीं। त्वावां—तुम्हारे समान। दिव्यः—आकाश में हुआ। पार्थिवः—भू लोक में हुआ। जातः—हुआ। जनिष्यते—होगा। वाजिनो गव्यंतः—अन्न तथा गाय की इच्छा करने वाले। वयं=हम। वसु—(वस्—निवासे) आकाशादि भूत जिसमें रहते हैं वह अर्थात् परमेश्वर। शतक्रतो—अनन्तकृति कर्त्ता। बभूविथ—हुए। सुम्नं—उत्तम सुख। ईमहे—इच्छा करता हूं। वरुण—(वृञ् वरणे) स्वीकार करने योग्य श्रेष्ठ परमात्मा। उत—और। मित्र—सखा। मतिभिः—स्तुति से। वसिष्ठाः—श्रेष्ठ ऋषिजन। त्वे—तुझ में। वसुः—धन। सुषणनानि—दानशीलत्व। पात—रक्षण कीजिए यतः—जिससे। कृधि—कर। मघवन्—हे धनवान्। शग्धि—शक्तिमान् हो। ऊतये—संरक्षणार्थ। विद्विषः—शत्रु को। विमृधः—हिंसक को। विजहि—जीत, नाश कर। राधसस्पते—हे धनपते! विधर्ता—धारक। असि—है। गिर्वणः—स्तुतिप्रिय। सुतावंत—सौम्यशील। भद्रं—कल्याण। शृणुयाम—हम सुने। पश्येम—देखें। अक्षभिः—आंखों से। यजत्राः—हे सर्वपूज्य। कर्णेभि—कानों से। स्थिरैरंगैः—श्रोत्रादि सुदृढ़ इन्द्रियों से। तुष्टुवांसः—स्तुति करने वाले। देवहितं—देवनिर्मित। आयुः—आयुष्य। व्येशमहि—उपभोग करें। वृद्धश्रवाः—महावैभवशाली। विश्ववेदाः-विश्वज्ञ। तार्क्ष्यः—तारक। अरिष्टनेमिः—दुःखहर्ता। दधातु—करो। त्रिषप्ताः—त्रैलोक्य पालक। बिभ्रत—धारक। मे—मुझ को। परमेष्ठिनी—उत्तम, श्रेष्ठ। घोरं—भय। संशिता—स्तुति किया हुआ।

समृजे—उत्पन्न हुआ। इमानि—ये। यानि—जो। ग्रहा—सर्व ग्राह्य। चांद्रमसाः--(चदि आल्हादे) आनन्द स्वरूप। आदित्याः—अविनाश। राहुणा—(रह त्यागे) एकान्त स्वरूप। धूमकेतुः—(कित निवासे) सर्व पूज्य, जगन्निवास। रुद्रः (रुदिर् अश्रु विमोचने)—दुष्टों को ताड़न करने वाला अर्थात् न्यायकारी। तिग्म—अत्युष्ण। जीवेम—जीवित रहें। बुध्येम—बुद्धिमान हों। पुष्येम—सुदृढ़ रहें। भूषेम—शोभायुक्त हों। पनाय्यं—प्रशंसनीय। उपयात—प्राप्त हों। (पृष्ठ ४२ से ४८ तक)

---

## मन्त्रार्थ

**सामान्य प्रकरण**—पृष्ठ ५२ आवसो०—हे विद्वान् श्रेष्ठ [यज्ञ कार्यार्थि] आप इस आसन पर बैठें—**इदं०** सर्व त्रैलोक्य धारण, व्याप्त तथा पालन करने वाला परमात्मा अच्छे-बुरे सब काम जानता है। इसलिए [सत्कर्म में दुर्लक्ष्य होने के कारण] मैं उसकी शरण में हूं; दुष्ट, हिंसक तथा निर्दय लोगों का नाश करके वह मेरा कल्याण करे। ५३ **अमृतो०**—ईश्वर की कृपा से मेरा अन्तःकरण तथा प्राणेन्द्रियां उत्तम स्थिति में हों अर्थात् मैं पूर्णायु होऊं। **सत्यं०**—सत्य यश, कीर्ति, लक्ष्मी, विद्यायें मुझ में स्थिर रहें। **वाङ् म० इ० ७**[1]—वाचा नेत्र कर्णादि ज्ञानेन्द्रियां तथा हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियां सदैव सतेज, पीड़ा रहित, न्याय और सद्धर्म प्रवर्तक होकर मुझ में स्थिर रहें। **५४** देव०—अग्नि तथा सूर्यकिरण के योग से सभी पदार्थ शुद्ध होकर प्राप्त हों। **५४ अग्नये०**—सर्व पूज्य भगवान् की प्राप्ति होकर कार्य सिद्ध हो, इस हेतु से यह व्रीहि संस्कार करता हूं।

---

१. इ०=इत्यादि। ७ यह संख्या इस प्रकरण के मन्त्रों की है। इसी प्रकार आगे भी समझें। यु० मी०

पृष्ठ ५५ **अयंत०** – सर्व व्यापक परमात्मा की कृपा से हमें सम्पत्ति, सन्तति, अन्न, तेज, बल, ईश्वर भक्ति प्राप्त हों। ५६ **अदिते०** इ० ३—हे अदिते = अविनाशक, सरस्वती = अत्यन्त ज्ञानवान, भक्त प्रिय ! हमारी सत्कामना की सिद्धि कर। **देव०**—यह मन्त्र ७५ वें पृष्ठ पर देखें। विष्णो० सर्वव्यापक तथा पावनपरमात्मा की कृपा से सर्वपदार्थ शुद्ध प्राप्त हों। ५७ **अग्नये** इ० ४[1] सर्वज्ञ, सर्वपूज्य सौम्य-शील, सृष्टिकर्त्ता, सर्वैश्वर्यवान् परमात्मा हमें प्राप्त हो। **यदस्य०** -- हे सर्व पूज्य परमात्मा ! हमारे कर्त्तव्यकर्म में कोई व्यंगता अथवा विशेषता न होकर हमारा इच्छित सत्कर्म सुसंगीत सिद्धि को प्राप्त हो। आपकी भक्ति, परोपकार और धर्म वृद्धि से सम्बन्धित हमारी मनोकामनाएं पूर्ण हों।

**पृष्ठ ५८ अग्न आयूंसि** इ० ४—१ हे सर्वपालक पूज्य परमात्मन्! हमारा जीवन संभालें, हमें उत्तम अन्न दें तथा दुष्टों का परिपत्य करें। २ हे महाजन स्तुत, सर्वद्रष्टा, सर्वपालक ईश्वर ! मैं आपकी प्रार्थना करता हूं। ३ हे शोभनकर्त्ता भगवान्। हमें उत्तम तेज, धन, पुष्टि, आरोग्य दें। ४ हे जगन्नियंता इस सर्वब्रह्माण्ड में व्याप्त रहने वाला आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं। हम फलेच्छु आपको अर्पित हैं। हमें सम्पत्तिवान् करें। **५६, ६० त्वन्नो०** इ० ८— १. हे सर्व पूज्य जगच्चालक, सर्वज्ञ, द्योतमान् ! सज्जनों का क्रोध हम पर न हो। सर्वदौर्भाग्य हमसे दूर रहें। २. हे सर्व रक्षक ! आज निकट रहकर हमारा संरक्षण करें। हमारी आहुति द्वारा की हुई प्रार्थना हम को सुखकारक हो। ३. हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! आत्म

---

१. "स्वाहा इदन्न मम" का अर्थ – स्वाहा = स्व पर कल्याण हेतु के लिए [यह आहुति हो]। इदन्न मम = यह कृत्य मेरा [अकेले का] नहीं है— इसी प्रकार सर्वत्र समझें।

संरक्षण के लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। आप मेरी प्रार्थना सुनकर हमें सुखी करें। ४. हे बहु स्तुत! उत्तम स्तोत्रों से प्रार्थना करके आपसे मांगता हूं कि आप उपेक्षा न करके हमारी प्रार्थना सुनकर हमें पूर्ण आयु दें। ५. आधि, व्याधि, उपाधि आदि सांसारिक अनेक दुःख तथा संकटों से जगत् प्रभु हमें मुक्त करो। ६. हे सज्जनरक्षक सत्यप्रिय प्रभो! हमारे कार्य यथासांग सिद्धि तक पहुंचाने वाले आप हैं। हमें सौभाग्य, आरोग्य तथा शोभा प्राप्त करायें। ७. हे आदित्य विनाश रहित! हमारा संसार दुःख, बन्धन से शिथिल अर्थात् नष्ट करें। हम सत्याचरणी तथा निष्पापी होकर अक्षय सुख को प्राप्त हों। ८. हे सर्वज्ञ! अद्वैत! मुझ कार्यकर्त्ता पर दया और शान्ति करें।

पृष्ठ ६१ **कयान०** इ ३—सर्वपूज्य, सर्वमित्र, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वत्र जो परमात्मा है उसकी प्राप्ति किस उत्तम अनुष्ठान तथा कार्य से होगी? २. सत्यभूत, पूजनीय, सर्वशक्तिमान्, दुष्ट नाशक, सुष्ठु, पालक ऐसा जो कोई परमात्मा। ३. वह हम उत्तम स्तुति तथा मुक्ति करने वाले का अनेक प्रकार से संरक्षण करें।

**विवाह संस्कार पृष्ठ ६७, ६८ काम० इ० ३**—हे जगदुत्पादक परमात्मन्! आपकी पूर्ण कृपा से यह वधू तेजस्वी तथा सौभाग्यवती स्वामिनी हो, यह कामस्वरूपी पतिप्रिय होकर उत्तम सन्तति-सम्पन्न हो, इस प्रकार आपके निकट अनन्यभाव से अन्तःकरणपूर्वक प्रार्थना है। ६९ **साधु**—हे वर श्रेष्ठ, आप निरन्तर साधु अर्थात् दुर्गुणत्यागी तथा सद्गुणग्राही निष्पाप और निष्कलंक रहे [तो ही विवाह विधान पूर्वक] आपकी पूजा अर्थात् आदर सत्कार किया जाय। [ऐसी मेरी इच्छा है]। **अर्चय०**=मैं सदा साधु-वृत्ति से रहूंगा। सत्कार करें। **विष्टरो०**[1]—आसन, यह आसन, इस आसन

**१. इसी प्रकार पाद्यं=पाद प्रक्षालनार्थ जल, तथा अर्घ्यः=मुखप्रक्षाल-**

पर बैठें। **वर्ष्मो॰**—सूर्य के समक्ष जैसे इतर प्रकाश का लोप होता है वैसे ही मेरी स्पर्धा करने वाले शत्रु का मेरे सामने नाश हो। जैसे यह आसन मेरे नीचे है और मैं इस पर आरुढ़ हूं वैसे मुझे दुःख देने वाले दुष्ट मेरे नीचे गिरें। अर्थात् हे परमात्मन् उनका पराजय हो। **विराजो॰**—उदक प्राणियों का मुख्यजीवन और शोभन है, वह ईश्वर कृपा से मुझे सदा सुखकारक तथा शोभादायक हो। **आप॰**—यह उदक मुझे सदा हितकारी होकर ईश्वर कृपा से मेरी सब न्याय तथा परोपकारयुक्त कामनाएं सिद्ध हों।

पृष्ठ ७० **समु॰**—समुद्र उदक का, उद्गम होने से वह सदा पूर्ण रहे। यह उत्तम जीवन मुझे सदा आरोग्य कारक हो। **आमा॰**—इस उत्तम जीवन से मेरे शरीर की कान्ति सतेज और प्रफुल्लित रहे। ईश्वर कृपा से सब लोग मेरे सच्चे मित्र हों। उत्तम सन्तति तथा सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। मेरा मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम प्रकार हो। **मित्रस्य॰**—ईश्वर की कृपा दृष्टि से यह मधुपर्क मुझे आरोग्य कारक हो। मेरी मनोवृत्ति भूतमात्र में सौम्य तथा द्वेष-रहित रहे। **देवस्य॰**—हे भगवन्। मेरी प्राणेन्द्रियों का आप यथावत् पालन तथा पोषण करें। ७१ **मधु॰** इ॰ ३—हे परमात्मन्! आपकी कृपा से यह वायु मुझे सदा सुगन्धयुक्त, मधुर, तथा पुष्टिकारक अर्थात् सुखदायक हो। समुद्र, नदी आदि उदक-संचय पूर्ण तथा सुख-प्रद हों, सर्व वनस्पति आरोग्यकारक हो। हे भगवन्! दिवस, रात्रि सर्व पदार्थ मुझे सुखदायक हों। **वसव॰**—वसु, रुद्र, आदित्य, विश्व-देवादि सब छोटे बड़े विद्वज्जनों को तथा अन्य भूतमात्र को ईश्वर-कृपा से मधुपर्क आरोग्यदायक तथा सुखप्रद हो। **यन्मधुनो॰**—

---

**नार्थ जल, इस प्रकार अर्थ समझें। प्रतिगृह्णामि=मैं स्वीकार करता हूं। इसी प्रकार सर्वत्र समझें।**

मधुपर्क सेवन से ईश्वरकृपा से मेरे शरीर को उत्तम कान्ति, पोषण तथा आरोग्य प्राप्त हो। मेरी मनोवृत्ति न्यायी, सद्धर्मी तथा सुशील रहे।

पृष्ठ ७२ **गोत्रो०**—अमुक कुल में उत्पन्न हुई, अमुक नाम की कन्या यथाशक्ति अलंकृत की हुई उसका आप पाणिग्रहण (अंगीकार) करें। ७३ **जरां०**—हे गुणवान् वधू! ईश्वरकृपा से तू पूर्णायु हो। ये वस्त्र परिधान कर। प्रीतिवती तथा पतिव्रता हो। सौन्दर्य, तेज, सन्तति तथा संपत्ति सब तुझे प्राप्त हों। हे दीर्घायु वधू साध्वी स्त्रियों से निर्मित किये हुए ये वस्त्र परिधान कर। उनके आशीर्वाद से वृद्धावस्था तक सर्वायु सुख से क्रमण कर। ७४ **समंजंतु०**—हे परमात्मन्! विद्वान्, सद्धर्मी तथा श्रेष्ठलोग और प्राण, जलादि तत्त्व ये सब हम दोनों के अन्तःकरण परस्परानुकूल तथा प्रीतियुक्त करें। शरीरस्थ वायु तथा अन्तरस्थ आत्मा ये हम दोनों के द्वारा पति तथा स्त्री के धर्म में अन्तर न पड़ने दें। अर्थात् द्वेष और व्यभिचार हम दोनों के द्वारा न हों। **यदैषि०**—हे स्त्री! स्वयंप्रकाशक सर्वव्यापक परमात्मा तेरी पतिप्राप्ति की कामना पूर्ण करे और तेरा मन मुझ पति की ओर मोड़े।

पृष्ठ ७४-७५ **अघोर०** इ० ४—ईश्वरकृपा से यह स्त्री मंगलकारिणी, सौजन्यशील सौभाग्यवती, सुहास्यवदनी, पतिव्रता, पुत्रवती, ममतामयी, सतेज, सद्गुणी, आनन्दी, शुभचिन्तक, प्रियकर, उत्तमसन्तति तथा संपत्ति की वृद्धि करनेवाली के रूप में मुझे प्राप्त हो। यह स्त्री उत्तम सुदृढ, नीरोग, धर्मशास्त्र, गानादि विद्यायुक्त, प्रजोत्पादनार्ह हो इसका मैं पाणिग्रहण करता हूं। इस प्रकार की यह स्त्री ईश्वरकृपा से पुष्टि तथा हितकारी हो। इससे उत्तम सन्तति हों। यह विषयादि बहुत सुख तथा आनन्द देनेवाली मनवेधक हो। **प्र मे०**—हे श्रेष्ठ सज्जन! इस योग्य वर से मेरा पाणिग्रहण यथोक्त

विधिपूर्वक करायें। ईश्वर कृपा से यह पति मुझे निर्विघ्न रूप से प्राप्त हो। **देव०**—द्योतमान, शुद्धात्मा ज्ञानाधिपति—परमात्मा मेरा अन्तःकरण शुद्ध करे और हम सब में ज्ञानामृत की रुचि उत्पन्न करे।

पृष्ठ ७७-७९ **त्वम०**—हे सर्व जगत् व्यवस्थापक ! आप सब प्राणियों के पोषण तथा धारण कर्त्ता हैं, अतः इन दोनों पति-पत्नी का पोषण करके उनके परस्पर अन्तःकरण शुद्ध तथा समान करें। **ऋता०** इ०१२ मन्त्र—सत्यप्रिय, जगद्धारक, सुखप्रद, कान्तिवर्धक, सर्वव्यापक, सर्वपालक परमात्मा, हम ब्राह्मणादि सब लोगों को उत्तम बुद्धि, धान्य, वनस्पत्यादि प्रिय अन्न देकर हमारा रक्षण करें।

पृष्ठ ८० **चित्तं०** इ० १३ सर्वपूज्य, सर्वैश्वर्यवान् परमात्मन् मुझे शुद्ध अन्तःकरण, सुविचार, सुदृढ़ बुद्धि, मान्यता, जय, ज्ञान, कार्य-सिद्धि, आत्मसंयमन, चातुर्य, एकाग्रता, शक्ति, सुस्वरूप, ऐश्वर्य, सत्शास्त्रज्ञान दें। **८१ अग्निर्भूता०** इ० १८—प्राणिमात्र का तद्वत् पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, सूर्य आदि प्रकाशक गोल, ब्रह्माण्ड, सज्जन, अन्न, वनस्पति, जल, नदी, समुद्र, औषध, उत्पादकता, गाय बैल आदि पशु, अनन्त विश्वरूप, पर्वत, सर्वजातियां, पुरखे, इष्टमित्र इस प्रकार सब सृष्ट पदार्थों का स्वामी मेरा संरक्षण करके मुझे शुद्ध अन्तःकरण पराक्रम, ईश्वरभक्ति तथा सद्धर्मेच्छा दें। ८२-८३ **अग्नि-रैतु०** इ० ८—१. सर्वपूज्य जगत्कर्त्ता परमात्मा इस स्त्री को प्रसन्न होकर उत्तम सन्तति दे, तथा उस भावी सन्तति को अकालमृत्यु से मुक्त और निर्भय करे। उस की कृपा से इस स्त्री को पुत्र-पौत्र सम्बन्धी क्लेश न प्राप्त हों। २. सर्वपालक परमात्मा इस स्त्री का रक्षण करे। इसकी भावी सन्तति पूर्णायु हो, यह कभी विधवा न हो, यह सदा जीवित पुत्रवती रहे। इसे सुपुत्र सम्बन्धी सुख प्राप्त हो। ३. द्योतमान सर्वात्मा हमारा कल्याण करे। पृथिवी वायु आदि सर्व पदार्थ हमें प्रशस्त तथा हितकारक हों। उत्तम सन्तति तथा सम्पत्ति

प्राप्त हो। ४. हे द्योतमान परमात्मन्! हमको उत्तम सन्मार्ग दिखाईये कि जिससे इस संसार में हमें रोगादि दुःख प्राप्त न हों। हे जगत् प्रभु! हमको अकाल मृत्यु के भय से मुक्त करिये। ५. ईश्वर कृपा से अकालमृत्यु हमसे पराङ्मुख हो और हमारा सब परिवार तथा भावी पुत्र उससे निर्भय हों। ६. हे स्त्री! जगच्चालक परमात्मा तेरे सब शरीर का तथा दूध पीते बच्चों का रक्षण करे। सर्व सज्जन लोग तुझे इष्ट हों। ७. ईश्वरकृपा से तेरे घर में दुःखकारक आर्त शब्द उत्पन्न न हों। सर्व अनिष्ट तुझसे दूर रहें। सुवासिनी तथा सौभाग्यवती तू अपने पतिगृह में जाकर पुत्र पौत्रादि उत्तम परिवार सहित सुख से रह। ८. वंध्यत्व पुत्र-पौत्र सम्बन्धी दुःख, मृत्यु, अकालमृत्यु, आधिव्याधि तुझ में हों तो उन्हें मस्तक से जैसे माला निकाल कर डाल देते हैं वैसे ही हे परमात्मन् निकाल दें।

पृ० ८४ **गृह्णामि०** इ० ६—१. हे स्त्री! सौभाग्य-प्राप्त्यर्थ मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूं। तू भी तद्वत् मेरा पाणिग्रहण करनेवाली हो। विवाहसम्बन्धी नियम तथा प्रतिज्ञा पाल कर वृद्धावस्था और मृत्यु काल तक मेरे साथ रहकर सुख भोग। जगत्प्रभु हम दोनों को आमरण आनन्द में तथा सुख में रखें। परमात्मा की कृपा से तू पुत्रवती हो तथा अपने गृहस्थाश्रम का हेतु सफल हो। २. हे स्त्री! ऐश्वर्यरूप जगन्नियन्ता ने हम लोगों का परस्पर पाणिग्रहण (लग्न) कराया है, जिससे तू मेरी धर्मपत्नी और मैं तेरा धर्मपति हूं। ३. हे परमात्मन्! यह विवाहित मेरी पत्नी मुझे पुष्टिदायक तथा सुखदायक हो। मैं भी तद्वत् उसको सुखदायक होऊं। जिस प्रकार विश्वनाथ की कृपा से तू मुझे अर्पित हुई है तद्वत् मैं भी तुझे समर्पित हूं। वह परमात्मा तुझे मेरे साथ १०० वर्षों तक सन्ततियुक्त जीवित रखें। ४. हमें तथा श्रेष्ठ विद्वानों को वस्त्रान्न देकर जो संरक्षण

करता है, वह परमात्मा तुझ मेरी स्त्री को उत्तम संतति से सुशोभित करे। ५. सकल गुणैश्वर्य सम्पन्न जगद्धारक परमात्मा मेरी स्त्री की प्रजा (सन्तान) की वृद्धि करे। ६. मैं इस स्त्री को प्राप्त हूं तथा यह स्त्री मुझे प्राप्त है, अतः हम दोनों के मन एक होकर कुलवृद्धि करें। इस स्त्री को छोड़ कर मन से जानबूझ कर या चोरी से (बिना समझे) भी अन्य स्त्री से समागम नहीं करूंगा। यह स्त्री तद्वत् पर पुरुष से मन से तथा चोरी से भी व्यभिचार न करें। श्रेष्ठ परमात्मा ऐसे व्यभिचार जन्य पाश से हमें मुक्त करे, अर्थात् हमारे द्वारा न हो। **अमो०**— हे [स्त्री] तुझे छोड़कर मैं अन्य किसी [स्त्री] से लंपटता नहीं करूगा। मैं आकाशवत् और तू पृथिवीवत् है। अर्थात् सूर्यादि के प्रकाश से पृथिवी का जैसे सदैव संयोग होता है तद्वत् हम दोनों का संयोग सदैव हो। मैं सामवेदवत् तथा तू ऋग्वेदवत् है, अर्थात् ऋग्वेद से सामवेद तक जैसे सब विद्याएं सिद्ध होती हैं तद्वत् हम दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम सम्बन्धी सर्वकृत्य पूर्ण करें। प्रफुल्लित तथा प्रीतियुक्त मन से प्रजोत्पत्ति करें। परस्पर उत्तम प्रीति रखें। कभी एक दूसरे से द्वेष न करें। प्रसन्नतापूर्वक, शान्ति के साथ सत्त्व वृत्ति से रहें। परस्पर सुख सम्पादन, ईश्वरभक्ति, धर्म, विद्या, संतति, सुविचार, न्याय इत्यादि की प्राप्ति के लिए बड़ी दक्षता से प्रयत्न करें। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हमको नीरोग, सद्धार्मिक तथा पूर्णायु करे।

पृष्ठ ८५ **आरो०**—हे वधू ! इस पाषाण पर चढ़ और इस पाषाण की भांति मुझ में स्थिर तथा दृढ़ चित्त रख। मैं भी अपना चित्त तेरी ओर दृढ़ रखूंगा। सुख-दुःख हम दोनों एकत्र सहन करें।

८५ **अर्थ०** इ० ३—१. हे न्यायकारी परमात्मन् ! मैं वधू आप से प्रार्थना करती हूं, मुझे पितृकुल से पतिकुल में ले जायें। २. मैं वधू इस आहुति द्वारा ईश्वर की प्रार्थना करती हूं कि मेरा पति चिरकाल

तक रहे। हम दोनों पूर्णायु हों तथा मेरे सब आप्त उत्तमस्थिति में रहें। ३ इस स्तुति द्वारा ईश्वर की प्रार्थना करती हूं कि मेरे पति का वैभव वृद्धिगत हो। हम दोनों के अन्तःकरण परस्पर अनुकूल तथा एक होकर रहें। ८६ **सर०**—इस वधू को ज्ञान तथा सौभाग्य प्राप्त हों। जिसने सर्व भूतमात्र सहित जगत् निर्मित किया ऐसे परमात्मा की मैं उत्तम स्तोत्रों से प्रार्थना करता हूं। इस स्त्री को उत्तम यश प्राप्त हों। **तुभ्य०** इ० २—१. यह स्त्री ईश्वर कृपा से मुझ पति सहित सुख से रहे। इसके उत्तम सन्तति हो। २. इस कन्या ने पितृगृह से पतिगृह में जाने के लिए क्षार तथा लवण रहित भोजन से और ब्रह्मचर्यवृत्ति से रहने की दीक्षा ली है। हे सुन्दरी जल की भांति हम परस्पर भेदशून्य (एकत्र) रहें। ईश्वर कृपा से हमारे दुष्ट शत्रुओं का नाश हो। **भगाय०**—सर्वैश्वर्यवान् परमात्मा मुझे प्राप्त हो।

पृष्ठ ८७ **प्र वा०**—हे वधू! ईश्वरकृपा से सांसारिक दुःख बन्धन पाश से छूटकर सन्तान की प्राप्ति के लिए पति सहित तू सुख से निवास कर। हे वधू! सर्वैश्वर्यवान जगदात्मा तुझे पितृकुल से लेकर भर्तृकुल में बद्ध अर्थात् प्रविष्ट करे और सुपुत्र तथा सौभाग्य युक्त करे। ८७-८८ **इष०** इ० ७—हे सुन्दरी! विश्वव्यापक परमात्मा तुझे ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी, नीरोग, सुदृढ़, ज्ञानी, प्रीतिवर्द्धक, सद्धार्मिक पुत्रवती करे और योग्य ऋतु कालीन सुखोत्पत्ति तथा द्वेष-वैर भाव छोड़कर शुद्ध मित्रता से रहने को शुद्धबुद्धि दे। वैसे ही विवाह-सम्बन्धी सब प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए तुझे मुझ से युक्त तथा अनुकूल करे। ईश्वर कृपा से हमको सन्तति प्राप्त होकर उस सन्तति सहित हम पूर्णायु तथा आमरण आनन्दित रहें। ४८. **आपो०** इ० ४—१. हे जगद्व्यापक! आप हमको सुखदायक हों। हमको अन्न, महत् भाग्य, उत्तम दृष्टि तथा ज्ञान दें। २. जैसे माता बच्चे को स्तनपान कराती है वैसे ही आप हमको अन्नादि उत्तम रस

प्रदान करें। ३. उत्तम रस उत्पन्न करके हमें शीघ्र तृप्त करायें। ४. आप मुझे कल्याणकारक, शान्तिदायक और आरोग्यकारक हों।

पृष्ठ ८८ **तच्चक्षु०**—सर्वप्रकाशक, सनातन परमात्मा द्वारा सूर्यादि निर्मित किये हुए पदार्थों को हम उसकी कृपा से १००वर्षों तक जीवित रहकर देखें। वाक्, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियां आमरण उत्तम स्थिति में रहें। हमको कभी दैन्य न आये। ८९ **मम०**—हे [स्त्री] ईश्वरकृपा से गृहस्थाश्रमसम्बन्धी योग्य, धर्मोक्त कामों में तेरा ध्यान लगे। तेरा चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल स्थिर रहे। मेरे न्यायी वचन एकाग्र मन से सुनकर तू पालन कर। ईश्वर कृपा से तेरे साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ा है, इसलिए हम एकत्र मन से यथायोग्य व्यवहार करें। व्यभिचार किंवा अप्रिय आचरण न करें। **समं०**—हे **प्रेक्षक जनो**! आप एकत्र होकर इस विवाहित वधू को मंगलकारिणी मानकर सौभाग्यदायक आशीर्वाद दें तत्पश्चात् घर जायें। ९० **लेखा०** इ० ६ हे स्त्री! तेरा हाथ, हाथ की रेखा, नेत्र, शरीरकान्ति, केश, दांत और अन्तरस्थ भाग, जांघें, कमर भाग इत्यादि तेरे शरीर के सब अवयव तथा स्वभाव, गुण, भाषण, हास्य इत्यादि मानसिक धर्म इत्यादि में दोष या विशेषता हो तो वह इस आहुति द्वारा ईश्वरोपासना से नष्ट होकर शरीर सुदृढ़ प्रेरक हो। ९१. **ध्रुव०**—ध्रुव नक्षत्र की भांति मैं पति में अचल—स्थिर रहूंगी। **अरु०**—अरुन्धती की भांति मैं पति से बद्ध रहूंगी। **ध्रुवा०**—हे प्रार्थ्यमान देव! जिस प्रकार यह आकाश, यह पृथिवी, यह दृश्य विश्व, ये पर्वत इत्यादि सर्व ध्रुव स्थिर हैं, वैसे ही यह स्त्री पतिगृह में स्थिर रहे। ईश्वरकृपा से तू मुझे समर्पित हुई मुझ में स्थिर रह तथा मेरे साथ पूर्णायु और सन्ततियुक्त हो।

पृष्ठ ९२ **अन्न०** इ० ३—**१.** हे वधू! तेरा मन और हृदय इस अन्नरूप पाश से तथा सत्यरूप गांठ से बंधकर सदा मेरे वश में रहे।

२. हम दोनों के हृदय एक रूप हों, अर्थात् मेरा मन तुझ में और तेरा मन मुझ में लीन हो। ३. तेरा जीवन अन्न रूप पाश से बद्ध हो। ९४ **पूषा०** इ० २—१. हे वधू ! सर्वपालक परमात्मा तुझे तेरे पतिगृह में सुख पूर्वक ले जायेंगे, तू पति के वश में होकर गृहस्वामिनी कार्यकर्त्री, मंगलदायक तथा जितेन्द्रिय हो। २. तू मंगलकारिणी इस रथ से पतिगृह में जाकर पति को सुखदायक हो। ९४ **इह प्रियं०**— हे स्त्री ! पतिगृह में वास करके संतति तथा सम्पत्ति के प्रिय तथा उत्तम सुख ईश्वर कृपा से तुझे प्राप्त हों। गृह कार्य करने में तू सदा जागृत, तत्पर तथा निरालस्य हो। शरीर और अन्तःकरण सदा शुद्ध रखकर अत्यन्त प्रिय तथा सुभाषिणी हो। **इह०**—परमात्मा की कृपा से इस घर में उत्तम सन्तति, सम्पत्ति सद्धर्मानुष्ठान और परोपकार ये सब रहें।

पृष्ठ ९५ **इह०** इ० ८—हे वधू ! इस घर में ईश्वर तुझे धैर्य, ज्ञान, आत्म-निग्रह, उत्तम सुख तथा आनन्द वृत्ति दे। तू मुझ में सदा प्रसन्न मन से रममाण हो। ९६ **आनः०** इ० ४—१. हे प्रजापते ! हम को दीर्घायु, शूर, सद्गुणी सन्तति देकर इस आश्रमको सदा आनन्द सुख तथा ईश्वर भक्ति से युक्त कर। आपकी कृपा से यह स्त्री मुझे प्राप्त हुई है। यह सदा मंगलकारिणी हो और सन्तति, सम्पत्ति तथा तज्जन्य सुखोत्पत्ति प्राप्त हो। २. द्र० पृष्ठ ७४। ३. हे भगवन् इस विवाहित स्त्री को सौभाग्यवती तथा पुत्रवती कर। इसको एक से अधिक पुत्र तथा पतिसुख आमरणान्त प्राप्त हों। ४. हे स्त्री ! तू अन्तःकरणपूर्वक बड़े आनन्द तथा उत्सुकता से अपने श्वसुर, सास, देवर, ननद के प्रति नम्र रहकर उन्हें सदाचरण से प्रसन्न रख। **समञ्जन्तु** द्र० पृष्ठ ७४। **अहं०**—मैं आपको वन्दन करता हूं। ९७ **स्वस्ति०**—आप आशीर्वाद दें। ९७ **अश्म०** —इस बहती नदी को ईश्वरकृपा से हम अपने मित्रों सहित लांघ कर पार जायें। दुःखों का

नाश होकर सुख प्राप्त हो। **जीवं०**—पितृगृह वियोग जन्य दुःख ईश्वरकृपा से इस सुलक्षण वधू को न हो तथा इस को सर्वप्रकार से सुख प्राप्त हो। **९८ मा०**—हे भगवन् मार्ग में हमें दुष्ट लोग न मिलें तथा वे दुर्गम मार्ग में जाकर नष्ट हो जायें।

पृष्ठ १०२ **अग्ने०** इ० ५—हे स्वयं प्रकाशक, विघ्ननाशक, सर्व शक्तिमान् शान्तिस्वरूप, श्रेष्ठ परमात्मन्! आप विद्वान् सद्धार्मिक जनों के क्लेश नष्ट करने वाले हैं। मैं अनन्य भाव से आपकी शरण होकर प्रार्थना करता हूं कि इस स्त्री में दौर्भाग्य का, पतिवियोग का वन्ध्यात्व का अथवा आधिव्याधि का दोष हो तो उसे नष्ट करके इस स्त्री को शारीरिक, मानसिक तथा पारमार्थिक रूप से सुखास्पद करें। १०४ **आदित्यं०** इ० ६—हे जगत्कर्ता! आप गर्भ को सूर्य के सदृश तेजस्वी करें, उसके लिए अमृत तुल्य दुग्ध उत्पन्न करें। उसके सब दुःख नष्ट करें। उसकी सुखपूर्वक वृद्धि करके उसे शतायु करें। हे सर्व-प्रेरक शोभनीय ईश्वर। आप तीनों लोकों में विद्यमान शत्रुओं से हमारा रक्षण करें। हमारी आंखों तथा शरीर में तेज दें, जिससे हम सम्यक् दृष्टि होकर आपको देखने के योग्य हों। १०६ **विष्णु०** इ० ७—हे स्त्री! जगन्नियन्ता परमात्मा गर्भ-धारणार्थ योनि को समर्थ करके तुझ में गर्भ धारण करे[1]। तुझ में गर्भ धारण होकर सुखपूर्वक गर्भ की वृद्धि हो, ईश्वर ऐसी कृपा करें कि दस महीने से पूर्व उसका पतन न हो। पृथिवी जैसे सर्व भूतमात्र, वनस्पति, पर्वत तथा सृष्ट पदार्थों कोधारण करती है, वैसे ही तेरा गर्भ स्थिर हो तथा १०वें महीने में सुखपूर्वक प्रसव हो। १०७ **प्र ते०** हे सद्गुणी स्त्री! तुझ में गुणवान् पुत्र स्थिर हो तथा उसके साथ ईश्वर हमको पूर्णायु करे।

**गृहस्थ संस्कार** पृष्ठ १०७ **प्रात०** इ० ६—**शब्दार्थः**—हवामहे—आह्वान करते हैं। भगं—ऐश्वर्यवान् को। नयं—सत्वशील। सुपोष—

१. अर्थात् धारण करावे।

ऐश्वर्य । अर्यः—श्रेष्ठ । पाहि संरक्षण कर । ऊर्जं तेज । मोदमान—आनन्दयुक्त । एमि—प्राप्त हों । उपहूता,अजावयः—अनुकूल प्राप्त हों । कीलाल—उत्तम रस । शिवं पारमार्थिक सुख । शग्म—सांसारिक सुख । शंयोः—परोपकारार्थ । १११ शंनो०—हे आप—(आप्लृ-व्याप्तौ) हे सर्वव्यापक प्रकाशक ! हमारा कल्याण करें और हमें सदा सुख तथा आनन्द वृत्ति में रखें । ११२ भूः इ० ८—महः—सर्व-श्रेष्ठ, जनः—जगन्नियन्ता, तपः—पूर्णज्ञानस्वरूप । सत्यं—अविनाशी परमात्मा हमारी सब देह पवित्र करे । ११३ ऋतं० इ० ३—हे परमात्मन् आपने पहले सर्ग के प्रारम्भ में ज्ञानमय सामर्थ्य तथा सहज स्वभाव से जगत् का सूक्ष्म और स्थूल कारण तथा ज्ञान निर्मित किया । तत्पश्चात् रात्रि, समुद्र, महासमुद्र, इसके अनन्तर अहोरात्र, सूर्य, चन्द्र, द्युलोक तदनन्तर पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश का निर्माण किया । पृष्ठ ११३-११४ प्राची० इ० ६—पूर्वदिशाधिपति प्रकाशस्वरूप को "मैं बार-बार नमन करता हूं । वह शत्रु से हमारा रक्षण करे" । दक्षिणाधिपति पूर्ण ऐश्वर्यवान् ज्ञानस्वरूप को० । पश्चिमाधिपति सर्वोत्तम प्राणस्वरूप को० । उत्तराधिपति शान्ति-स्वरूप को० । अधराधिपति विश्वस्वरूप को० । ऊर्ध्वाधिपति जीवन स्वरूप को । ११४-११५ जात० इ० ६—१. हे सर्वज्ञ न्यायकारिन् ! आप शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं । जैसे अति उग्र नदी अथवा समुद्र पार करने के लिए नौका होती है वैसे हमें अनेक दुःसह दुःखों से आप पार करें । २. हे दुःखनिवारक, विद्वान्, हृदय प्रकाशक ! हमारे हृदय ज्ञान से प्रकाशित करें । ३. हे जगत्प्रकाशक ! विश्व विद्या प्राप्ति होने के लिए हम आपकी उपासना करते हैं । ४. हे प्रकाश-स्वरूप ! हमको सत्यज्ञान प्राप्त हो । ५. (द्र० पृष्ठ ८८) । ६. सर्व व्यापक, परब्रह्म, ज्ञानसागर परमात्मा की मैं अनन्य भाव से शरण हूं । ११५. तत्स०—जगत्कर्त्ता, ऐश्वर्यदाता, सर्वप्रकाशक, सर्व-

ग्राह्य, विज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापक परमात्मा का हम प्रेम भक्ति से, अनन्य भाव से तथा दृढ़ विश्वास से अपने अन्तःकरण में ध्यान करते हैं। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को, मनोवृत्ति को परोपकार और ईश्वरभक्ति आदि श्रेष्ठ काम करने के लिए प्रवृत्त करे।

पृष्ठ ११६ **सूर्यो०**—चराचरात्मा, स्वयं प्रकाशक प्राणधारक, प्रीतिकारिन् परमात्मा हमें प्राप्त होकर ज्ञान आदि ऐश्वर्य दे। ११७-१२१ में आहुति इत्यादि मन्त्रों के शब्द ईश्वर वाचक होने से उनका अर्थ 'ईश्वर प्राप्त हो' समझना चाहिए।

**पुंसवन संस्कार** पृष्ठ १२४ **पुमां०** इ० २—हे स्त्री ! प्राण और अपान, पृथिवी और आकाश, अग्नि और वायु में, जैसे पुरुष गुणयुक्त हैं, वैसे तेरे उदर में ईश्वर कृपा से पुरुष रूप गर्भ पुत्र प्राप्त हो। इसके पश्चात् भी दूसरा पुत्र हो। **आ ते०**—हे स्त्री ! तेरे उदर में पुत्ररूप गर्भ होकर तूणीर में जैसे बाण स्थिर रहते हैं वैसे ही स्थिर रहें तथा दस महीने अन्त में शूर, वीरादि गुणयुक्त उत्पन्न हो। **यत्ते०**—हे सौन्दर्यादि गुणयुक्त स्त्री ! तेरे उदर में सद्गुणी तथा ईश्वरभक्त पुत्र हो तथा पुत्र विरहजन्य दुःख तुझे कभी प्राप्त न हो। **हिर०**—इस सकल सृष्टि के उत्पन्न होने के पूर्व ज्ञानस्वरूप परमात्मा स्वसिद्ध एक ही था और वह ही पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि सकल सृष्टि का कर्त्ता तथा स्वामी है। उसका हम अनन्यभाव से ध्यान करें। जल तथा पृथिवी से उत्पन्न हुई वनस्पतियों का जो रस अर्थात् वीर्य है उसके योग से, मानव इत्यादि के विचित्र रूप तथा गुणयुक्त गर्भ धारण होकर उत्पत्ति होती है [इसलिए इस गर्भ का धारण तथा पोषण वह जगदात्मा अवश्य करे और उत्तम गुणयुक्त गर्भ उत्पन्न हो। १२५ **सुप०**—हे जद्धारक परमात्मा ! आप सौन्दर्य स्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, सर्वान्तर्गत और अन्तःकरण, वेद अर्थात् ज्ञानस्वरूप आप ही हैं [आप इस गर्भ को सौन्दर्यादि गुणों से युक्त करें]।

**सीमन्तोन्नयन संस्कार** पृष्ठ १२७ **धाता०**—जगद्धारक परमात्मा हमको उत्तम मति तथा बुद्धि आदि गुणों से युक्त पुत्र दे, हे सौभाग्यवती स्त्री ! उस परमात्मा का हम ध्यान करें। जगत्कर्त्ता सब के लिए पूजनीय है। वह सर्वपूज्य तथा आह्वनीय परमात्मा हमारी स्तुति और उपासना सुने, उत्तम मति तथा ज्ञान दे, गर्भ को प्राणयुक्त करे, हमारी उपासना दृढ़ करे, महान् विद्वान्, संपत्तिमान्, प्रशंसनीय शूर पुत्र दे। हे परमात्मन् ! जिस प्रसाद से सौन्दर्य, सुमति और धन आप सज्जन को देते हैं, उस प्रसाद से तथा प्रसन्न मन से आज हमको सौभाग्य प्राप्त करायें। उस परमात्मा की कृपा से हमारी सन्तति (पुत्र पौत्रादि) सुख पूर्वक सौभाग्यवान् हो। ५, ६, ७ मन्त्रों के समान दूसरे मन्त्र पहले आ चुके हैं, उन मन्त्रों का अर्थ यहां दिया जा रहा है "हे ईश्वर ! आप सद्गुणी श्रेष्ठ, स्वरूपवान पुत्र १० वें महीने में उत्पन्न करें। १२९-१३० **सुमि०** इ० ७—हे परमात्मन् ! प्राण, जल, औषध आदि सर्व सृष्ट पदार्थ हमको सुखदायक हों तथा हमारे दुष्ट शत्रुओं को दुःखदायक जिससे वे दुष्ट नष्ट होंगे। सर्वश्रेष्ठ जगत्कर्त्ता परमात्मा इस गर्भ का संरक्षण करे और सद्गुण तथा सद्बुद्धि दे। इस स्त्री को उत्तम सन्तति तथा सम्पत्ति प्राप्त हो, जिस सामर्थ्य से परमेश्वर पृथिवी की सीमा करता हैं, उसी सामर्थ्य से इस स्त्री को सौभाग्य, पुत्र, धन, धान्यादि की प्राप्ति हो। हम पुत्र पौत्रादि सहित मृत्यु पर्यन्त सुखी रहें।

**जातकर्म संस्कार** पृष्ठ १३२ **या तिरश्ची** २—हे द्योतमान् इष्ट फलदायी प्रभो ! शुभ प्राप्ति के लिए मैं आहुति द्वारा आपकी अर्चना करता हूं। पति स्त्री में गर्भ धारण करता है इसलिए वह प्रसव के समय प्रसव स्थान से दूर रहे। **एज०**—हे परमात्मन् ! जिस प्रकार वायु तथा समुद्र धीरे-धीरे गतिशील होते हैं, वैसे ही यह गर्भ १० वें महीने तक गर्भाशय में रहकर पूर्ण गर्भ, वेष्टन सहित सुखरूप बाहर

आये । **अवैतु**—जगन्नियन्ता प्रभु इस का आमरण रक्षण करे । १३३ **प्र ते०** ४—हे बालक ! तुझे मधु और घृत प्रथम प्राशन कराता हूं । जगदुत्पादक परमात्मा की कृपा से तुझे ज्ञान और धन-धान्यादि । उत्तम पदार्थ प्राप्त हों । परमात्मा सदा तेरी रक्षा करे । १०० वर्ष जीवित रखे । हे बालक ! ईश्वर तुझे वेदाध्ययनार्थ तीक्ष्ण तथा शीघ्र बुद्धि दे । प्राणापान और सूर्य चन्द्रादिकों को माला की भांति धारण करने वाले दे । वायु अश्विन देव तुझेउत्तम बुद्धि दे । पृथिवी आदि तीनों लोकों का ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हो । अत्यन्त श्रेष्ठ बुद्धि तथा धन प्राप्त होने के लिए न्यायकारी, अचिन्त्य, शक्तिमान् परमात्मा की मैं प्रार्थना करता हूं । १३३ **इद०**—यह अन्न, आयु तथा प्रज्ञावर्धक और प्राणधारक हो । ११३-१४४ **अग्नि०** इ० ७—वनस्पति से अग्नि, औषध से चन्द्र, ब्राह्मण से वेदामृत, सत्य विद्या से विद्वान् सत्यव्रत से ऋषि, सत्यज्ञान से पितर, धन से यज्ञ, जल से जीवन, नदियों से समुद्र जैसे दीर्घायु होते हैं वैसे ही हे बालक ! तू ईश्वर कृपा से दीर्घायु हो । १३४ **इन्द्र०** २—हे इन्द्र, सर्वैश्वर्यवान् भगवान्! उत्तम धन, बल, सौभाग्य, ज्ञान, शरीर, आरोग्य, मधुर वाचा तथा उत्तम दिन हमें प्राप्त हों । हे स्तुतिप्रिय हमको विपुल धन, १०० वर्ष आयु, धीर सद्गुणी पुत्र प्राप्त करायें । **त्र्यायु०**—प्राणादि अन्तःकरण चक्षु आदि इन्द्रियां ३०० वर्षों तक सुदृढ़ रहें । १३५ **वेद ते०**—हे बालक ! मुझ पर तू आत्मवत् प्रीति रख । **इडासि०**—हे सद्गुणी वीर स्त्री ! तू प्रिय तथा वीरादि गुणयुक्त बालक प्रसव करने वाली है । तू ईश्वर कृपा से सदैव पति तथा सद्गुणी पुत्र युक्त होकर सुख से रहें । **इमं०** २—ईश्वर कृपा से निर्माण हुआ यह उत्कृष्ट रस-युक्त दुग्ध, हे बालक तू प्राशन कर । यह दुग्ध तुझे मधुर तथा विपुल प्राप्त हो । **आपो०**—बालक सहित प्रसूता का सर्व प्रकार कल्याण ईश्वर करे । **शंडा०**—षंडादि (नपुंसकतादि) दोष तथा अनेक अरिष्ट यहां से नष्ट हों ।

**नामकरण संस्कार**—पृष्ठ १३६ **को०**—हे बालक ! तेरा नाम क्या है ? तू कैसा है ? पुर्णायु या अल्पायु। तुझे पता न हो तो तू ईश्वरकृपा से पूर्णायु हो तथा सौर मासादि कालमान से आयु क्रमण कर। तेरा नाम अमुक। १४० **स त्वा०**—परमात्मा तेरी आयु वृद्धि करे। दिवस, रात्रि: पक्ष, मास, ऋतु से एक वर्ष तक, एक वर्ष से आगे १।२।३ इस प्रकार १०० वर्ष अर्थात् पूर्णायु तुझे प्राप्त हो। तू असुक—नाम से प्रसिद्ध हो।

**निष्क्रमण संस्कार** पृष्ठ १४२ **यत्ते०**—१-२ ईश्वर कृपा से यहां पुत्र सम्बन्धी शोकादि प्राप्त न हों। ३. ईश्वर इस बालक का कल्याण करे तथा माता के जीवनकाल में इसकी मृत्यु न हो।

**नामकरण संस्कार** पृष्ठ १४५-१४६ **देवी०** २—प्राणाधिपति परमात्मा उत्तम वाचा तथा रसयुक्त अन्न, वीरत्वादि गुणयुक्त सन्तति हमको दे। १४६ **प्राणे०**—ईश्वरकृपा से अन्न, सुगन्ध, रूप, यश तथा इन्द्रियां उत्तम प्रकार से प्राप्त हों। **अन्न०**—हे अन्नपते परमेश्वर ! आप हमको नीरोग तथा आरोग्यकारक, पराक्रम तथा पुष्टिदायक अन्न दें।

**चूडाकरण संस्कार** पृष्ठ १५०-१५२—पृष्ठों के मन्त्र सरल होने से उनका साधारण अर्थ—हे जगच्चालक परमात्मन् ! इस बालक का सब प्रकार से कल्याण कर। इसे पूर्णायु करें तथा हम सबको उत्तम तेज तथा अन्न दें।

**कर्णवेध संस्कार** पृष्ठ १५३ **भद्रं० २**—हे परमात्मन् हम सब लोग कानों से उत्तम सुनें, आंखों से उत्तम देखें, दृढ़ तथा एकाग्र चित्त से ईश्वर की आराधना करें, विद्वान्, वीर, श्रेष्ठ जनों की आयु और गुण हमें प्राप्त हों।

**उपनयन संस्कार** पृष्ठ १५७ **येन०**—स्वयं प्रकाशक परमात्मा ने तेजोरूप वस्त्र जैसे सूर्य को दिये हैं, और अमृत मोक्ष सब संसार के ज्ञानी जनों के लिए योजित किया है, वैसे ही वह परमात्मा तुझे वस्त्र धारण कराये तथा दीर्घायु, बलवान् और विद्वान् करे। **यज्ञो०**—सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, परमपवित्र परमात्मा की पहले प्रार्थना करके वेदादि विद्या तथा परमेश्वर ज्ञान प्राप्ति के लिए यज्ञोपवीत धारण करता हूं। ईश्वरकृपा से दीर्घायु, सद्गुण, उत्तमतेज, सुख और बल प्राप्त हो। हे शिष्य! तू ईश्वर में प्रेमभक्ति रख तथा ज्ञान प्राप्ति कर ले, इसके लिए मैं तुझे यज्ञोपवीत युक्त करता हूं। १५८ **अग्ने०**—हे व्रतपते परमात्मन्! मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता हूं। उसका आचरण करने के लिए कृपा करके मुझे समर्थ कर। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए मैंने यह व्रत धारण किया है। आप से प्रार्थना है कि उसके अनुसार मुझे व्रत का फल प्राप्त हो। १५९ **तत्स०**—उत्तम भोग्य, आरोग्यकारक तथा रोगनाशक अन्न, जगत् कर्त्ता के प्रसाद से हमें प्राप्त हो। **देव०**—हे बालक! मैंने जो तेरा हस्त ग्रहण किया है, वह परमात्मा के द्वारा ही ग्रहण किया हुआ तू समझ। परमात्मा तेरा कल्याण करे। १५९ **युवा०**—विद्वान् सद्धार्मिक लोग स्व-पर का कल्याण करनेवाले होते हैं। वैसे जगत्कर्त्ता के प्रसाद से तू हो। १६० **तं०** पंडितजन ऐसे विद्वान् को अत्यन्त प्रेमपूर्वक सम्मान देकर उनका आदर सत्कार करते हैं। [वैसे तू हो] **मम०** हे शिष्य! तेरा चित्त मेरे चित्त के साथ लगे। तू सदा मेरे अनुकूल रह। जो कुछ मैं कहूं वह तू एकाग्र मन से तथा रुचि से सुन। मैं भी अपना मन तेरी ओर लगाऊंगा। श्रेष्ठ परमात्मा तेरा मन मेरी ओर लगाये। १६१ **कस्य०** २—तू परमेश्वर का ब्रह्मचारी है। वह तेरा कल्याण करे। उसकी कृपा से जल, औषध, स्वर्ग पृथिवी, विद्वान्, श्रेष्ठ लोगों का ज्ञान और सद्गुण तुझे प्राप्त हों,

तथा सभी अरिष्ट नष्ट हों। १२३ **अग्ने०**—हे सर्व पूज्य परब्रह्म ! आप सर्व कीर्तिमान् और ज्ञानी करें। जैसे आप सब सुनते हैं वैसे ही मुझे यथार्थ सत् कथा तथा सत् नीति सुनायें। आप जैसे विद्वानों के तथा यज्ञों के स्वामी अधिपति हैं, वैसे मुझे मनुष्यों का और वेदादि सद्विद्याओं का रक्षक करें।

**वेदारम्भ संस्कार** पृष्ठ १६३ **अग्ने०**—हे परमात्मन् ! कष्ट से जैसे अग्नि प्रदीप्त होती है वैसे ही आप अपने आशीर्वाद से आयु, बुद्धि, ज्ञान, कृतज्ञता, ईश्वरभक्ति, तेज, संतति, संपत्ति तथा ब्रह्म-विद्या मुझ में प्रकाशित करें। मेरे आचार्य और मैं चिरंजीव, पुत्रवान् तथा बुद्धिमान् हों तथा निरूपद्रवी, परोपकारी, दयालु, सत्यप्रिय, यशस्वी, तेजस्वी और अन्नादि उत्तम रस सेवन करने वाला मैं होऊं। १६४ **तनू०** इ० ७—१. हे परमात्मन् ! आप सर्वरक्षक हैं, तो मेरा संरक्षण करें। आप आयु देनेवाले हैं, तो मुझे तेज तथा विद्या दें। ४. मुझ में मानसिक तथा शारीरिक जो-जो न्यूनताएं हों, वे आप पूर्ण करें। ५-७ मुझे शीघ्र विद्या ग्रहण करने की बुद्धि दें। १६४ वाक्०—हे परमात्मन् ! आप की कृपा से मेरा शरीर, वाचा प्राणा, कर्ण, नेत्र, यश, वल, बुद्धि, कीर्ति सब मुझे पूर्णरूप से प्राप्त हों। **मयि०**—सर्वपूज्य, ज्ञानस्वरूप परमात्मा मुझ में शीघ्र विद्या ग्रहण करनेवाली बुद्धि, उत्तम गुण, उत्तम तेज धारण कराये और स्थिर करे। हे परमात्मन् ! मेरी प्रार्थना है कि मैं तेजस्वी, विद्वान् और ज्ञानरूप रस ग्रहण करने के लिए उत्सुक तथा अनन्दी होऊं। १६६ **इयं०**—ब्रह्मचर्य, सुशिक्षा तथा सर्व विद्याएं मुझे प्राप्त हों, सर्व दुष्टताएं, कुशिक्षा, दुर्गुण फेंक दूं, प्राण तथा अपान पूर्णरूप से प्राप्त हों, अर्थात् जीवन दुःखरहित हो, सौभाग्यवृद्धि हो; इस हेतु से यह मेखला धारण की है, अतः यह हेतु ईश्वरकृपा से सफल हो। **यो मे०**—पूर्णायुष, ब्रह्मज्ञान, तेज और उत्तम गुण प्राप्त हों, इस हेतु

से यह दण्ड धारण करता हूं, अतः यह हेतु ईश्वरानुग्रह से सफल हो। १६८ **भवान्०** -भवान्, भवती=आप, ददातु=दे, आप भिक्षा दें।

**समावर्तन संस्कार** पृष्ठ १७७ **उद्यन०** —सर्वैश्वर्यवान्, सर्वान्तर्यामी परमात्मा मुझे प्राप्त होकर, मेरे आप्तजनों का तथा मेरा सर्वकाल सर्व प्रकार से संरक्षण करे। धन, धान्य, तेज तथा ज्ञान सहस्र गुना दे। **अन्ना०** -शान्ति स्वरूप परमेश्वर मुझे उत्तम अन्न, यशः, ऐश्वर्य, शुद्ध अन्तःकरण दे। **प्राणा०**—हे जगदात्मन्! आप मेरे नेत्र, कर्ण, प्रण इन्द्रियों की तृप्ति करें। **परि०**—ईश्वरकृपा से मैं यशस्वी, दीर्घायु तथा नीरोग होऊं। मुझे उत्तम सद्गुणीस्त्री तथा सम्पत्ति की प्राप्ति हो। **या०**—श्रेष्ठजनों की भांति उत्तम प्रकार का यश मुझे प्राप्त हो। **बृह०**—हे श्रेष्ठ परमात्मन्! आप मुझे पाप कर्म से अलग रखें, तथा तेज, यश और कीर्ति से युक्त करें।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

---

# अन्त्येष्टि संस्कार-विधि

**अन्त्येष्टि**—प्राणोत्क्रमण होने पर अर्थात् प्राण निकल जाने पर, अन्त में मृतदेह को यथाविधि होम करके—दहन कर डालने अर्थात् पृथिव्यादि जड़ तत्वों का उत्तम रीति से (निरुपद्रवी विधि से) वियोग करने का नाम अन्त्येष्टि है। अन्त्य=अन्तिम—अन्तकाल का। इष्टि =होम। (अन्त्येष्टि संस्कार करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि उस मृतक देह से संसार में कोई हानि न हो और जीवात्मा के कल्याणार्थ ईश्वर प्रार्थना भी हो। इसके अनुसार व्यवस्था करना मानव प्राणी का एक धर्म है)।

**कालः**—प्राणोत्क्रमणानन्तर अर्थात् देह से प्राण निकल जाने पर एक प्रहर के पश्चात् उस मृतक देह का अन्त्येष्टि संस्कार दिन में करना प्रारम्भ करे।

**विधिः**—नियुक्त समय पर मृतक देह को प्रथम शुद्ध जल से स्नान कराये। तत्पश्चात् शुद्ध तथा स्वच्छ वस्त्र परिधान कराकर, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य शरीर में लगाये। तदनन्तर उस मृतक शरीर को शुद्ध वस्त्रों से भलीभांति आच्छादित करके पालकी, डोली या रथ में, इस प्रकार उत्तान (उताना) रखे कि अग्रभाग में शिर तथा पीछे की ओर पैर रहें। तत्पश्चात् उस प्रेत (शव) को श्मशान[1] भूमि की ओर

---

१. श्मशान भूमि गाँव के दक्षिण, आग्नेय किंवा नैर्ऋत्य दिशा में एकान्त स्थान में होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि उसके अड़ोस-पड़ोस में मनुष्य की बस्ती नहीं होनी चाहिए। उसके चारों ओर बड़ा विस्तीर्ण मैदान होना चाहिए जिसमें करौंदे, अर्क, वट, ढाक जैसे कंटीले तथा श्वेत गोंद के वृक्ष होने चाहिए इस भूमि के निकट नदी, तालाब, कुआँ अथवा झरना होना चाहिए।

ईश्वरचिन्तन करते हुए गम्भीरता के साथ शान्तिपूर्वक ले जाय। शव लेकर जानेवाले सभी स्त्री-पुरुष अपने केश मुक्त (खुले हुए) रखें। यानस्थ (यान में रखे हुए) मृतदेह के पीछे-पीछे अग्रभाग में वयोवृद्ध, ज्येष्ठ, बड़े लोग तथा उनके पीछे अनुक्रम से उत्तरोत्तर कनिष्ठ (कम आयु के) पुरुष चलें। श्मशान भूमि में पहुंचने पर मृतक देह को यान से उतार कर, दक्षिण की ओर पैर करके, भूमि पर रखें। तदनन्तर वहां यदि पूर्व खोदकर वेदी[1] तैयार की हुई न हो, तो तैयार करें। तदनन्तर उसमें चन्दन, पलाशादि श्रेष्ठ यज्ञीय[2] वृक्षों की लकड़ियां एक हाथ भर ऊंची रखें तथा उन पर कुशादि यज्ञीय तृण फैलाये। इतने में मृतक देह के केश तथा नखों को काटकर, उस शरीर को शुद्धोदक से स्नान कराये। शरीर पर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेप करके शुद्धवस्त्र से वह मृतक देह आच्छादित करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त तैयार की हुई वेदी में वह मृतक शरीर —दक्षिण, आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य दिशा की ओर पैर तथा उत्तर, वायव्य, किंवा ईशान्य दिशा की ओर सिर करके रखें। उसके मुख, नासिका छिद्रों और नेत्र प्रदेश में पर्याप्त घी डालें। तत्पश्चात् सब शरीर पर घृत सिंचन करके, उस पर कपूर आदि सुगन्धित तथा तैलीय पदार्थ

---

१. वेदी पुरुष प्रमाण अर्थात् ऊपर हाथ करके खड़े हुए पुरुष के बराबर लम्बी और दो हाथ चौड़ी तथा एक बालिश्त से अधिक गहरी, इस प्रकार चौकोर खोदे। यह वेदी दक्षिण, आग्नेय या नैर्ऋत्य दिशा की ओर उतरती तथा उत्तर, वायव्य अथवा ईशान्य दिशा की ओर चढ़ती हुई होनी चाहिए।

२. यज्ञीय वृक्षों में चन्दन, पलाश, और खैर मुख्य हैं। इन वृक्षों के अभाव में बहेड़ा, लोध, हिंगणबेट, नीव, नीम, बाहवा, सेंहुड़ चिकाड़ आदि चिकाल वृक्ष, सांवर, दिंडा, कवटी, कांचन और भोंकर। इन वृक्षों को छोड़ कर शेष बड़, पीपल, पिंप्रि, गूलर, आबा, बेल, आघाडा, देवदारु, मुरु, साल शमी इत्यादि वृक्ष यज्ञीय वृक्ष समझें।

फैलाये। तदनन्तर उस शरीर पर तथा चारों ओर कोई अनुभवी व्यक्ति भलीभांति काष्ठ रखे। इस प्रकार चिता रच कर तैयार होने के पश्चात् उसके आसपास चारों ओर प्रायः १० हाथ तक भूमि पर भलीभांति जल सिंचन करे, जिससे धूल न उड़े तथा भूमि ठंडी रहे। इस समय—

**अपेत वीत वि च सर्पतातो ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।**
**अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥**

यह मन्त्र बोले। इसके अनन्तर कार्यकर्त्ता गृह्याग्नि अथवा लौकिकाग्नि जो प्राप्त हो, उस अग्नि से चिता प्रज्वलित करे। उस पर थोड़ा-थोड़ा घृत सिंचन करके और कपूर डालकर, चिताग्नि भलीभांति प्रदीप्त करे। अग्नि भलीभांति प्रज्वलित होने पर उसमें चारों दिशाओं में—

**ओ३म् अग्नये स्वाहा । ओ३म् सोमाय स्वाहा ।**
**ओ३म् लोकाय स्वाहा । ओ३म् अनुमतये स्वाहा ॥**

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से प्रत्येक दिशा में एक-एक आहुति अर्थात् कुल ४ आज्याहुतियां[1] दें। तदनन्तर मृतकदेह के हृदय प्रदेश में

**ओ३म् अस्माद्वै त्वमजायथा अयं त्वदधि जायतामसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥**

इस मन्त्र से एक पांचवीं आज्य आहुति दे। तदनन्तर नीचे से

---

१. आज्य अर्थात् घृत, अधिक मे अधिक शरीर मान के अनुसार होना चाहिए। इतना प्राप्त न होने पर कम से कम १५-२० सेर होना ही चाहिए। इसमें केशर आदि सुगन्धित द्रव्य मिश्रित करे।

ऊपर तक चारों ओर भलीभांति अग्नि प्रदीप्त करे। मृतकदेह दग्ध होते समय उस पर अन्य आज्याहुतियां दे। वे आहुति मन्त्र—

## ऋग्वेद

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥१॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥२॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै, स्वाहा ॥३॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः स्वाहा॥४॥

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति स्वाहा॥५॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥६॥

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥७।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥८॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश स्वाहा ॥९॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः स्वाहा ॥१०॥

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु स्वाहा ॥११॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् स्वाहा ॥
॥१२॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् स्वाहा ॥१३॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् स्वाहा॥१४

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्
स्वाहा ॥१५॥

उच्छ्वंचस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवचना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि स्वाहा ॥१६॥

उच्छ्वंचमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयंताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवंतु विश्वाहास्मै शरणाः संत्वत्र स्वाहा ।
॥१७॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयंतु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु
स्वाहा ॥१८॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात्[1] ॥१९॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२०॥

ये युध्यंते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२१॥

---

१. इन १९ से २३ मन्त्रों तक स्वाहा पद लगाये ।

ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितृन्तपस्वतो यम तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२२॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायंति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥२३॥
उरूणसावसुतृपा उदुंबलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रं स्वाहा ॥२४॥

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकं ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे स्वाहा ॥१॥
यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो[1] ०।० स्वाहा ॥२॥
यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो ०।० स्वाहा ॥३॥
यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो ०।० स्वाहा ॥४॥
यत्ते समुद्रमर्णवं मनो ०।० स्वाहा ॥५॥
यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो ०।० स्वाहा ॥६॥
यत्ते अपो यदोषधीर्मनो ०।० स्वाहा ॥७॥
यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो ०।० स्वाहा ॥८॥
यत्ते पर्वतान् बृहतो मनो ०।० स्वाहा ॥९॥
यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो ०।० स्वाहा ॥१०॥

---

१. यहां से ११ मन्त्रों में [अर्थात् १२वें तक] प्रत्येक के "मनो०" पद के आगे पहले मन्त्र का "जगाम०" इत्यादि सर्व पद लगाकर मन्त्र पूर्ण बोले ।

यत्ते पराः परावतो मनो ०।० स्वाहा ॥११॥

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो ०।० स्वाहा ॥१२॥

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः स्वाहा ॥१॥

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः स्वाहा ॥२॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्त्तनं यो गोपा अपि तं हुवे स्वाहा ॥३॥

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणं ।
आवर्त्तनं निवर्त्तनमपि गोपा नि वर्त्ततां स्वाहा ॥४॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै स्वाहा ॥५॥

परिवो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजंतु नः स्वाहा ॥६॥

भद्रं नो अपि वातय मनः स्वाहा ॥७॥

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्व१ रेनीः सपर्यति मातुरूधः स्वाहा ॥८॥

अग्र्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः स्वाहा ॥९॥

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्था वृभ्वा यज्ञे ।
मिन्वन् त्सद्म पुर एति स्वाहा ॥१०॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमंतं स्वाहा ॥११॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्।
हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥१२॥

## यजुर्वेद

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडँस्तव स्याम शर्म स्त्रिवरूथऽ उद्भौ स्वाहा ॥१॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्य मानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् स्वाहा ॥२॥

| | |
|---|---|
| १ [1]स्वाहा प्राणेभ्यः | २ स्वाहा साधिपतिकेभ्यः |
| ३ पृथिव्यै स्वाहा | ४ अग्नये स्वाहा |
| ५ अंतरिक्षाय स्वाहा | ६ वायवे स्वाहा |
| ७ दिवे स्वाहा | ८ सूर्याय स्वाहा |
| ९ दिग्भ्यः स्वाहा | १० चन्द्राय स्वाहा |

१. स्वाहा प्राणेभ्यः० इत्यादि तीन मन्त्रों की २२ आहुतियां की हैं।

११ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा
१२ अद्भ्यः स्वाहा
१३ वरुणाय स्वाहा
१४ नाभ्यै स्वाहा
१५ पूताय स्वाहा
१६ वाचे स्वाहा
१७ प्राणाय स्वाहा
१८ प्राणाय स्वाहा
१९ चक्षुषे स्वाहा
२० चक्षुषे स्वाहा
२१ श्रोत्राय स्वाहा
२२ श्रोत्राय स्वाहा

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनाᳬं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥१॥

१ [1]प्रजापतये स्वाहा
२ सम्राजे स्वाहा
३ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा
४ घर्माय स्वाहा
५ तेजसे स्वाहा
६ अश्विभ्यां स्वाहा
७ पूष्णे स्वाहा
८ मरुद्भ्यः स्वाहा
९ मित्राय स्वाहा
१० वायवे स्वाहा
११ अग्नये स्वाहा
१२ वाचे स्वाहा
१३ सवित्रे स्वाहा
१४ अग्नये स्वाहा
१५ वायवे स्वाहा
१६ आदित्याय स्वाहा
१७ चंद्रमसे स्वाहा
१८ ऋतुभ्यः स्वाहा
१९ मरुद्भ्यः स्वाहा
२० बृहस्पतये स्वाहा
२१ मित्राय स्वाहा
२२ वरुणाय स्वाहा
२३ इन्द्राय स्वाहा
२४ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा

---

१. प्रजापतिः० [ ३९।५ ] इत्यादि मन्त्रों की २४ आहुतियां की हैं ।

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वांश्चाभियुग्वाच विक्षिपः स्वाहा ॥१॥

[1]अग्निं हृदयेन जुहोमि, अग्नये स्वाहा ।
अशनिं हृदयाग्रेण जुहोमि, अशनये स्वाहा ।
पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन जुहोमि, पशुपतये स्वाहा ।
भवं यक्ना जुहोमि, भवाय स्वाहा ।
शर्वं मतस्नाभ्यां जुहोमि, शर्वाय स्वाहा ।
ईशानं मन्युना जुहोमि, ईशानाय स्वाहा ।
महादेवं अंतःपर्शव्येन जुहोमि, महादेवाय स्वाहा ।
उग्रं वनिष्ठुना जुहोमि, उग्राय स्वाहा ।
वसिष्ठं हन्वा जुहोमि, वसिष्ठाय स्वाहा ।
शिंगीनि कोश्याभ्यां जुहोमि, शिंगिभ्यः स्वाहा ।
उग्रं लोहितेन जुहोमि, उग्राय स्वाहा ।
मित्रं सौव्रत्येन जुहोमि, मित्राय स्वाहा ।
रुद्रं दौर्व्रत्येन जुहोमि, रुद्राय स्वाहा ।
इंद्रं प्रक्रीडेन जुहोमि, इंद्राय स्वाहा ।
मरुतो बलेन जुहोमि, मरुद्भ्यः स्वाहा ।
साध्यान् प्रमुदा जुहोमि, साध्येभ्यः स्वाहा ।
भवं कंठ्येन जुहोमि, भवाय स्वाहा ।
रुद्रं अंतःपार्श्व्येन जुहोमि, रुद्राय स्वाहा ।
महादेवं यकृता जुहोमि, महादेवाय स्वाहा ।
शर्वं वनिष्ठुना जुहोमि, शर्वाय स्वाहा ।
पशुपतिं पुरीतता जुहोमि, पशुपतये स्वाहा ।

---

१. अग्निं हृदयेन० से पशुपतये स्वाहा [३९।८;९] तक के मन्त्रों से २१ आहुतियां होती हैं ।

| | |
|---|---|
| १ [1]लोमभ्यः स्वाहा | २ लोमभ्यः स्वाहा |
| ३ त्वचे स्वाहा | ४ त्वचे स्वाहा |
| ५ लोहिताय स्वाहा | ६ लोहिताय स्वाहा |
| ७ मदोभ्यः स्वाहा | ८ मदोभ्यः स्वाहा |
| ९ माँ सेभ्यः स्वाहा | १० माँ सेभ्यः स्वाहा |
| ११ स्नावभ्यः स्वाहा | १२ स्नावभ्यः स्वाहा |
| १३ अस्थभ्यः स्वाहा | १४ अस्थभ्यः स्वाहा |
| १५ मज्जभ्यः स्वाहा | १६ मज्जभ्यः स्वाहा |
| १७ रेतसे स्वाहा | १८ पायवे स्वाहा |
| १९ आयासाय स्वाहा | २० आयासाय स्वाहा |
| २१ संयासाय स्वाहा | २२ वियासाय स्वाहा |
| २३ उद्यासाय स्वाहा | २४ शुचे स्वाहा |
| २५ शोचते स्वाहा | २६ शोचमानाय स्वाहा |
| २७ शोकाय स्वाहा | २८ तपसे स्वाहा |
| २९ तप्यते स्वाहा | ३० तप्यमानाय स्वाहा |
| ३१ तप्ताय स्वाहा | ३२ घर्माय स्वाहा |
| ३३ निष्कृत्यै स्वाहा | ३४ प्रायश्चित्यै स्वाहा |
| ३५ भेषजाय स्वाहा | ३६ यमाय स्वाहा |
| ३७ अन्तकाय स्वाहा | ३८ मृत्यवे स्वाहा |
| ३९ ब्रह्मणे स्वाहा | ४० ब्रह्महत्यायै स्वाहा |
| ४१ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा | ४२ द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा। |

१. लोमभ्य० [३९।१०-१३] इत्यादि मन्त्रों की ये ४२ आहुतियां होती हैं।

# अथर्ववेद

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते संतु वर्ष्याः स्वाहा ॥१॥

शं त आपो धन्वन्याऽः शं ते सन्त्वनूप्याः शं ते ।
खनित्रिमा आपः शं याः कुंभेभिराभृताः स्वाहा ॥२॥

शं त आपः शिवा आपोऽ यक्ष्मं करणीरापः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आहुत भेषजीः स्वाहा ॥३॥

इस प्रकार एक वार आहुति देकर मृतक देह भस्म न होने पर पुनः वे आज्य मन्त्राहुतियां मृतक देह भस्म होने तक पुनः-पुनः देते जायें ।

इस प्रकार आहुतियां देकर मृतक देह भस्म होने के अनन्तर[1]

---

१. मृतक देह दहन के चौथे दिन अथवा उसके पहले मृतक देह की भस्म तथा अस्थि संचयन कर्म करे। वह इस प्रकार चिता के चारों ओर तथा उसके ऊपर प्रथमतः

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मंडूक्या सु सं गम इमं स्वग्निं हर्षय ॥

इस मन्त्र से दूध मिश्रित उदक सिंचन करे। तत्पश्चात् भस्म से एक-एक अस्थि अंगुष्ठ तथा अनामिका से उठा कर मिट्टी के घड़े में भरता जाय। सभी छोटी-बड़ी अस्थियां चुन कर घड़े में रखने के पश्चात् वह घड़ा जहां घास इत्यादि कोई वनस्पति उगती न हो तथा वर्षा के अतिरिक्त जल न आता हो, ऐसी भूमि में गहरा गड्ढा खोद कर उसमें वह घड़ा भलीभांति ढक कर गाड़ दें। इस समय उपसर्प० उच्छ्वंच० उत्ते स्तभ्नामि० [पृष्ठ २३०, मन्त्र १५-१८] मन्त्र बोले।

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रादे वहूतिर्नो अद्य ।
प्रांचो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥१॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतं ।
शतं जीवंतु शरदः पुरूचीरंतर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवंति यथं ऋतवं ऋतुभिर्यंति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषां ॥३॥

ये मन्त्र बोलकर प्रेत (शव) दहनार्थ आये हुए सब मनुष्य दाहिनी ओर घूमकर विना पीछे देखे वहां से (कनिष्ठ) छोटी आयु के आगे तथा ज्येष्ठ (बड़ी आयु के) पीछे चल कर जलाशय की ओर जायें वहां शुद्धोदक से स्नान करके, शुद्ध नूतन वस्त्र परिधान करें। तथा पहने हुए, पहले के कपड़े भलीभांति स्वच्छ धोकर सुखायें। तदनन्तर पूर्व क्रमानुसार अर्थात् कनिष्ठ आगे और ज्येष्ठ पीछे गांव जाने के लिए चलें तथा जिस कुटुम्ब में मृत्यु हुई है, उस कुटुम्ब के घर सभी आकर उस दु:खी कुटुम्व को धैर्य देकर, तदनन्तर अपने-अपने घर जायें। मृत्यु के दिन दुःखी कुटुम्ब के घर में भोजन न पकाया जाय। भोजन की वस्तुएं क्रय करके अथवा किसी पड़ोसी ने लाकर दीं, तो उनसे निर्वाह करे।

इसके अनन्तर दुःखित कुटुम्ब के मनुष्य मृत्युजन्य शोक निवारण तथा दुःख निवृत्ति के लिए किसी सद्धार्मिक, श्रेष्ठ, ज्ञानी विद्वान् विदुषी को (संन्यासी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मवादिनी इत्यादि को) घर लायें। उन के समागम से मनुष्य के जीवन और तज्जन्य विषयों की क्षण-भंगुरता सम्बन्धी अनेक ज्ञानयुक्त विचार और उपनिषद् आदि वेदांतसार श्रवण करके दुःख तथा शोक की निवृत्ति करें। इस प्रकार

के विद्वान्-विदुषी को अन्न वस्त्र देकर अत्यन्त आदर सत्कार के साथ प्रसन्न करें।

यदि दिवंगत स्त्री या पुरुष ने धर्मार्थ धन रखा हो, साथ ही यदि उसकी मृत्यु के अनन्तर कोई धर्मार्थ धन देना चाहता हो, तो सब धन सद्व्यय करे अर्थात् अन्ध, पंगु, दीन अनाथ दुर्बल को अन्न वस्त्र देने के काम में; निर्जल स्थान में कुआं, तालाब आदि जलाशय केवल परोपकारार्थ बनाने के काम में; और निर्धन, अनाश्रित बालकों को कला कौशल आदि उपयुक्त विद्या, उत्तम ज्ञान देने तथा सद्धर्म में प्रवृत्त करने के काम में लगाये।

अन्त्येष्टि संस्कारविधि समाप्त।

## पूर्वोक्त मन्त्रों का भावार्थ

हे जीव, जिस उत्तम मार्ग से उत्तम सुख स्थान में······सद्धार्मिक जन गये हैं। उस मार्ग से उस स्थान पर शीघ्र गमन ·······

**[इसके आगे के 'पृष्ठ मुंबई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय' की पुस्तक में नहीं हैं। हमें इस भाग की कहीं से दूसरी प्रति नहीं मिली। अतः इतना ही भाग छाप रहे हैं। कालान्तर में अन्य पुस्तक प्राप्त हो सकी, तो द्वतीयावृत्ति में इस भाग को पूरा करेंगे। यु० मी०]।**

---

# रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

## प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५-०० ।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग १००-०० रुपये, द्वितीय भाग ४०-०० ।

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्र-सूची सहित । ४० ००

४. **तैत्तिरीय संहिता-पदपाठः**—५० वर्ष से दुर्लभग्रन्थ का पुनः प्रकाशन, बढ़िया सुन्दर जिल्द १००-०० ।

५. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत। ११-१३ काण्ड ३०-००; १४-१७ काण्ड २४-००; १८-१९ काण्ड २०-००; वीसवां काण्ड २०-०० । काण्ड ९-१० छप रहा है ।

६. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त । साधारण जिल्द २५-००, पूरे कपड़े की ३०-००, सुनहरी ३५-०० ।

७. **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-परिशिष्ट**—भूमिका पर किए गए आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये उत्तर। मूल्य २-५०

८. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण । २५-००

९. **गोपथ-ब्राह्मण** (मूल)—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि । अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों से अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। मूल्य ४०-००

१०. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेदविषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह । अप्राप्य

११. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी** –(ऋग्वेदीया) षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित। टीका का पूरा पाठ प्रथम बार छापा गया है। विस्तृत भूमिका और अनेक परिशिष्टों से युक्त। १००-००

१२. **ऋग्वेदानुक्रमणी** वेङ्कट माधवकृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। व्याख्याकार –श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। उत्तम संस्करण ३०-००; साधारण २०-००

१३. **वैदिक-साहित्य-सौदामिनी**—स्व० श्री पं० वागीश्वर वेदालंकार। काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण आदि के समान वैदिक-साहित्य पर शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ। बढ़िया जिल्द ५०-००, साधारण जिल्द ४५-००

१४. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या** युधिष्ठिर मीमांसक मूल्य २-००

१५. **वेदसंज्ञा-मीमांसा** – युधिष्ठिर मीमांसक १-००

१६, **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—यु० मी०। नया संस्करण २०-००

१७. **वैदिक-स्वर-मीमांसा**—यु० मी० (नया सं०) २५-००

१८. **वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन-प्रकार**—यु०मी० मूल्य ६-००

१९. **वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय; वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा** (संस्कृत-हिन्दी)— युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य ५-००

२०. **देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप**— लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। मूल्य २-००

२१. **वेद और निरुक्त**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। २-००

२२. **निरुक्तकार और वेद में इतिहास**—,, ,, २-००

२३. **त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिककथा का वास्तविक स्वरूप**— लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य। मूल्य २-००

२४. **वैदिक-जीवन**—श्री प्रो० विश्वनाथ जी विद्या-मार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर वैदिक-जीवन के सम्बन्ध में लिखा गया अत्यन्त

उपयोगी स्वाध्याय-योग्य ग्रन्थ। अजिल्द १२-००, सजिल्द १६-००

२५. **शिवशङ्करीय-लघुग्रन्थ पञ्चक**—इसमें श्री पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ लिखित वेदविषयक **चतुर्दश-भुवन, वसिष्ठ-नन्दिनी, वैदिक विज्ञान, वैदिक-सिद्धान्त और ईश्वरीय पुस्तक कौन ?** नाम के पांच विशिष्ट निबन्ध हैं। मूल्य ६-००

२६. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा**—ले० **पं०** विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। बढ़िया जिल्द २०-००, साधारण १६-००।

२७. **शतपथ ब्राह्मणस्थ अग्निचयन समीक्षा**-लेखक--पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। ४०-००

२८. **वैदिक-पीयूष-धारा**—लेखक—श्री देवेन्द्रकुमार जी कपूर। चुने हुए ५० मन्त्रों की प्रतिमन्त्र पदार्थपूर्वक विस्तृत व्याख्या, अन्त में भावपूर्ण गीतों से युक्त। उत्तम जिल्द १५-००; साधारण १०-००।

२९. **क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?** लेखक—श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री। मूल्य १०-००

३०. **उरु-ज्योति**—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याय योग्य निबन्धों का संग्रह। सुन्दर छपाई पक्की जिल्द १६-००

३१. **वेदों की प्रामाणिकता**—डा० श्रीनिवास शास्त्री। १-५०

३२. **ANTHOLOGY OF VEDIC HYMNS**—Swami Bhumananda Sarasvati. ५०-००

३३. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्**—(दर्शपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण कृत भाष्य सहित (संस्कृत) ४०-००

३४. **दर्शपूर्णमास-पद्धति**--पं० भीमसेनकृत, भाषार्थ सहित २५-००

३५. **कात्यायनगृह्यसूत्रम्**—(मूलमात्र) अनेक हस्तलेखों के आधार पर हमने उसे प्रथम बार छापा है। २०-००

३६. **श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्**—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम पर्यन्त आध्वर्यव पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। बिना जिल्द ३४-०० सजिल्द ४०-००

३७. **संस्कार-विधि** —शताब्दी संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १५-००, राज-संस्करण २०-००। सस्ता संस्करण मूल्य ५-२५, अच्छा कागज सजिल्द ७-५०

३८. **वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश**—पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर द्वारा मूल मराठी में लिखे गये ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद। इसी का गुजराती अनुवाद संशोधित संस्कार-विधि का आधार बना। २०-००

३९. **अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय**- इस में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास सुपर्णचिति सहित सोमयाग चातुर्मास्य और वाजपेय याग का वर्णन है। १०-००

४०. **संस्कार-विधि-मण्डनम्**—संस्कार-विधि की व्याख्या। ले०—वैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री। अजिल्द १०-००; सजिल्द १४-००

४१. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन के मन्त्रों की पदार्थ तथा भावार्थ सहित व्याख्या। यु० मी०
मूल्य ३-५० सजिल्द ५-००

४२. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—( मूलमात्र ) सन्ध्या तथा स्वस्ति-वाचनादि बृहद् हवन के मन्त्रों सहित। मूल्य १-००

४३. **पञ्चमहायज्ञ-प्रदीप**—पं० मदनमोहन विद्यासागर ५-००

४४. **हवनमन्त्र**—स्वस्तिवाचनादि सहित। ०-५०

४५. **वर्णोच्चारण-शिक्षा**—ऋ० द० कृत हिन्दी व्याख्या ०-६०

४६. **शिक्षासूत्राणि**-आपिशल-पाणिनीय-चान्द्रशिक्षा-सूत्र। ६-००

४७. **शिक्षाशास्त्रम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य। १०-००

४८. **अरबी-शिक्षाशास्त्रम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य। १०-००

४९. **शिक्षा महाभाष्यम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य विरचित। मूल्य १२-००; सजिल्द १५-००।

५०. **वृद्धशिक्षा-शास्त्रम्**—,, ,, ,, । १५-००; सजिल्द २०-००

५१. **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**—केरलदेशीय नीलकण्ठगार्ग्य विरचित। एक मात्र मलयालमलिपि में ताडपत्र पर लिखित दुर्लभ प्रति के आधार पर मुद्रित। आरम्भ में उपोद्घात रूप में निरुक्त-शास्त्र

विषयक संक्षिप्त ऐतिह्य दिया गया है (संस्कृत)। सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि उत्तम कागज, शुद्ध छपाई तथा सुन्दर जिल्द सहित। १००-००

५२. **निरुक्त-समुच्चय**—आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत)। सं०—युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १५-००

५३. **अष्टाध्यायी**—(मूल) शुद्ध संस्करण। ३-५०

५४. **अष्टाध्यायी-परिशिष्ट**—सूत्रों के पाठ-भेद, सूत्र-सूची **अप्राप्य**

५५. **अष्टाध्यायी-भाष्य**-(संस्कृत तथा हिन्दी) पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। भाग—I ४५-००, भाग—II २५-००, भाग III ३०-००।

५६. **धातुपाठ**—धात्वादिसूची सहित, शुद्ध सस्करण। ३-००

५७. **क्षीरतरङ्गिणी**—क्षीरस्वामीकृत। पाणिनीय धातुपाठ की सब से प्राचीन एवं प्रामाणिक व्याख्या। सजिल्द ६०-००

५८. **धातुप्रदीप**—मैत्रेयरक्षित विरचित पाणिनीय धातुपाठ की व्याख्या। सजिल्द ४०-००

५९. **वामनीयं लिङ्गानुशासनम्**—स्वोपज्ञ व्याख्यासहितम् ८-००

६०. **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। भाग—I १०-००, भाग—II (यु०मी०) **अप्राप्य**

६१ The Tested Easiest Method of Learning and Teaching Sanskrit (First Book)—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत '**विना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**' भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वालों के लिये यह आधिकारिक पुस्तक है। कागज और छपाई सुन्दर, सजिल्द २५-००

६२. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या (द्वितीय अध्याय पर्यन्त) यु० मी०। भाग—I ५०-००, भाग—II **अप्राप्य**, भाग—III २५-००

६३. **उणादिकोष**—ऋ० द० स० कृत व्याख्या तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित। सजिल्द १२-००

६४. **दैवम् पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्**—लीलाशुक मुनि कृत १०-००

६५. **लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि** – ३-००

६६. **भागवृत्तिसंकलनम्** अष्टाध्यायी की प्राचीन वृत्ति ६-००

६७. **काशकृत्स्न-धातु व्याख्यानम्**—संस्कृतरूपान्तर । यु० मी० मूल्य १५-००

६८. **काशकृत्स्न-व्याकरणम्**– संपादक यु० मी० । ६-००

६९. **शब्दरूपावली**—बिना रटे शब्दरूपों का ज्ञान कराने वाली मूल्य ३-००

७०. **संस्कृत-धातुकोश**—पाणिनीय धातुओं का हिन्दी में अर्थ निर्देश । सं० युधिष्ठिर मीमांसक । १०-००

७१. **अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः**—डा० विजय पाल विरचित पी० एच० डी० का महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध (संस्कृत)। सुन्दर छपाई उत्तम कागज बढ़िया जिल्द सहित । मूल्य ५०-००

७२. **सूर्य सिद्धान्त**—हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याता श्री उदयनारायणसिंह । इसके आरम्भ में १४६ पृष्ठ की अति विस्तृत एवं विषय परिपूर्ण महत्त्वपूर्ण भूमिका छपी है । **छप रहा है** । मू० ५०-००

७३. **ईश-केन-कठ-उपनिषद्**—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री कृत हिन्दी अंग्रेजी व्याख्या सहित । मूल्य ईशो० १-५०; केनो० १-५०; कठो० ३-५०

७४. **तत्त्वमसि** अथवा **अद्वैत मीमांसा**—लेखक—श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती विरचित ईश्वर जीव और प्रकृति रूप तीनों मूल तत्त्वों का प्रतिपादन करने हारा दार्शनिक ग्रन्थ । मूल्य ४०-००

७५. **अध्यात्म मीमांसा**–स्वामी विद्यानन्द सरस्वती विरचित 'ईशोपनिषद्' की विस्तृत व्याख्या । मू० ४०-००; राज सं० ४५-०० ।

७६. **ध्यानयोग प्रकाश**–स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगविद्या के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत । बढ़िया पक्की जिल्द, मू० १६-००

७७. **आर्याभिविनय (हिन्दी)**–**स्वामी दयानन्द** । गुटका ४-००

७८. Aryabhivina—English translation and notes (स्वामी भूमानन्द) दोरङ्गी छपाई। सजिल्द १०-००

७९. **वैदिक ईश्वरोपासना।** मूल्य १-५०

८०. **विष्णुसहस्रनाम-स्त्रोतम्—(सत्यभाष्य-सहितम्)**—पं० सत्यदेव वासिष्ठ कृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य (४ भाग)। प्रति भाग १५-००

८१. **श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्**—पं० तुलसीराम स्वामी ६-००

८२. **हंसगीता**—महाभारत का एक आध्यात्मिक प्रसंग। अप्राप्य

८३. **अगम्यपन्थ के यात्री को आत्मदर्शन**—चंचल बहिन। ३-००

८४. **मानवता की ओर**—श्री शान्तिस्वरूप कपूर के विविध विचारोत्तेजक सरल भाषा में लिखे गये लेखों का संग्रह। ४-००

८५. **वाल्मीकि रामायण**—श्री पं० अखिलानन्द जी कृत हिन्दी अनुवाद सहित युद्धकाण्ड। १०-५०

८६. **शुक्रनीतिसार**—व्याख्याकार श्री स्वा० जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती। विस्तृत विषयसूची तथा श्लोक-सूची सहित उत्तम कागज सुन्दर छपाई तथा जिल्द सहित। मूल्य ४५-००

८७. **विदुर-नीति**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित। बढ़िया कागज, सुन्दर जिल्द। मूल्य ३६-००

८८. **सत्याग्रह-नीति-काव्य**—आ० स० सत्याग्रह १९३९ ई० में हैदराबाद जेल में पं० सत्यदेव वासिष्ठ द्वारा विचरित। हिन्दी व्याख्या सहित। मूल्य ५-००

८९. **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**—पं० यु० मी० कृत नया परिष्कृत परिवर्धित संस्करण। तीनों भागों का मूल्य १२५-००

९०. **संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि** लेखक—डा० कपिलदेव शास्त्री एम०ए०। सजिल्द १५-००

९१. **ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र और विज्ञापन**—इस बार इस में ऋषि दयानन्द के अनेक नये उपलब्ध पत्र और विज्ञापन संगृहीत

किये गये हैं। इस वार यह संग्रह चार भागों में छपा है। प्रथम दो भागों में ऋ०द० के पत्र और विज्ञापन आदि संगृहीत हैं। तीसरे चौथे भाग में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को भेजे गये पत्रों का संग्रह है। प्रथम भाग - ३५-००, दूसरा भाग —३५-००, तीसरा भाग— ३५-००, चौथा भाग—३५-००

९२. **विरजानन्द-प्रकाश**--ले० पं० भीमसेन शास्त्री एम० ए०। नया परिवर्धित और शुद्ध संस्करण। मूल्य ३-००

९३. **ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वकथित आत्मचरित**— सम्पादक पं० भगवद्दत्त। मूल्य २-००

९४.—**ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत-साहित्य को देन** - ले० डा० भवानीलाल भारतीय एम० ए०। सजिल्द २०-००

९५. THE AGE OF SHANKARA—पं० उदयवीर शास्त्री। अनुवादक-श्री स्वा० विद्यानन्द सरस्वती। मूल्य २५-००

९६. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित व्याख्याकार—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग ४०-००; द्वितीय भाग ३०-००; राजसंस्करण ४०-००; तृतीय भाग ५०-०० चौथा भाग ४०-०० पांचवां भाग छप रहा है।

**विद्याभास्कर श्री उदयवीर जी शास्त्री विरचित भाष्य**

९७. **न्यायदर्शन विद्योदय भाष्य**— अप्राप्य
९८. **वैशेषिकदर्शन विद्योदय भाष्य**— मूल्य ५०-००
९९. **सांख्यदर्शन विद्योदय भाष्य**— मूल्य ३०-००
१००. **योगदर्शन विद्योदय भाष्य**— मूल्य ४५-००
१०१. **ब्रह्मसूत्र [वेदान्त] विद्योदय भाष्य**— मूल्य ८०-००
१०२. **सांख्य-सिद्धान्त**— मूल्य ४५-००
१०३. **वेदान्तदर्शन का इतिहास**— मूल्य ४५-००
१०४. **सांख्यदर्शन का इतिहास**— मूल्य ५०-००
१०५. **अनादितत्त्वदर्शन** —स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। २५-००

१०६. **नाडी-तत्त्वदर्शनम्** पं० सत्यदेव जी वाशिष्ठ। मू० ३०-००

१०७. **चिकित्सा आलोक** —श्री कृष्णदेव चैतन्य पाराशर १५-००

१०८. **षट्कर्मशास्त्रम्** —(संस्कृत) जगदीशाचार्य अजिल्द १०-००

१०९. **सत्यार्थप्रकाश** – (आर्यसमाज-शताब्दी-संस्करण) १३ परिशिष्ट ३५०० टिप्पणियां, तथा सन् १८७५ के प्रथम संस्क० के विशिष्ट उद्धरणों सहित। राज संस्क० ३५-००, साधारण संस्क० ३०-००।

११०. **सत्यार्थप्रकाश (स्थूलाक्षर)**—श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ लिखित विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों के साथ। मूल्य १००-००

१११. **दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह** १४ ग्रन्थ, सटिप्पण, अनेक परिशिष्टों के सहित। मूल्य ३०-००

११२. **भागवत-खण्डनम्**—ऋ० द० की प्रथमकृति। अनुवादक—युधिष्ठिर मीमांसक ३-००



११३. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इसमें पौराणिक विद्वानों तथा ईसाई मुसलमानों के साथ हुए ऋ०द० के शास्त्रार्थ तथा पूना में सन् १८७५ तथा बम्बई में सन् १८८२ में दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है। उत्तम कागज, कपड़े की जिल्द, मूल्य ३०-००

११४. **दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह**—सस्ता संस्करण। मूल्य १०-००

११५. **दयानन्द-प्रवचन-संग्रह** – (पूना-बम्बई प्रवचन)॥ १०-००

११६. **ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास**—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। नया परिशोधित परिवर्धित संस्करण। ४०-००

११७ **व्यवहारभानु**—ऋषि दयानन्द कृत। २-५०

११८. **आर्योद्देश्यरत्नमाला**—ऋषि दयानन्द कृत। ०-५०

११९. **स्वाध्याय-सन्दोह**—श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ विरचित। ३६७ विषयों के ३६७ मन्त्रों की व्याख्या सहित मूल्य ५०-००

१२०. **स्वाध्याय-संदीप**—स्वा० वेदानन्द तीर्थ विरचित १८-००

१२१. **कन्योपनयन-विधि**—श्री पं० महाराणी शंकर। ६-००

**पुस्तक प्राप्ति स्थान—**

**रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ (सोनीपत) हरयाणा।**